ISSN 2348-8425

सत्राची

Peer Reviewed Research Journal

शोधांक-5

Vol. 42, No. 3
October-December, 2024

Editor
Anand Bihari

Chief Editor
Kamlesh Verma

An International Registered Peer Reviewed Bilingual Research Journal

SATRAVACHEE

ISSN : 2348-8425

सत्राची

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की पूर्व समीक्षित त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 12, शोधांक 5, अक्टूबर–दिसम्बर, 2024

प्रधान संपादक
कमलेश वर्मा

संपादक
आनन्द बिहारी

समीक्षा संपादक
आशुतोष पार्थेश्वर, सुचिता वर्मा,

सह-संपादक
जयप्रकाश सिंह, हुस्न आरा

सहायक संपादक
सुशांत कुमार

सलाहकार समिति व समीक्षा मंडल

अनीता राकेश, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, जे.पी.विश्वविद्यालय, छपरा।
मुक्तेश्वर नाथ तिवारी, प्राध्यापक, शांति निकेतन, प.बंगाल।
ब्रज बिहारी पांडेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, ओरिएंटल कॉलेज, पटना सिटी।
पुष्पलता कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, म.म.कॉ., पटना।
राजू रंजन प्रसाद, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, मुजफ्फरपुर।
नीरा चौधुरी, प्राध्यापक, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
अरविन्द कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
नीतु चौहान, सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, पटना वीमेन्स कॉलेज, पटना

❑❑❑

SATRAACHEE

SATRAACHEE

Peer Reviewed and Refereed Research Journal

मूल्य : ₹ 150/-

सदस्यता शुल्क :

पंचवार्षिक	:	5,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	:	15,000 रुपए (संस्थागत)
आजीवन	:	12,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	:	20,000 रुपए (संस्थागत)

बैंक खाते का विवरण :

SATRAACHEE FOUNDATION,
A/c No. 40034072172, IFSC : SBIN0006551,
State Bank of India, Boring Canal Rd.-Rajapool,
East Boring Canal Road, Patna, Bihar, Pin: 800001

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादन/प्रकाशन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

प्रकाशक : सत्राची फाउंडेशन, पटना

संपादकीय संपर्क :

आनन्द बिहारी
कला कुंज, दूसरा तल्ला
बाजार समिति रोड, बहादुरपुर, पटना, पिन : 800016

Website	:	http://satraachee.com
E-mail	:	satraachee@gmail.com
Mob.	:	9661792414, 9470738162

❖❖❖

SATRAACHEE

अनुक्रम

संपादकीय – *आनन्द बिहारी*

शोधालेख

07 :: भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण के मूलभूत सिद्धांतों का अध्ययन – *डॉ. राजीव रंजन, डॉ. प्रियंका जैन*

13 :: सदाचरण और लालकिताब ज्योतिष परंपरा – *सिमरन नांगिया, डॉ. मंजू सिंह*

24 :: महिला शिक्षा, सशक्तीकरण और पर्यटन – *हुस्न आरा*

31 :: भारत–नेपाल संबंध : वर्तमान संदर्भ – *प्रेमशंकर गोंड*

39 :: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन और पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव : एक अध्ययन – *अनुराग गौतम, डॉ. सत्य प्रकाश राय*

45 :: प्राचीन भारतीय शिक्षा परंपरा बनाम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कौशल विकास – *(प्रो.) डॉ. आशा*

51 :: भारत में जल संसाधन एवं आर्थिक विश्लेषण : एक दृष्टिकोण – *महेन्द्र यादव, राजेश कुमार यादव*

55 :: पिछले 25 वर्षों में कृषि जैव विविधता का ह्रास : नालंदा जिला के अस्थावाँ प्रखंड के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन – *अरविन्द कुमार*

63 :: वाग्गेयकार डॉ. अरविन्द कुमार के बंदिशों में अष्टनायिकाएँ : एक अवलोकन – *पल्लवि प्रिया, प्रो. (डॉ.) स्वस्ति वर्मा*

70 :: बज्जिकांचल के लोक वाद्य : एक अध्ययन – *राम ललित कुमार, प्रो. (डॉ.) स्वस्ति वर्मा*

76 :: भारतीय संगीत जगत को पूर्वांचल की देन – *प्रेमरंजन सिंह, प्रो. (डॉ.) जयकांत सिंह*

80 :: भारतीय शास्त्रीय और लोकनृत्य की शिक्षण परंपरा में पारिस्थितिक संयोजन और सामाजिक संदर्भ – *यामिनी, प्रो. स्वस्ति वर्मा*

91 :: बिहार के कुछ उत्कृष्ट ठुमरी गायक एवं गायिकाओं का योगदान : एक विश्लेषण – *सुरभी कुमारी, डॉ. ममता कुमारी*

97 :: कोशी क्षेत्रीय जनजीवन में लोकसंगीत का महत्व – *चंद्रकिरण रीणा, प्रो. नीरा चौधुरी*

103 :: मैथिली मुंडन गीतों के सामाजिक संदर्भ – *आराधना कुमारी*
प्रो. नीरा चौधुरी

111 :: ग्रामीण शक्ति संरचना पर आरक्षण का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन – *संजय भारती*

118 :: कौटिल्य का राजनीतिक अर्थशास्त्र : एक अध्ययन – *रोहित रंजन*

❖❖❖

संपादकीय

बिहार में स्त्री-शिक्षा की दिशा

देश को स्वतंत्र हुए 77 वर्ष हो गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक लोकतांत्रिक सरकार का गठन हुआ। सदियों से शोषित और सामाजिक दृष्टि से बिखरे देश को लोकतांत्रिक ढांचे में आगे ले जाना अत्यंत कठिन था। देश का आधा समाज शिक्षा से कोसों दूर था। उसे घर की चहारदीवारी के भीतर रखा गया था। गाँधी और अम्बेडकर के प्रयास से स्त्रियों को समाज की मुख्य्य धारा में लाने का प्रयास शुरू किया गया। परतंत्र भारत में गाँधीजी ने स्त्रियों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़कर उनके लिए घर के बाहर की दुनिया में एक छोटी-सी जगह बना दी थी। आगे चलकर आम्बेडकर के प्रयास से ऐसे सांविधानिक प्रावधान निश्चित किए गए जिससे भारतीय स्त्रियों के लिए शिक्षित होकर समाज और राष्ट्र की विकास-प्रक्रिया में भागीदर बनने का उचित अवसर मिल सके। आरंभिक दौर में यह कार्य अत्यंत कठिन था। सरकारी योजनाओं और स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से किए गए प्रयासों के बावजूद स्त्री-शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाने में काफी समय लगा। 80 के दशक के बाद इस दिशा में संतोषजनक परिणाम आने शुरू हुए। राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 1986 में स्त्री शिक्षा को केन्द्र में रखा गया था जिसके फलस्वरूप 1990 के दशक में महिला साक्षरता अभियान और साक्षरता मिशन चलाया गया। इस अभियान ने पूरे भारत में स्त्री-शिक्षा को तीव्रता प्रदान की और भारतीय समाज में स्त्री-शिक्षा को लेकर एक सकरात्मक माहौल बना। इन सबके बावजूद बिहार में स्त्री-शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं रही।

बिहार के लिए 1990 के बाद का दौर सामाजिक क्रांति की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। 90 के बाद की सरकार ने सामाजिक जागरूकता का बिगुल बजाया। शोषित एवं वंचित समाज में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी। समाज में यह विचार प्रचारित किया गया कि सम्मानजनक और बेहतर जीवन के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। इस विचार ने आम जन एवं स्त्रियों को शिक्षा के प्रति आकर्षित किया। कई प्रकार की सरकारी योजनाएँ भी लागू की गई लेकिन वे अपर्याप्त साबित हुई। शिक्षा और साक्षरता को लेकर सरकार ने कुछ नवीन प्रयोग भी किए पर वे योजनाएँ केवल चर्चा का विषय बनकर रह गईं। इस तरह बिहार में 90 का दशक साक्षरता औरर

शिक्षा के लिए सकरात्मक माहौल बनाने तक ही सीमित रहा।

महिला शिक्षा में उल्लेखनीय विकास का दौर 2005 के बाद शुरू हुआ। सरकारी योजनाएँ वित्तीय सहयोग लेकर आयीं। साइकिल योजना, पोशाक योजना और कई प्रकार की छात्रवृत्ति योजनाओं से स्कूल और कॉलेजों में बालिकाओं के नामांकन में तीव्र वृद्धि हुई। वर्तमान समय में बिहार के ज्यादातर शिक्षण संस्थान बालिकाओं की उपस्थिति से भरे पड़े हैं। अतः 2005 के बाद बिहार में महिला शिक्षा के क्षेत्र में जो विकास हुआ और जो जागरूकता आयी है, उसके लिए बिहार सरकार की सराहना करनी चाहिए। बिहार जैसे सामाजिक रूप से पिछड़े हुए प्रदेश में महिलाएँ पढ़ने में रुचि दिखा रही हैं, यह एक बड़ी उपलब्धि है। परंतु यह भी विचारणीय है कि स्त्री–शिक्षा में जो विकास देखने को मिल रहा है उसकी दिशा क्या है? बिहार में शिक्षा में पाकर बिहार महिलाएँ स्वयं को कहाँ देखने वाली हैं? इस विषय पर विचार करना इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि शिक्षा केवल अक्षरज्ञान या डिग्री संग्रह का नाम नहीं है। इससे समाज, राष्ट्र और मनुष्य का विकास व सुरक्षा निश्चित होता है।

वर्तमान बिहार में स्त्रियों को जिस तरह की शिक्षा दी जा रही है, वह आत्मघाती है। पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा के दौर में ऐसी शिक्षा, जो केवल डिग्री हासिल कर सरकारी नौकरियों में आवेदन करने की अर्हता भर प्रदान करे, अत्यंत घातक साबित हो सकती है। शिक्षा पाने का उद्देश्य वर्तमान के साथ कदमताल करने की योग्यता प्राप्त करना है, जबकि बिहार में दी जाने वाली शिक्षा केवल सपने देती है, उसे पूरा करने का सामर्थ्य नहीं देती है। ऐसी शिक्षा पाकर बिहार की महिलाएँ एक खास प्रकार की विसंगतिपूर्ण व्यक्तित्व को प्राप्त कर रही है जो अंततः समाज को नकरात्मकता की ओर ले जाने का काम करेगा। निष्कर्ष रूप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि बिहार में स्त्रियों को दी जाने वाली शिक्षा गुणवत्तापूर्ण नहीं है। ऐसी शिक्षा पाकर महिलाएँ केवल उपभोक्ता बनेंगी, उत्पादक नहीं। वे अनुकर्तृ बनेंगी, पथप्रदर्शक नहीं। कुल मिलाकर वे सत्ता और पूँजीवादी व्यवस्था की चारा बन सकती हैं, उससे ज्यादा कुछ नहीं है। सरकार को इस विषय में गंभीरता से विचार करना चाहिए और महिलाओं के लिए ऐसी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए जो उन्हें एक व्यक्तित्व के रूप में स्थापित कर सके ताकि महिलाएँ वर्तमान समय, समाज और परिवार की चुनौतियों का सामना करते हुए राष्ट्र–निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान करें।

❖❖❖

भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण के मूलभूत सिद्धांतों का अध्ययन

- डॉ. राजीव रंजन[1]
- डॉ. प्रियंका जैन[2]

संक्षिप्ति :

भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण के सिद्धान्त वैदिक संहिता के लेकर अन्य साहित्यिक ग्रन्थ में भी प्रकृष्ट रूप से विद्यामान प्राप्त होता है। कृषि एवं पर्यावरण भारतीय ज्ञान परम्परा के अभिन्न अंग के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण के गहरे सम्बन्धों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। यह शोध पत्र प्राचीन ग्रंथों, वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं आयुर्वेद सहित विभिन्न शास्त्रीय साहित्य के आधार पर भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण के मूलभूत सिद्धान्तों की खोज करता है। शोध के अनुसार, भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि को केवल अन्न उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का एक प्रकार माना गया है। प्राचीन ग्रंथों में कृषि के विभिन्न पहलुओं, जैसे भूमि की तैयारी, बीज चयन, फसल चक्र, जल प्रबंधन और उर्वरता प्रबंधन का विस्तृत वर्णन मिलता है। पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में, भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति के सभी घटकों, जैसे जल, वायु, भूमि, वनस्पति और जीव-जंतुओं को पवित्र माना गया है। प्राचीन ग्रंथों में इन घटकों के संरक्षण के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। शोध में पाया गया है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में कृषि और पर्यावरण संरक्षण के सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक हैं। ये सिद्धान्त सतत कृषि और पर्यावरण संरक्षण के लिए एक मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

बीज शब्द : पर्यावरण संरक्षण, कृषि, भारतीय ज्ञान परम्परा, सतत विकास।

वैदिक साहित्य को भारतीय ज्ञान परम्परा के आदि स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है। वैदिक साहित्य में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदाङ्ग को सम्मिलित किया जाता है। वैदिक संहिताओं में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद संहिता परिगणित हैं। इन वैदिक साहित्य में विभिन्न विषय, जैसे- धर्म, राजशास्त्र, दर्शन, नीतिशास्त्र, गणितशास्त्र, कला, नक्षत्रविद्या, आचार शिक्षा, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या भौतिकी, रसायन, जन्तुविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, प्रौद्योगिकी, कृषि संस्कृति, वृष्टिविज्ञान, जलविज्ञान, भूगर्भविद्या, पर्यावरण विज्ञान, धर्मदर्शन आदि विविध विषयों का प्रतिपादन न्यूनाधिक रूप में उपलब्ध हो जाता है। ऋषियों ने वैदिक मन्त्रों का साक्षात्कार किया तथा विश्वकल्याण की भावना को केन्द्र में रखकर इन मन्त्रों

1. सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली -110007

2. पी-एच.डी. (ज्योतिष), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

को मानवमात्र के समक्ष प्रकट किया। वैदिक मन्त्रों में निहित ज्ञान-विज्ञान की निधि न केवल तात्कालिक परिदृश्य हेतु उपयोगी थी अपितु काल के अजस्र प्रवाह में सहस्राब्दियाँ व्यतीत हो जाने के बाद भी अद्यावधि पर्यन्त ऋषियों की वह चिन्तन परम्परा आज भी उपयोगी तथा प्रासंगिक है। वैदिक साहित्य का ज्ञान वह अनंत सागर है जो मानव जाति को हर विषम परिस्थिति से उबारने की शक्ति रखता है। जब-जब मानवता पर कोई विषम परिस्थिति आया, तब-तब वैदिक ज्ञान ने हमें उससे निकलने का मार्ग दिखाया है। यही कारण है कि वैदिक ज्ञान की हर शाखा का विकास निरंतर होता रहा है। वैदिक ग्रंथों में कृषि विज्ञान, जिसे 'सस्यवेद' भी कहा जाता है, ज्ञान के इसी विकास की एक उज्ज्वल परंपरा का हिस्सा है। वैदिक साहित्य में ज्ञान-विज्ञान की कई शाखाओं का वर्णन मिलता है, जिनका स्वतंत्र विकास तो हुआ ही, साथ ही उन्होंने एक-दूसरे को समृद्ध भी किया है। सस्यवेद का मुख्य उद्देश्य कृषि विज्ञान का विकास और उपयोगिता था, लेकिन इसने पर्यावरण संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषय को भी अपने में समाहित किया। प्राचीन भारत में राजनीति और कृषि विज्ञान को समान महत्व दिया जाता था। राजा का कर्तव्य था कि वह कृषि और पर्यावरण दोनों का ध्यान रखे। वैदिक काल में कृषि न केवल जीविका का साधन था, बल्कि यह समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी था। वैदिक ग्रंथों में कृषि संबंधी कई मंत्र और प्रार्थनाएं मिलती हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि हमारे पूर्वज कृषि को कितना महत्व देते थे। वैदिक कृषि विज्ञान आज भी प्रासंगिक है। वैदिक ज्ञान में ऐसे कई तरीके बताए गए हैं, जिनसे हम पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना खेती कर सकते हैं। यह ज्ञान हमें टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने और भविष्य की पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को बचाने में मदद कर सकता है। वैदिक ग्रंथों में कृषि को जीवन का आधार माना गया है। अन्न के बिना जीवन संभव नहीं है। वैदिक कृषि विज्ञान पर्यावरण संरक्षण को भी महत्व देता है। यह हमें प्रकृति के साथ सद्भाव में रहने और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने के लिए प्रेरित करता है। प्राचीन भारत में राजा का कर्तव्य था कि वह कृषि और पर्यावरण दोनों का ध्यान रखे। इससे पता चलता है कि हमारे पूर्वज कृषि और पर्यावरण को कितना महत्व देते थे। वैदिक कृषि विज्ञान आज भी प्रासंगिक है। यह हमें टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने और भविष्य की पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को बचाने में मदद कर सकता है। वैदिक कृषि विज्ञान हमारे लिए एक अनमोल धरोहर है। यह हमें प्रकृति के साथ सद्भाव में रहना और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देना सिखाता है। हमें इस ज्ञान को संरक्षित और बढ़ावा देना चाहिए ताकि हम भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक बेहतर दुनिया बना सकें।

वैदिक साहित्य में सस्यवेद : ऋग्वेद के अक्षसूक्त में सस्यवेद का सबसे प्रारम्भिक वर्णन दृष्टिगत होता है। यह सूक्त गृहस्थ एवं कृषि व्यापार की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इस सूक्त के मन्त्रों में स्पष्ट रूप से कृषि की महत्ता को व्यक्त किया गया है। वैदिक ऋषि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "जुआ आदि का सर्वथा त्याग करना चाहिए तथा कृषिरूपी श्रेष्ठ कार्य को निश्चय ही अंगीकार करना चाहिए"।[1] ऋग्वेद में कृषिकर्म की महत्ता स्थापित करने के साथ-साथ कृषिशास्त्र के प्रादुर्भाव को लेकर भी पर्याप्त एवं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यह संहिता स्पष्ट रूप से "उन देवताओं अथवा देवतुल्य मनुष्यों को कृषिकर्म के आविष्कारकर्ता के रूप में स्वीकार करती है, जिन्होंने सर्वप्रथम विविध साधनों द्वारा वन्य भूमि को कृषियोग्य बनाया था।"[2] अथर्ववेद में उपलब्ध मन्त्र '*तां पृथी वैन्योऽद्यों क्, तां कृषिं सस्यं चाद्योक्*" कृषिविद्या के आद्य प्रणेता के रूप में पृथी वैन्य को स्थापित करता है। अन्न के महत्व को प्रतिस्थापित करते हुए अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि मनुष्य के जीवन का आधार अन्न ही है, तथा बिना अन्न के मनुष्य का जीवित रहना संभव ही नहीं हो सकता है- *जीवन्ति स्वद्वयाऽन्नेन मर्त्याः* ।[3] अन्न की महत्ता को बाद के ग्रन्थकारों ने भी स्वीकृत किया है तथा इससे संबंधित विभिन्न शास्त्रों का निर्माण किया है। शास्त्रों में अन्न के महत्व को इस प्रकार व्यक्त किया गया है 'अन्न प्राण है, अन्न बल है, समस्त कार्यों का साधन अन्न है एवं देवता-असुर-मनुष्यादि समस्त जीव जीवित रहने के लिए अन्न पर ही निर्भर करते हैं। अन्न की उत्पत्ति धान्य से ही होती है तथा धान्य की प्राप्ति बिना कृषिकार्य

के सम्भव नहीं हो सकती है। अतएव कृषिकर्म की महत्ता सिद्ध है तथा मनुष्य को अन्य कर्मों का त्याग करके कृषिकर्म को ही स्वीकार करना चाहिए "*तस्मात् सर्व परित्यज्य कृषि यत्नेन कारयेत्*"।[4] प्रारम्भिक ग्रंथों में न केवल कृषि के महत्त्व एवं उत्पत्ति के विषय में वर्णन प्राप्त होता है अपितु इसके भेद एवं प्रभेदों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सामान्यतः प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में समस्त कृषिकार्य को प्रमुखतः चार चरणों में विभक्त किया जाता रहा है। कृषि योग्य क्षेत्र की जुताई, अन्न के बीजों की बुआई करना व उनका संरक्षण करना, पके अनाज के पौधों की कटाई करना तथा कटाई किए गए पौधों से विविध विधियों द्वारा स्वच्छ अन्न का संग्रह करना। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में कृषिकार्यों को भी इन्हीं प्रभेदों में विभक्त किया गया है और स्पष्टतया कहा गया है- *कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः*"।[5] सस्यवेद की परम्परा में कृषि हेतु भूमि चयन के रूप में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सदैव उर्वर भूमि को ही कृषि कार्य हेतु उत्तम माना जाए, क्योंकि उर्वर भूमि में वपित बीजादि भली-भाँति अंकुरित होकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अनुर्वर अर्थात् 'खल' भूमि में बीज-वपन का निषेध किया गया है। ऊसर तथा खारी भूमि (क्षारीय भूमि) को भी कृषि योग्य नहीं माना गया है। "खले न पर्षान्"।[6] बीजादि वपन के उपरान्त बीज अंकुरित होकर पौधे के रूप में परिवर्तित हो जाता हैं। पौधे के रूप में परिवर्तित होने पर इन पौधों को उचित समय पर सिंचन की आवश्यकता होती है। अथर्ववेद में ऋषि सपष्ट रूप से कहते हैं कि अन्न के लिए उत्तम ऊर्वर भूमि की जितनी आवश्यकता होती है, उतनी ही आवश्यकता सिंचन हेतु जल की भी होती है। ऋषि की मान्यता है कि वृष्टिजल से भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है तथा कृषि कार्य में जल की अनिवार्यता सिद्ध ही है। यदि किसी विशेष क्षेत्र में पर्याप्त वृष्टि होती है तो कृषिकार्य सहज हो जाता है। परन्तु, जिन क्षेत्रों में वृष्टि पर्याप्त न हो तो सिंचन कार्य हेतु कूप, बावड़ी, तालाब, परिखादि, वृहद्जलाशय द्वारा सहायता प्राप्त करने की बात कही गई है- "*निखनेत्कूपवाप्यादीन् तटाकपरिखादिकान्*"[7] राजशास्त्र के ग्रन्थों में यह व्यवस्था की गई है कि यह राजा का कर्त्तव्य होना चाहिए अपने राज्य के अन्तर्गत बावड़ी, कुओं, जलाशयों, सुन्दर उद्यानों, आरामादि के चारों ओर की भूमि को कृषिकार्य के लिए सुरक्षित रखे। जलाशयों तथा प्राकृतिक जलस्रोतों के बिना कृषिकार्य में प्रयुक्त सिंचन कार्य हेतु जल का प्रबन्धन असम्भव हो जाएगा। अतः प्रजारक्षण हेतु संकल्पित शासकवर्ग का यह कर्तव्य है कि "वह जलस्रोतों तथा जलाशयों के संरक्षण तथा विकास हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे"।[8] वे जलसंरक्षण हेतु प्रशस्त मास तथा ऋतु पर भी कृषि शास्त्र के विद्वानों से पर्याप्त चर्चा की है। महर्षि पराशर का इस सन्दर्भ में मत है कि आश्विन और कार्तिक मास अर्थात् शरदकाल आने पर कृषकों को निश्चय ही कृषिकार्य हेतु जलसंरक्षण हेतु प्रवृत्त होना चाहिए- 'तथा संरक्षयेद् वारि शरत्काले समागते'[9] सस्यवेद को प्राच्य ज्ञानपरम्परा जल संरक्षण हेतु व्यक्तिगत प्रयास के साथ-साथ सामूहिक प्रयास पर भी बल देती है। कृषकगण तथा ग्राम के निवासी समस्त ग्रामीण जलाशयों की रक्षा तथा जल संरक्षण के प्रति उत्साहित हों। शासक भी इन नहरों तथा प्राकृतिक नदियों के संरक्षण के प्रति सदैव उद्यत रहे। नदी नहर यदि दोषपूर्ण या अल्पप्रवाही हो तो शासक ऐसे जलस्रातों की निश्चय ही रक्षा करे श्अतो भूपतिभिः सर्वैः कुल्यारक्षणघ्मुत्तमम। क्योंकि बावड़ी, तटाक, कुंआ आदि के साथ-साथ नहरों की रक्षा तथा अनुरक्षण का कार्य धार्मिक माना गया है। इनमें भी "नदी व नहरों की रक्षा का कार्य शेष के रक्षण कार्य से अधिक धर्म उत्पन्न करनेवाला माना गया है"।[10] जल संरक्षण का मार्ग प्रशस्त करते हुए कहा गया है कि जल के संचय हेतु वर्षाकाल ही उचित है; अतएव वर्षा ऋतु में ही इस जल को प्राप्त करने और उसके संचय का उद्योग करना चाहिए। यह राज्य का कर्तव्य है कि शासक ऐसी व्यवस्था करे कि वर्षा ऋतु में जो भी जल वर्षण होता है, उस समस्त जल को सभी के कल्याणार्थ बाँध, जलाशय आदि संग्रह स्थलों पर संग्रहित करने या रोकने में किसी प्रकार की समस्या न हो। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में वृष्टिजल का संरक्षण तथा भूजल के संवर्द्धन की यह विधि सार्वकालिक महत्ता की सिद्ध होती है। सस्यवेद परम्परा के आचार्यों ने जनसामान्य, कृषकवर्ग तथा शासक वर्ग के लिए स्पष्ट व्यवस्था दी है कि "मेघों द्वारा प्राप्त दुर्लभ जल को व्यर्थ नहीं बहने देना चाहिए"।[11] वृक्षारोपण

तथा वन संरक्षण के प्रति भी सस्यवेद परम्परा के आचार्यों ने शिथिलता का प्रदर्शन नहीं किया है। अपितु वन्य क्षेत्र के संवर्द्धन-परिवर्द्धन तथा संरक्षण के विविध सुगम मार्गों को अनावृत किया है। स्पष्ट है कि भारतीय ऋषि-परम्परा वनस्पतिशास्त्र से सम्बन्धित सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्तों से परिचित थी। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद सदृश प्राचीन वैदिक संहिताओं में जहाँ वनस्पतियों का चतुर्विध विभाजन प्राप्त होता है- फालिनी, अफला, अपुष्पा पुष्पिणी। वहीं परवर्ती चिकित्साशास्त्रीय ग्रन्थों में भी इसी परम्परा का अनुकरण करते हुए औषधियों का चार समूहों में वर्गीकरण किया गया है- "वनस्पति, वानस्पत्य, ओषधि और वीरुध"।[12] परन्तु मनुस्मृति में महर्षि मनु ने वनस्पतियों के आठ भेद कहे हैं- औषधि, वनस्पति, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, तृण, प्रतान तथा वल्ली। वनस्पतियों तथा वृक्षों की महत्ता को वैदिक काल से ही स्वीकार किया गया है। इन वनस्पतियों व वृक्षों की समानता माता से की गई है- औषधीरिति मातर:[13] जीव-जन्तुओं के निमित्त जीवन के आधारस्वरूप प्राणवायु प्रदान करनेवाले वृक्षों को स्वयं प्राणस्वरूप कहा गया - प्राणो वै वनस्पति:[14]। सस्यवेद की परम्परा जिसने वनस्पतियों के महत्त्व को स्थापित किया है। यही कारण है कि परवर्ती कृषिशास्त्रीय ग्रन्थों में वृक्षों की महत्ता तथा वृक्षारोपण तथा वृक्ष के संरक्षण विषयक सिद्धान्तों को अत्यन्त विस्तार पूर्वक प्रतिस्थापित किया गया है। न केवल वृक्षारोपण अपितु जल संरक्षण की महत्ता तथा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि दस कुएँ एक वापिका के तुल्य होते हैं। दस वापियाँ एक ह्रदया झील के तुल्य होती हैं। दस झीलों या ह्रदों की समानता एक पुत्र के बराबर की गई है। जबकि एक वृक्ष दस पुत्रों के तुल्य होता है[15] -

दशकूप समा वापी दशवापी समो ह्रद:।
दशह्रदसम: पुत्रो दश-पुत्रसमो द्रुम: ।।

वृक्ष, गुल्म, लता, वल्क, त्वक्सार और तृण इन: छ: जातियों में से किसी भी स्थावर (वृक्ष) का रोपण सदैव शुभ फल उत्पन्न करनेवाला होता है। वृक्ष का रोपण करने से मनुष्य को मर्त्यलोक में तो कीर्ति की प्राप्ति होती ही है। शरीर पात के उपरान्त भी शुभ की ही प्राप्ति होती है- "कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्ये चौव शुभ फलम्"। 'सस्यवेद' में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि केवल वृक्षों का रोपण कर देना ही पर्याप्त नहीं होता है, अपितु रोपण किये गए वृक्ष का पालन संतति के समान ही करना अनिवार्य होता है। तभी वृक्षारोपणजन्य शास्त्रोक्त शुभाशुभ फलों की प्राप्ति होती है- पुत्रवत्तपरिपात्याश्च पुतास्ते धर्मत: शुभा:। अतएव आवश्यक है कि यशस्वी तथा कीर्तिवान् बनने के इच्छुक व्यक्ति वाटिका या मार्गों के किनारे छायादार अथवा फलदार वृक्षों का रोपण करे, साथ ही साथ उन वृक्षों के सिंचन हेतु जलाशय का भी प्रबन्ध करे।[16] वृक्षों के रोपण तथा उसके परिपालन के साथ-साथ वृक्षों की रक्षा व्यवस्था पर भी भारतीय सस्यवेद की परंपरा में पर्याप्त बल दिया गया है। वृक्षों की रक्षा हेतु व्यक्तिगत स्तर, सामूहिक स्तर से लेकर राजकीय स्तर पर प्रयास करने की आवश्यकता को इन ग्रंथों में यथावसर रेखांकित किया गया है। जहाँ ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि हमें वनों की, वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि वृक्ष हमारे मित हैं। वृक्षों का भी विकास हो और उनके साथ-साथ हमारा और हमारे कुल का भी विकास हो।[17] इसी भावना का और अधिक विकास एवं विस्तार सस्यवेद में दृष्टिगत होता है। यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो मनुष्य लक्ष्मीस्वरूपा वृक्ष को काटते हैं वे पापी और दुराचारी के रूप में परिगणित होते हैं- "*ये च पापा दुराचारा: श्रीतरुच्छेदकारिण:*"। ऐसे पापात्मा और दुराचारी जन ब्रह्मा के दिवस पर्यन्त अर्थात् एक कल्प[18] पर्यंत वीच्यादि नरक को भोगते हैं। वृक्ष को काटनेवाले लोग स्वयं की मृत्युपर्यन्त इस भूलोक में ब्रह्मघाती के रूप में माने जाते हैं। इस प्रकार के ब्रह्मघाती जन जिस देश में निवास करते हैं वहाँ शान्ति का वातावरण नहीं होता, अपितु नित्य ही भय व आतंक का वातावरण बना रहता है। ऐसे राष्ट्र का राजा अल्पायु होता है अर्थात् चिरायु नहीं होता है। वृक्षों को काटनेवाले व्यक्ति की निन्दा करने के उपरान्त सामाजिक स्तर पर वृक्षों के उच्छेदन को हतोत्साहित करने के लिए कहा गया है कि, '*न च नन्दत्ययं लोको यत्र श्रीवृच्छेदनम्*।[19] अर्थात् लक्ष्मीस्वरूप वृक्षों का उच्छेदन करनेवाला समाज कभी भी आनन्दित नहीं रह सकता

है। व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर वनस्पति तथा वृक्षों के संरक्षण विषयक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के उपरांत सस्यवेद तथा राजनीतिशास्त्र के आचार्यों ने राज्य तथा शासन के प्रमुख के प्रति भी उत्तरदायित्व का निर्धारण किया है। आचार्यों का मत है कि राजा न केवल राज्य में स्थित वृक्षों, वनस्पतियों व पादपों की सुरक्षा सुनिश्चित करे। वृक्षों को हानि पहुंचानेवाले व्यक्तियों को दण्डित करे तथा इस सन्दर्भ में विविध स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में भी विस्तृत चर्चा की गई है। आचार्य मनु ने 'मनुस्मृति में औषधियों व वनस्पतियों के प्रति हिंसा, आग जलाने के लिए हरे-भरे पेड़ों को काटकर गिराना, इन कर्मों को उपपातक की श्रेणी में परिगणित किया है। साथ ही साथ वृक्ष व वनस्पतियों के प्रति की गई हिंसा हेतु प्रायश्चित का भी विधान किया है"।[20] आचार्य मनु ने वृक्षों को हानि पहुँचानेवाले व्यक्तियों को दण्डित करने का निर्देश राजा को दिया है, तथा दण्ड के परिमाण की व्यवस्था देते हुए कहा है कि "विभिन्न वनस्पतियों तथा वृक्षों के उपभोगों में जैसी-जैसी उत्तमता होती है, उसी-उसी को आधार मानकर वृक्षों को नुकसान पहुंचाने में दण्ड की मात्रा में न्यूनाधिक्य की व्यवस्था रखे"।[21] वृक्षादि को हानि पहुंचाने की स्थिति में दोषी अपराधी को कितना अर्थदण्ड आरोपित हो, इस विषय में विष्णुस्मृति ग्रन्थ द्रष्टव्य है। यहाँ स्पष्ट बताया गया है कि "फलदार वृक्षों को काटने वाले को उत्तम साहस का दण्ड, फूल देनेवाले वृक्षों को काटने पर मध्यम साहस का दण्ड तथा लता-वितानादि को काटने पर सामान्य साहस का दण्ड देना चाहिए"।[22] राज्य में स्थित महावनों को दावानल (जंगल की अग्नि), हानिकारक जीव-जन्तुओं और चोरों व तस्करों से सुरक्षित रखने का दायित्व भी राज्य का है और इस दिशा में राजा को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।[23] आचार्य शुक्र ने राज्य के लिए व्यवस्था दी है कि वृक्षादि के पालक के रूप में 'आरामाधिपति' संतक अधिकारी की नियुक्ति करे। "जिस व्यक्ति में वृक्षों को समयानुसार खाद, मिट्टी, जलादि के प्रयोग, वृक्षों में फल तथा पुष्प की वृद्धि के विविध साधन, वृक्षारोपण, वृक्षों को संस्कारित करना, वृक्षों के विविध रोग तथा उनके निवारण के उपाय आदि का भली-भाँति ज्ञान हो वही व्यक्ति 'आरामाधिपति' पद का अधिकारी होता है"।[24] स्पष्ट है कि वृक्ष, जल, भूमि, पर्वत, वायु आदि के प्रति वैदिक ऋषियों की श्रद्धा का भाव, पर्यावरण के इन अवयवों में देवत्व का आरोप कर, इन देवताओं के प्रति विविध असंख्य मन्त्रों को समर्पित कर पर्यावरण-संरक्षण की जिस महनीय परम्परा का शुभारम्भ किया था। पर्यावरण- संरक्षण की उसी उज्ज्वल परम्परा का विकास तथा सम्बर्द्धन 'सस्यवेद' तथा उसके आनुषांगिक शास्त्रों में प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण के सिद्धान्त भारतीय ज्ञान परम्परा का एक अभिन्न अंग है, यह कृषि और पर्यावरण के बीच अभिन्न संबंध को व्यक्त करता है। यह प्राचीन ज्ञान प्रणाली न केवल फसलों की उत्पादकता बढ़ाने पर केंद्रित है, बल्कि पर्यावरण के संरक्षण और संतुलन को बनाए रखने पर भी जोर देती है। भारतीय ज्ञान परम्परा में जल, मृदा और वायु जैसे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसमें जल के उचित उपयोग, मृदा की उर्वरता बनाए रखने और वायु प्रदूषण को कम करने के उपाय बताए गए हैं। इस प्राचीन ज्ञान प्रणाली में जैविक विविधता के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है। इसमें विभिन्न प्रकार की फसलों और पौधों के सह-अस्तित्व को बढ़ावा दिया गया है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बना रहता है। 'सस्यवेद' स्थानीय ज्ञान और प्रथाओं पर आधारित है, जो विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल हैं। यह ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है, जिससे पर्यावरण संरक्षण के प्रति समुदायों की जागरूकता बढ़ती है। 'सस्यवेद' में सतत कृषि पद्धतियों को बढ़ावा दिया गया है, जो दीर्घकालिक रूप से पर्यावरण के लिए लाभकारी हैं। इसमें जैविक खेती, फसल चक्र और मिश्रित खेती जैसी तकनीकों का उपयोग किया गया है। यहाँ पर्यावरण के प्रति गहरे सम्मान की भावना निहित है। इसमें प्रकृति को देवता के रूप में पूजा जाता है और उसके साथ सद्भाव में रहने का संदेश दिया गया है। भारतीय ज्ञान परम्परा में व्यक्त पर्यावरण संरक्षण के तत्त्व आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। यह प्राचीन ज्ञान प्रणाली हमें प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, जैविक विविधता के महत्व और सतत कृषि पद्धतियों के बारे में बहुमूल्य जानकारी प्रदान करती

है। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परम्परा में उपलब्ध कृषि एवं पर्यावरण के सिद्धांतों को अपनाकर हम एक सतत, स्थायी और संतुलित भविष्य कि ओर अग्रसर हो सकते हैं।

सन्दर्भ

1. 'अक्षेर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व', ऋग्वेद : 10/34/9
2. तदैव, 10/28/8
3. अथर्ववेद 12/1/22
4. कृषिपराशरः, 1/7
5. शतपथब्राह्मण, 1/6/1/3
6. ऋग्वेद, 10/48/7
7. बार्हस्पत्यकृषिशास्त्रम्, श्लोक-187
8. काश्यपीयकृषिपद्धतिः 3/107-108
9. कृषिपराशरः, 196-197
10. काश्यपीयकृषिपद्धति, 2/143
11. तदैव; 2/179-181
12. चरक संहिताः सुत्रस्थान, 1/36-37
13. ऋग्वेद, 10/97/4
14. ऐतरेय ब्राह्मण, 2/4
15. वृक्षायुर्वेदः, श्लोक -6
16. सस्यवेदः 13/15-16
17. ऋग्वेद - 3/8/11
18. सूर्य सिद्धान्तः 1/20
19. सस्यवेद, 13/44
20. मनुस्मृति, 11/64, 142
21. तदैव, 8/285
22. विष्णुस्मृतिः अध्याय 5
23. काश्यपीयकृषिपद्धति, 2/152
24. शुक्रनीति, 2/159-160

❖❖❖

सदाचरण और लालकिताब ज्योतिष परंपरा

❍ सिमरन नांगिया[1]
❍ डॉ. मंजू सिंह[2]

संक्षिप्ति :

मानवजाति अपने अस्तित्व के आरम्भ से ही आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दुखों के संताप से पीड़ित रहा है। इस दुखत्रय की अनुभूति होने के साथ ही निश्चितरूपेण मानव ने इन दु:खों से मुक्ति पाने के मार्गों के अन्वेषण में स्वयं की समस्त मेधा शक्ति को उपयोग में लाना आरम्भ कर दिया होगा। दु:खों से मुक्ति तथा सुखों की प्राप्ति के संसाधनों के आविष्कार को मानव जाति की आद्य प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार करना अतिशयोक्ति नहीं होगी। वैश्विक परिदृश्य में मानवजाति की प्राचीनतम रचना तथा ज्ञान-निधि के रूप में वेदों को स्वीकृत किया जाता है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा दृष्ट विविध ऋचाओं तथा उन ऋचाओं में अनुस्यूत मन्त्रों का उद्देश्य भी दुखों व अनिष्टों का परिहार तथा इष्ट-विषयों की प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करना ही प्रतीत होता है। न केवल ऋग्वेद अपितु समस्त वैदिक वाङ्मय में मानवजाति की उपरोक्त प्रवृत्ति का ही साक्षात्कार होता है। वैदिक साहित्य के लक्ष्यों की प्राप्ति के मार्ग को सहज व सुगम बनाकर उसे मेधासम्पन्न ऋषियों के अतिरिक्त सामान्य जन के लिए सुलभ बनाने की दिशा में वेदाङ्ग साहित्य का योगदान अद्वितीय है। शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष संज्ञक षड् वेदाङ्ग, अपने विवेच्य विषयों द्वारा वैदिक साहित्य के यथार्थ का प्रकटीकरण करते हैं। इन्हीं षड् वेदाङ्गों में से मूर्धन्य वेदाङ्ग ज्योतिष काल-विधान शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ तथा अपनी उपयोगिता तथा उपादेयता के कारण शीघ्र ही अपने विराट स्वरूप को प्राप्त हो गया। यह शास्त्र सिद्धान्त संहिता तथा होरा संज्ञक तीन स्कन्धों के रूप में पुष्पित और पल्लवित होकर अपनी उपयोगिता सिद्ध करने लगा। कर्म-सिद्धान्त पर आधारित यह शास्त्र कुण्डली के विश्लेषण द्वारा व्यक्ति के प्रारब्ध कर्मों का निर्धारण करता है तथा इन प्रारब्ध कर्म के फल प्राप्ति के क्रम को अत्यन्त विस्तार से प्रकट करता है। यद्यपि इस शास्त्र की विकास यात्रा के आरम्भिक चरण में इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्टों के परिहार हेतु विविध उपाय बताए गए थे, तथापि ये उपाय अत्यन्त श्रमसाध्य तथा इन उपायों में धन का अत्यधिक व्यय होने के कारण जनसामान्य इन उपायों को करने में अत्यन्त कठिनाई का अनुभव करते थे। अनेक शताब्दियों के व्यतीत होने

1. *शोधच्छात्रा, श्रीवेङ्कटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, अमरोहा (उत्तर प्रदेश). simran.nangia@yahoo.in*
2. *सहायक आचार्या, संस्कृत विभाग, श्रीवेङ्कटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, अमरोहा (उत्तर प्रदेश). dr.manjusinghvesen@gmail.com*

के उपरान्त *पंडित रूपचन्द जोशी* ने वैदिक ज्योतिष के सिद्धांतों की आधारशिला पर 'लाल-किताब ज्योतिष परम्परा' की श्रेष्ठ और अद्वितीय परम्परा का सूत्रपात किया। पंडित जी ने 'लाल-किताब' ग्रन्थ के पांचो संस्करणों में वैदिक ज्योतिष की शास्त्रीय परम्परा के आलोक में ही व्यक्ति के जीवन में प्राप्त होनेवाले शुभाशुभ फलों का निर्धारण किया, वहीं ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर ही अत्यन्त सरल, सुलभ तथा अल्पश्रम व अल्पव्यय के द्वारा ही इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के उपायों को जनसामान्य के लिए सुलभ कर दिया है। पंडित रूपचन्द जोशी द्वारा प्रणीत 'लाल-किताब' के उपायों की शास्त्रीय वैधानिकता ही इस शोध पत्र में प्रस्तावित है, तथा ज्योतिषशास्त्र की वैदिक परम्परा के ग्रन्थों तथा आचार्यों के दृष्टिकोण के निकष पर ही 'लाल-किताब' के विविध संस्करणों में उपलब्ध स्वर्णिम उपायों की प्रामाणिकता का मूल्याङ्कन तथा परीक्षण ही इस शोध-पत्र का उद्देश्य है।

बीज शब्द : दु:खत्रय, मानवीय मूल्य, ज्योतिष, लालकिताब, त्रिस्कन्ध ज्योतिष, ग्रहकारकत्व, भावकारक

"दुक्खं अरियसच्चं, दुखसमुदयं अरियसच्चं, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं,
तथा दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं"।

बौद्ध धर्म-दर्शन द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त चार आर्य सत्यों- दु:ख, दु:खसमुदय, दु:खनिरोध तथा दुखनिरोध गामिनी प्रतिपदा का मूल विषय दु:ख ही है। मानव जाति के अस्तित्व में आने के साथ ही सुख-दुख रूपी द्वन्द्व भी अस्तित्व में आ गया था। मानवमात्र की आदिम प्रवृत्ति सदैव सुख के साधनों की प्राप्ति तथा दुख के कारणों से मुक्ति के प्रति ही केन्द्रित रही है। वैदिक साहित्य को मानव जाति की प्राचीनतम रचना होने का गौरव प्राप्त है, तथा वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदाङ्ग साहित्य में सर्वत्र सुखों की प्राप्ति तथा दु:ख अथवा अनिष्ट विषयों के परिहार से सम्बन्धित सामग्री प्रचुरता से प्राप्त हो जाती है। वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य सायण ने भी उपरोक्त तथ्य की स्थापना करते हुए ऋग्वेदभाष्य भूमिका में स्पष्ट रूप से कहा है- 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं वेदयति यो ग्रन्थोऽसौ वेद:। अर्थात् आचार्य सायण सम्पूर्ण वेदों का उद्देश्य इष्ट की प्राप्ति और अनिष्टों का परिहार ही स्वीकृत करते हैं। स्पष्ट है कि इष्ट की प्राप्ति हेतु अनिष्टों का परिहार भी अनिवार्य ही है। अतएव कहा जा सकता है कि दुखों से मुक्ति तथा इष्ट विषयों की प्राप्ति के विविध उपायों के ज्ञान तथा इस लक्ष्य की सिद्धि में सहायक लौकिक उपायों के साथ-साथ विविध अलौकिक उपायों का अन्वेषण वेदों का प्रमुख ध्येय सिद्ध होता है।

ज्योतिष वेदाङ्ग तथा स्कन्धत्रय : वैदिक साहित्य के उपरोक्त लक्ष्य तथा ध्येय की प्राप्ति में वेदाङ्ग साहित्य सर्वाधिक सहायक साधन के रूप में सहस्राब्दियों से प्रतिष्ठित हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिषशास्त्र षड्-वेदाङ्गों के रूप में परिगणित हैं- "*शिक्षा व्याकरण कल्पो निरुक्तं ज्योतिषं तथा । छन्द: षड्ङ्गानीमानि वेदानां कीर्तितानि हि ।।*"[1] वैदिक मन्त्रों के यथार्थ बोध हेतु उपरोक्त षडङ्ग, परम सहायक सिद्ध होते हैं तथा इन षड् वेदाङ्गों का पृथक-पृथक उद्देश्य निर्धारित है। इन वेदाङ्गों के उद्देश्यों के प्रकटीकरण हेतु वेदपुरुष की कल्पना तथा उन वेदपुरुष के विविध अङ्गों के रूप में शिक्षा, कल्पादि की स्थापना परम सहायक सिद्ध होती है- "*छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम। तस्मात्साङ्गमध्मधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते*।।[2] महर्षि पाणिनि ने अपने विश्वविश्रुत ग्रन्थ पाणिनीय शिक्षा में ज्योतिष वेदाङ्ग, को वेदपुरुष के नेत्र के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि आरम्भ में ज्योतिष वेदाङ्ग, का एकमात्र प्रयोजन यज्ञादि वैदिक कर्मों के निमित्त उचित काल का निर्धारण ही था- "ज्योतिषं कालविधान शास्त्रम्, तथापि कालान्तर में इस 'ज्योतिष' वेदाङ्ग का विकास पृथक शास्त्र के रूप में हो गया। कालनियामक ज्योतिषशास्त्र की अनेक शाखाओं का विकास व प्रणयन इस शास्त्र के आचार्यों द्वारा किया गया। प्रारंभिक काल में ज्योतिषशास्त्र की दो ही शाखाएँ प्रचलन में थी- गणित एवं फलित। पुन:

ज्योतिर्विद्या के तीन स्कन्ध अस्तित्व में आए -सिद्धान्त, संहिता तथा होरा। ज्योतिषशास्त्र के इन तीन स्कन्धों में पृथक-पृथक विषय समाहित थे। 'सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्ध त्रयात्मकम्। वेदस्यनिर्मलं चक्षुर्ज्योतिश्शास्त्रकल्मषम्।।[3] इस स्कन्धों के विवेचनीय विषयों के सन्दर्भ में ज्योतिर्विद आचार्यों ने अपनी रचनाओं में विस्तृत चर्चा की है और कहा है- 'ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं तत्कात्स्न्य र्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता। स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ होरान्योऽङ्गघविनिश्चयश्च स्कन्धतृतीयोऽपरः ।।"[4] अर्थात् अनेक भेदों से युक्त ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्ध (सिद्धान्त, संहिता, होरा) है। जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसको संहिता कहते हैं। जिसमें गणित द्वारा ग्रहगति, स्थिति का निर्णय किया गया हो, उसको तन्त्र कहते हैं। इनके अतिरिक्त जातकफल, मुहूर्त आदि का निर्णय जिसमें हो उसको होरा स्कन्ध कहते हैं। स्कन्धत्रय में परिगणित होराशास्त्र के सन्दर्भ में आचार्य कल्याणवर्मा ने स्वकृति 'सारावली' में कहा है- 'विधाता लिखिता यासौ ललाटेऽक्षरमालिका। दैवज्ञस्तां पठेद्व्यक्तं होरानिर्मलचक्षुषा।।"[5] अर्थात् परमपिता ब्रह्मा ने पुरुषों / मनुष्यों के ललाट (भाग्य) में जो शुभाशुभ फल लिखा है, उसे होराशास्त्ररूपी नेत्रों द्वारा दैवज्ञ विचार कर स्पष्टतया उद्घाटित करने में समर्थ होते हैं। पूर्वजन्मार्जित शुभ व अशुभ कर्म तथा तत्स्वरूप शुभाशुभकर्मफलों के विनिर्णय हेतु चतुर जन 'होरा' शास्त्र का आश्रय ग्रहण करते हैं- 'कर्मफललाभहेतुं चतुराः संवर्णयन्त्यन्ये होरेति शास्त्रसंज्ञा।' फलित ज्योतिष या होराशास्त्र के ग्रन्थों में मनुष्य के जन्मकालीन आकाशीय ज्योतिषमान पिण्डों (ग्रह, नक्षत्र, राशियों) की स्थिति के आधार पर तत्कालीन आकाशीय मानचित्र अर्थात् कुण्डली का निर्माण होता है, तथा इसी जन्मकुण्डली के आधार पर उस व्यक्ति (जातक) के जीवन में घटित होनेवाली शुभाशुभ घटनाओं के फलकथन सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण किया जाता है।

ज्योतिषशास्त्रोक्त उपाय वेद-सम्मत : मनुष्य अपनी आदिम प्रवृत्ति के अनुकूल ही अपने जीवन में सुखों की परिपूर्णता और दुखों के विनाश के साधनों के अन्वेषण के प्रति अनादिकाल से प्रयासरत रहा है। अपने इस प्रयोजन के निमित्त उसने अनेक लौकिक व अलौकिक उपायों को ढूंढ निकाला है। उपरोक्त उपायों द्वारा दुखत्रय (आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) से ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक मुक्ति हेतु सतत प्रयत्नशील रहा है। वेदों में भी इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टों के परिहार से सम्बन्धित विविध उपायों को जनकल्याण हेतु वैदिक ऋषियों द्वारा उद्घाटित किया गया है। विविध वैदिक सूक्तों में मन्त्रों द्वारा इन्द्र, अग्नि, रुद्र, उषस्, आदि देवताओं से ऋषि इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्टों के परिहार हेतु स्तुतियाँ समर्पित करते हुए दृष्टिगत होते हैं। अग्निष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः, अश्वमेधेन यजेत पृथ्विकामः, दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत् आदि श्रुतिवाक्य इष्टप्राप्ति के विविध साधनों की ओर ही इंगित करते हैं। अथर्ववेद के 'अलक्ष्मीनाशन- सूक्त' में 'सामुद्रिकशास्त्र' के अनुसार अशुभ शारीरिक लक्षणों के द्वारा उत्पन्न अशुभ प्रभावों को मन्त्रों द्वारा दूर करने की बात की गई है- 'रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत। विलीघ्द्यं ललाम्यं१तां अस्मन्नाशयामसि।"[6] अर्थात् ऐसी स्त्री जिसके पैर हिरण की तरह, दाँत बैल की तरह, चाल गाय की तरह तथा आवाज कठोर है, हम उसके मस्तक पर स्थित ऐसे सभी बुरे लक्षणों व प्रभावों को मन्त्रों द्वारा दूर करते हैं। भारतीय ज्ञान परपरा में मन्त्र, मणि तथा औषधियों द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक त्रिविध दुःखों से मुक्ति के विविध मार्गों का उल्लेख प्राप्त होता है। त्रिविध दुखों से मुक्तिमार्ग के अन्वेषण तथा पथ-प्रदर्शन की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र का वैशिष्ट्य यह है कि यह शास्त्र न केवल घटना के घटित होने के समय से पूर्व ही उसकी सूचना प्रदान करने का सामर्थ्य रखता है, अपितु अप्राप्य इष्ट विषयों की प्राप्ति तथा अनिष्ट विषयों के घटित होने से पूर्व ही उसके निराकरण अथवा निवारण का मार्ग भी विविध उपायों के रूप में प्रस्तुत कर देता है। आचार्य वराहमिहिर भी इस तथ्य का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि- "यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभ तस्य कर्मणः पंक्तिः । व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव।।"[7] मिहिराचार्य द्वारा उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त व्यञ्जयति पद इस तथ्य को संकेतित करते हैं कि जन्मकालीन शुभाशुभग्रहस्थितिवशात् जन्मजन्मान्तर में अर्जित शुभाशुभ कर्मफल प्राप्ति का निरुपण करनेवाले सूर्यादिग्रह शुभ

अथवा अशुभ फलों की सूचना देते हैं।

होराशास्त्र परम्परा में लाल-किताब : ज्योतिषशास्त्रीय परंपरा के मतानुसार बीसवीं शताब्दी के मध्य "लाल-किताब" संज्ञक फलित ज्योतिष विषयक ग्रन्थरत्न अस्तित्व में आया। इस ग्रन्थ के रचनाकार के रूप में पंडित रूपचंद जोशी को स्वीकार किया गया है। ये पंजाब प्रान्त के फरवाला जिले के नूरमहल गाँव के निवासी थे। पंडित जी नियंत्रक रक्षा लेखा विभाग में लेखाधिकारी के रूप में कार्यरत थे और यहीं रहते हुए उन्होंने लाल-किताब के अधिकतर भाग की रचना की थी। लाल किताब के सिद्धांत मुख्यत: हिमाचल प्रदेश से लेकर कश्मीर तक के पहाड़ी क्षेत्र में प्रचलित ज्योतिष पद्धति का संकलन रूप है। यह ग्रन्थ तत्कालीन प्रचलित भाषा उर्दू-फारसी में लिखी गई है और इस ग्रन्थ में ज्योतिषशास्त्र के विस्तृत ज्ञान को संक्षिप्त करके अद्वितीय, अद्‌भुत और अनोखे सिद्धांतों के रूप में निबद्ध कर दिया है। पंडित रूपचन्द जोशी ने ज्योतिषशास्त्र के सिद्धांतों को 1939 से 1952 के मध्य पाँच भागों में प्रकाशित कराया। इन पुस्तकों की जिल्द का रंग लाल रंग का था, अतएव यह पुस्तक लाल-किताब नाम से प्रसिद्ध हुई। स्वयं पंडित रूपचन्द जोशी ने अपने ग्रन्थ के 1942 संस्करण के प्रथम फरमान में इसे "लाल-किताब" संज्ञा से ही सम्बोधित किया है-

"हुक्म विधाता जन्म मिले तो, लेख ज्योतिषी बतलाता है।
लाल किताब बच्चा ग्रह चाली, किस्मत साथ ले आता है।।"

भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही नवजात शिशुओं के जन्म से संबंधित सूचनाएं लाल वर्ण की पुस्तिकाओं में सुरक्षित रखने की परम्परा दृष्टिगत होती है। वस्तुत: भारतीय परम्परा में लाल रंग को जीवटता और विकास का प्रतीक स्वीकार किया गया है। प्राच्य भारतीय मतानुसार श्री सूर्यनारायण के सारथी अरुण से इस रक्त वर्ण की उत्पत्ति मानी जाती है। वर्तमान में लाल किताब के पाँच संस्करण प्राप्त हैं।

पण्डित रूपचंद जोशी ने इस पुस्तक के सिद्धांत एवं रहस्य को पूर्ण रूप से समझा और इसके पाँच संस्करण प्रकाशित किए जो निम्नलिखित हैं :

1. सामुद्रिक की लाल किताब के फरमान : प्रथम बार 1939 ई. में 383 पृष्ठ की एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। 'अमृतसर' के कलकत्ता फोटो हाउस द्वारा प्रकाशित लाल किताब के प्रकाशक के स्थान पर 'शर्मा गिरधारी लाल' लिखा था, यही नाम लेखक के लिए प्रयुक्त किया गया था।
2. सामुद्रिक की लाल किताब के अरमान - सन 1940 में प्रकाशित, 156 पृष्ठ।
3. लाल किताब तीसरा हिस्सा (गुटका) - सन 1941 में प्रकाशित, 428 पृष्ठ।
4. इल्मे सामुद्रिक की लाल किताब - सन 1942 में प्रकाशित, 384 पृष्ठ।
5. लाल किताब - सन 1952 में प्रकाशित।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र की होराशास्त्र या जातकशास्त्र की परम्परा में अठारह ऋषियों को शास्त्रप्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया गया है। जबकि कुछ आचार्यों ने इन शास्त्रप्रवर्तक आचार्यों की संख्या 19 स्वीकार की है। ज्योतिषशास्त्र के इन प्रवर्तक ऋषियों के अतिरिक्त ज्योतिर्विज्ञान के आचार्यों की एक सुदीर्घ परम्परा प्राप्त होती हैं, जिन्होंने अपनी मेधाशक्ति अनुभव तथा गुरु-परम्परा से प्राप्त ज्ञान के आधार पर लक्षाधिक ग्रन्थों की रचना कर ज्योतिषशास्त्रीय परम्परा के विकास में महती भूमिका का निर्वहन किया है। इन्हीं ग्रन्थों की परम्परा में आधुनिक काल के प्रसिद्ध दैवज्ञ पंडित रूपचन्द जोशी प्रणीत 'लाल-किताब' ग्रन्थमणि सिद्ध होती है। दर्शनशास्त्र की भारतीय परम्परा द्वारा स्वीकृत कर्म-सिद्धान्त पर आधारित ज्योतिषशास्त्र में क्रियमाण और आगम कर्म का आश्रय लेकर प्रतिकूल ग्रहयोगजन्य अशुभ प्रभावों के निराकरण का प्रयास किया जाता है। जहाँ मनुष्य के सञ्चित तथा प्रारब्ध कर्मों के विश्लेषण को आधार मानकर जातक के जीवन में घटित होनेवाली शुभाशुभ घटनाओं का फलकथनकिया जाता है,वहीं इष्टफलों की प्राप्ति तथा अनिष्टों के परिहार हेतु क्रियमाण कर्म का

आश्रय ग्रहण किया जाता है।

उपाय की दार्शनिक व वैदिक पृष्ठभूमि :

भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म-सिद्धान्त और पुनर्जन्म का सिद्धान्त ऐसे दो प्रमुख विषय हैं, जिस पर सम्पूर्ण मानवजाति का कल्याण निहित हैं। दर्शन शास्त्र की भारतीय चिन्तन-पद्धति मुक्त कण्ठ से उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों के सार्वकालिक व सार्वदेशिक महत्व को स्वीकार करती है। सञ्चित कर्म, प्रारब्ध कर्म तथा क्रियमाण कर्म के भेद से त्रिविध कर्म ही मानव के लौकिक तथा पारलौकिक यात्रा के मार्ग की प्रकृति का निर्धारण करता है। जन्मजन्मान्तर में किए गए कर्म के आधार पर ही मनुष्य के वर्तमान जीवन तथा उसकी समाप्ति के बाद पारलौकिक जीवन की नियति का सुनिश्चित होती है। वैदिक संहिताओं के साथ-साथ लगभग सम्पूर्ण वैदिक साहित्य वर्तमान जीवन में किए जानेवाले कर्म अर्थात् क्रियमाण कर्म के द्वारा वर्तमान जीवन में इष्ट विषयों की प्राप्ति तथा अनिष्ट विषयों के परिहार के मार्ग की विश्वसनीयता को स्थापित करता है। ऋग्वेदीय सूक्तों के मन्त्रों में विविध देवताओं (अग्नि, इन्द्र, सविता, रुद्र, विष्णु आदि) की स्तुतियों द्वारा भौतिक जगत में सुख प्राप्ति के विविध साधनों; यथा- स्वर्ण, गौ, पुत्र, शत्रुशमन, आरोग्य, अन्नादि की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। जो यह सुनिश्चित करता है कि मन्त्रों के प्रयोग, स्तुतियों के समर्पण तथा देवताओं की अराधना से वे सुख के साधन भी प्राप्त हो सकते हैं, जो सामान्यतया इन उपायों (स्तुति, मन्त्रादि) के अनुष्ठान के बिना असम्भव से लगते हैं। इसी प्रकार इन्द्र सूक्त, वरुण सूक्त, रुद्र सूक्तादि के मन्त्रों में सूक्त से सम्बन्धित देवताओं से बारम्बार रोगों के नाश, शत्रुओं का विनाश, दरिद्रता के नाश, सन्तानहीनता के कष्ट से मुक्ति आदि की बारम्बार प्रार्थना की गई है। 'त्वामग्ने अतिथि पूर्व्य विशः शोचित्केशं गृहपतिं निषेदिरे। बृहत्केतुं पुरूरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम्।।"[8] वैदिक देवता अग्नि के लिए समर्पित इस स्तुति में ऋषि धन की प्राप्ति, शान्ति की प्राप्ति, शत्रुओं के विनाश हेतु तथा सर्वविध सुरक्षा हेतु मन्त्र को समर्पित करते हुए दृष्टिगत होते हैं। वैदिक ऋषियों द्वारा मानव जाति के लिए उद्घाटित कल्याण का मार्ग ज्योतिषशास्त्र के उन सिद्धान्तों के लिए भी पथप्रदर्शक सिद्ध हुआ, जिनमें ग्रहों तथा देवताओं की उपासना, स्तुति तथा प्रार्थना द्वारा दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति का कथन किया गया है। वैदिक देवता रुद्र को समर्पित मन्त्रों में क्रूर ग्रहों की शान्ति हेतु स्तुतियों के प्रयोग के ज्योतिषशास्त्रीय विधि की झलक प्राप्त होती सी दिखती है- 'आरे ते गोनमुत पुरुषनं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु। मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाद्या च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः।।' अर्थात् हे क्षयद्वीर आपका गोघ्न तथा पूरुषघ्न आयुध हमसे दूर रहे। आपका सुख हम में निवास करे और आप हमें सुख दें तथा हमारे परिवार को बढाने वाले बनें तथा हमारे कल्याण हेतु हमारे पक्ष में कथन करें।[9] इसी प्रकार उपनिषदों में भी पारलौकिक कल्याण के लिए विविध देवताओं से प्रार्थना के प्रसङ उपलब्ध होते हैं- "अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम।।"[10] अर्थात् हे अग्निदेवता! मैं अब अपने परमप्रभु भगवान की सेवा में पहुंचना तथा सदा के लिए उन्हीं की सेवा में रहना चाहता हूँ। आप शीघ्र ही मुझे परम सुन्दर मङ्गलमय उत्तरायण मार्ग से भगवान के परमधाम में पहुंचा दीजिये, आप मेरे कर्मों को जानते हैं। तथापि आपके ध्यान में मेरा कोई ऐसा कर्म शेष हो, जो इस मार्ग में प्रतिबन्धक रूप हो तो आप कृपा करके उसको नष्ट कर दीजिए। स्पष्ट है कि मन्त्रों के प्रयोग द्वारा अनिष्ट के नाश, इष्ट विषयों की प्राप्ति तथा देवताओं के कोप से बचने का वैदिक प्रमाण प्राप्त हो जाता है। चिकित्सा शास्त्रीय ग्रन्थों में भी रोगी की चिकित्सा हेतु मन्त्र, मणि तथा औषधि के प्रयोग के साक्ष्य चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदि ग्रन्थों में भी प्राप्त हो जाते हैं।

लाल किताब ज्योतिष परम्परा में उपाय-भेद : लाल-किताब या अरुण संहिता ज्योतिष परम्परा जनकल्याण के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और निराली प्रकृति की है- "लाल किताब है ज्योतिष निराली, जो किस्मत सोई को जगा देती है। फरमान पक्का देखे बात आखिरी, दो लफ्जी से जहमत हटा देती है।[11] लाल किताब परम्परा के प्रतिनिधिभूत पाँचों संस्करणों (1939, 1940, 1941, 1942, 1952) सहस्राधिक

ज्योतिषशास्त्रीय उपायों को ज्योतिषशास्त्र में श्रद्धा रखने वाले सुधीजनों तथा त्रिविध कष्टों व दुखों से पीड़ित मानवमात्र के कल्याण हेतु संकलित किया गया है। इन समस्त उपायों को शोध की दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दुओं में विभक्त किया जा सकता है। रत्नधारण, दिनचर्या, आचरण, देवताओं की उपासना, परिवार के सदस्यों से व्यवहार, बहते जल के उपाय, जीव-जन्तुओं से सम्बन्धित, दान, धातु सम्बन्धी उपाय, स्वयं के शरीर से जुड़े उपाय, औषधि ग्रहण, वस्त्रों द्वारा, सामाजिक सेवाकार्य, ग्रहों के भाव परिवर्तन विषयक उपाय, इन उपायों के द्वारा ग्रहों के शुभ प्रभाव में वृद्धि तथा अशुभ प्रभावों में न्यूनता लाने का उद्यम किया जाता है। पंडित रूपचन्द जोशी ने लाल-किताब के 1939 संस्करण अर्थात् 'सामुद्रिक की लाल किताब के फरमान' में नवग्रह, नवग्रहों के देवता, नवग्रहों का स्त्री-पुरुष भेद, ग्रहों के वर्ण, संतानहीनता के सन्दर्भ में उत्तरदायी ग्रहों के उपायों, नवग्रह के सामान्य उपायों हेतु वस्तुओं के विषय में अत्यन्त विस्तारपूर्वक चर्चा की है।[12] निम्नलिखित तालिका द्वारा उपरोक्त विषय को स्पष्ट किया जा रहा है-

ग्रह	क़िस्म ग्रह	ग़ैबी ताक़त में	रंग	उपाओ वास्ते औलाद दीगर बजूहात	उपाओ आम की चीजें
बृहस्पत	नर	ब्रह्मा	जर्द	हरी पूजन	दाल,चना,सोना
सूरज	नर	विष्णु	गंदुमी	कथा हरिवंश	गंदुम,सुर्ख तांबा
चंद्र	स्त्री	शिवजी	दूध का	अराध्य पूजन	चावल,दूध,चांदी
शुक्कर	स्त्री	लक्ष्मी	दही का	लोगों की पालना	घी,दही,काफूर,मोती,सफेद रेत
मंगल	नर	हनुमान	सुर्ख	गायत्री पाठ	दाल मसूर-लाल
बुध	मुखन्नस	दुर्गाजी	सब्ज	दुर्गा पाठ	मूंग सालिम,जमुर्द
सनीचर	मुखन्नस	भैरोंबली	स्याह	राजा की उपासना	माश सालिम-लोहा
राहु	मुखन्नस	सरस्वती	नीला	कन्या दान	सरसों-नीलम
केतु	मुखन्नस	गऊ माता	चितकबरा	दान कपिला गाय	तिल

लाल किताब के उपायों में प्रतिबिम्बित उच्च मानवीय मूल्य- लाल-किताब ज्योतिष में मनुष्य की कुण्डली में स्थित द्वादश भावस्थ (लग्नादि) ग्रहों की स्थिति के आधार पर फलादेश अथवा उपाय आदि बताए गए हैं। पंडित रूपचन्द जोशी जी ने ग्रहों को उनकी कुण्डली में भाव-स्थिति के आधार पर विभाजित किया है, तथा आवश्यकतानुसार ग्रन्थ के विभिन्न स्थलों पर उनका प्रयोग करते हुए तत्सम्बन्धित उपायों को बताया है। ये उपाय न केवल ग्रहों के अशुभ प्रभाव को दूर करने के लिए बताए गए हैं, अपितु ग्रहों के शुभ प्रभावों में वृद्धि तथा शुभ प्रभाव प्रदान करने की क्षमता के रक्षणार्थ भी इन उपायों को प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ, लाल किताब के अनुसार द्वितीय भावस्थ गुरु वर्षफल में स्वास्थ्य को बिगाड़ता है तथा ससुराल में धन हानि का योग बनता है। अब इस अशुभ स्थिति से निवारण हेतु लाल-किताब में उपायों की सूची प्राप्त होती है, जिसमें कुछ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं - (i) परोपकारी बने एवं दान-धर्म में विश्वास करें। (ii) घर आए व्यक्ति की सेवा से पीछे न हटें। (iii) घर में कच्चा हिस्सा अवश्य रखें। ठीक इसी प्रकार लग्नस्थ सूर्य को 'लाल-किताब' ज्योतिष में अशुभ प्रभाव युक्त माना गया है। इसके अतिरिक्त लग्नस्थ सूर्य के कुछ अन्य भी ग्रह-योग बताए गए हैं, जो अशुभ फलद तथा कष्टकारक होते हैं। जैसे- 'सूर्य खाना (भाव) नम्बर एक एवं शुक्र खाना नम्बर सात में हो तो पिता बचपन में मरे। सूर्य खाना नम्बर 1 में तथा मंगल खाना नम्बर 5 में हो तो लड़का मरे या गर्भपात हो। सूर्य लग्नस्थ (खाना 1) तथा शुक्र खाना नम्बर (भाव संख्या) सात में हो तो पत्नी की सेहत पर बुरा प्रभाव पड़ता है। लग्नस्थ सूर्य तथा इस सूर्य सम्बन्धित अन्य ग्रहयोगजन्य कष्टों के निवारक 'लाल-किताब' में वर्णित उपाय में कहा गया है कि, (i) शराब, मांस, मछली का सेवन न करें। (ii) मंगल की वस्तुओं (देसी खांड-मसूर की दाल-सौंफ-घुटारे-शहद) का दान करें। (iii) शनि की वस्तुएँ (नारियल-तेल- बादाम-उड़द व चने की दाल) को जल में प्रवाहित करें।

यहाँ द्रष्टव्य है कि उपरोक्त लाल किताब के उपायों में दान अहिंसा, अतिधि-सेवा, पञ्चमहायज्ञ से

सम्बन्धित क्रियाकलाप, जीव-जन्तुओं के लिए आश्रय तथा आहार आदि की व्यवस्था से जुड़े हुए कार्य ही हैं। जिसकी मान्यता तथा स्वीकार्यता वैदिककाल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त सिद्ध है तथा प्रत्येक सनातन धर्म को माननेवाला व्यक्ति इसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक अपने आचरण में लाता रहा है। शुभ प्रभाव देनेवाले ग्रहों अथवा सामान्य ग्रहों के शुभत्व में वृद्धि करनेवाले लाल किताब के उपायों पर भी दृष्टिपात आवश्यक है। चन्द्रमा खाना नम्बर तीन में हो तो यह शुभफलद माना गया है।[13] इस ग्रह स्थिति में जातक की कठिनाई, कष्ट, दु:ख, मृत्यु एवं चोरी से रक्षा होती है, मन की शान्ति रहती है, परिवार की महिलाओं का मान सम्मान बना रहता है, सदा ईश्वरीय कृपा बनी रहती है, मधुर बोलने वाला, बहन व भाईयों का पालन करने वाला तथा आयु व धन में वृद्धि करने वाला होता है। स्पष्ट है कि 'लाल-किताब' के रचनाकार की दृष्टि में तृतीय भावस्थ चन्द्रमा अत्यन्त शुभ फल देनेवाला होता है। शुभ फलोत्पादकता से युक्त होने के बाद भी तृतीय भाव में स्थित चन्द्रमा के शुभत्व की वृद्धि हेतु ग्रन्थकार पुन: उपायों की लम्बी फेहरिस्त प्रस्तुत करते हैं (i) दुर्गा पूजा एवं दुर्गा चालीसा का पाठ करें। (ii) कन्या के जन्मदिन के अवसर पर दुग्ध, चावल एवं चाँदी का दान करें। (iii) पुत्र के जन्मदिवस पर ताँबा, गेहूँ, गुड़, ताम्र आदि का दान करें। (iv) लड़की या बहन का कन्यादान करें। (v) छोटी कन्याओं को भोजन कराएँ एवं लाल रंग के वस्त्र का दान द्वितीय भावस्थ करें। ठीक इसी प्रकार, द्वितीय भावस्थ शुक्र ग्रह में लाल किताब परम्परा के मतानुसार यह ग्रहस्थिति शुभफलद मानी गई है। द्वितीय भाव में शुक्र स्थित हो तो 'धन की कमी नहीं रहेगी, 60 वर्ष की आयु तक खूब धन की प्राप्ति होगी, दीर्घायु होगी तथा शत्रुओं का भय नहीं होगा तथा शत्रु हानि नहीं पहुंचा पाएँगे, स्त्री-गो-धनादि सर्वविध शुभ फल प्राप्त होंगे। शुभ प्रभाव से युक्त होने पर दूसरे खाने में स्थित (द्वितीय भावस्थ) शुक्र के शुभत्व में और अधिक वृद्धि हेतु पंडित रूपचन्द जोशी अपनी रचना लाल-किताब में सर्वसुलभ उपाय बतलाते है (i) आलू को हल्दी से पीला करके गो को खिलाएँ। (ii) बागारी और परस्त्री के सम्पर्क से दूर रहें (iii) गाय का पीला घी धर्म-स्थान पर रखें (iv) गाय (बिना सींग की) की सेवा करें। यहाँ भी यह ध्यान देने योग्य विषय है कि यद्यपि दूसरे खाने का शुक्र स्वयंमेव शुभफल प्रदान करनेवाला होता है, तथापि इन शुभ प्रभावों की वृद्धि हेतु लाल-किताब में उपाय दिए गए हैं। एक अन्य उदाहरण द्वारा लाल-किताब ज्योतिष परम्परा की उपरोक्त प्रवृत्ति पर दृष्टिपात करते हैं। केतु-खाना नम्बर-2 में हो तो जातक घूमनेवाला होता है तथा निरन्तर इसकी उन्नति होती रहेगी जीवन में यात्रा का आधिक्य होगा, फिर भी उन्नति करता ही रहेगा। भले ही प्रचुर मात्रा में धनागम होता रहेगा, परन्तु धन का संचय नहीं हो पाएगा। इन शुभ प्रभावों में वृद्धि हेतु उपायों में कहा गया है कि-(i) धर्म-स्थान में बृहस्पति की वस्तुएँ यथा केसर, सोना-चना-हल्दी का दान करें। (ii) कन्याओं की सेवा करें। (iii) कुत्ते को रोटी दें अथवा कुत्ते को पालना भी फायदेमन्द साबित होता है। ग्रहों के विभिन्न खानों में स्थित रहने पर प्राप्त होनेवाले शुभ फलों में वृद्धि के विविध उपायों में यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है कि 'लाल-किताब' में पंडित रूपचन्द जोशी ने उपायों के द्वारा वस्तुत: समाज के विभिन्न वर्गों, परिवार के सदस्यों, विविध जीव-जन्तुओं, प्रकृति के विविध अवयवों के कल्याण की भावना को ही ग्रन्य के उद्देश्यों के केन्द्रबिन्दु में रखा है। सनातन धर्म तथा वैदिक धर्म के प्रतिनिधि ग्रन्थों में जिस 'पञ्चमहायज्ञ' के नियमित अनुष्ठान की व्यवस्था दी गई है, उन्हीं अनुष्ठानों को 'लाल-किताब' के रचनाकार ने ग्रहों के विविध उपायों में अनुस्यूत करके सर्वकल्याण की भारतीय चिरन्तन परम्परा को सबल करने का स्तुत्य प्रयास किया है। पञ्चमहायज्ञ- "अधेगे पञ्च महायज्ञास्तान्येव महासत्राणि- देवयज्ञ: पितृयज्ञो भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति।[14] 'स्वाध्यायो वै प्रास्मयज्ञ:'[15] "देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजक"[16] ग्रहों का जातक की जन्मकुण्डली या टेवा के अलग-अलग खानों में (भावों में) स्थित रहने पर शुभाशुभ फल का कथन भारतीय ज्योतिषशास्त्र की परम्परागत शैली तथा लाल-किताब ज्योतिष की परम्परा दोनों में ही प्राप्त होती है। जातक विविध ज्योतिषशास्त्रीय पारम्परिक या लाल-किताब परमारा में प्राप्त उपायों का उपयोग करके

ग्रहों के शुभ प्रभावों में वृद्धि तथा अशुभ प्रभावों में ह्रास करने का यत्न कर उसमें सफलता तो प्राप्त कर ही लेता है। परन्तु यदा-कदा जाने-अनजाने अपने आचरण-व्यवहार क्रियाकलाप-उपायों के द्वारा जीवन में शुभत्व का सञ्चार करने वाले ग्रहों के प्रभाव को या तो नष्ट कर लेता है अथवा ग्रहों के शुभ फल देने की प्रकृति को अशुभ में परिणत कर देता है। 'लाल किताब' में ग्रन्थकार पंडित रूपचन्द जोशी ने यथावसर उपरोक्त विषयों पर चर्चा भी की है, तथा उससे बचने के लिए जातक को चेतावनी तो दी ही है साथ-ही-साथ कुछ ऐसे उपाय भी बताए हैं, जो उपरोक्त अवांछित परिस्थिति में जाने पर जातक की सहायता कर उनका कल्याण कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में सूरज खाना नम्बर दो में रहने के फल को उदाहरणार्थ ग्रहण करते हैं। इस ग्रह स्थिति का फलादेश करते हुए 'लाल-किताब' कहती है कि "जेठ महीने सूरज दूजे, माया शेर सवारी हो। त्रैलोकी का सुख सागर तो, उम्र का इच्छाधारी हो। खुद चमके सबको दमकावे, घर 6वां भी बढ़ता हो।"[17] अर्थात् ऐसा जातक परम तेजस्वी, भौतिक सुखों तथा श्रेष्ठ वाहन का अधिष्ठाता, त्रिलोक के सुख का भोक्ता, इच्छानुसार कार्यों को सिद्ध कर लेनेवाला, स्वयं के साथ-साथ दूसरों को भी उन्नति करनेवाला होता है। इस प्रकार दूसरे खाने के सूर्य का शुभ फल कथन के उपरान्त पंडित रूपचन्द जोशी ऐसे विषयों की ओर जातक को इंगित करते हुए सचेत करते हैं जो दूसरे खाने के शुभ फल को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने का सामर्थ्य रखता है- "सखी होवे तो बढ़ता जावे, भिक्षा से वह गलता हो। झगड़े औरत जर जमीना, बादल का अंधेरा हो।"[18] स्पष्ट है कि यदि ऐसा जातक किसी से मुफ्त में कुछ लेगा तो उसे स्वास्थ्य सम्बन्धी गम्भीर समस्या हो जाएगी तथा धन का भी नाश होने लगेगा। यदि वह जातक शुक्र (स्त्री-धन-भूमि) के झगड़ों से दूर रहेगा तो सदैव उन्नति करता रहेगा, अन्यथा आँधी के बादलों से स्वयं के जीवन में अन्धेरा कर लेगा। इसी प्रकार दशमस्थ मंगल (नेक) होने पर जातक को शुभ फल प्राप्त होते हैं। इस ग्रहस्थिति के विषय में लाल-किताब कहती है कि, "सनीचर (शनि) के घर मंगल राजा होगा, वाल्दैन भी मानिन्द राजा हों, बशर्ते कि मंगल अकेला हो।"[19] इस शुभ फल का निर्देश करने के बाद, जातक को आगाह किया गया है कि चोरी की हमेशा सजा पावे'[20] स्पष्ट है कि चोरी करना जातक के लिए अशुभ फल देगा। इस विषय में एक अन्य उदाहरण निश्चय ही विचारणीय है। आठवें खाने (भाव का) का चन्द्र- "ससुराल तारे दामाद तारे, तारेगा मामा को भी। उल्टी गंगा होके तारे, आयु के आखिर भी।"[21] "अगर यह जातक जौहरी या जुआ खेलनेवाला हो तो बदबख्ती होगा।" - इस कथन के द्वारा पंडित रूपचन्द जोशी ने 'जुआ खेलने के कार्य को' आठवें खाने के चन्द्र से शुभ फलों की उत्पत्ति का बाधक माना है[22]। इसी ग्रहस्थिति के उपाओ (उपाय) बताने के क्रम में कहा है कि- "अगर बुजुर्गों के नाम पर दूध की खैरात (दान) न करे तो दमा-मिरगी-लावल्दी होगी।" लाल-किताब में बताए गए उपरोक्त उपायों द्वारा ग्रहों के शुभ फलों में वृद्धि, अशुभ फलों में कमी या नाश तथा ग्रहों के शुभ प्रभाव देने की प्रकृति के संरक्षण का सामर्थ्य है।

ज्योतिषशास्त्रीय परम्परा में उपाय का स्वरूप - ज्योतिषशास्त्रीय परम्परा में वर्णित उपायों की आधारशिला उपनिषद्-दर्शन द्वारा स्थापित कर्मसिद्धान्त ही है। न केवल उपायों अपितु सम्पूर्ण होराशास्त्र के विवेच्य विषयसमूहों के निर्णय हेतु कर्म सिद्धान्त ही एक मात्र दृढ़ स्तम्भ सिद्ध होता है- "यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिः। व्यञ्जयति शास्त्रामेतत्रमसि द्रव्याणि दीप इव।।"[23]

आचार्य वराहमिहिर द्वारा प्रस्तुत यह श्लोक ज्योतिषशास्त्र में कर्म-सिद्धान्त की महत्ता को स्पष्ट करता है। सञ्चित, प्रारब्ध तथा क्रियमाण इन त्रिविध कर्मों में से प्रारब्ध कर्म के आधार पर ही उपायों का चयन किया जाता है। शास्त्रीय परम्परा में प्रारब्ध के भेद स्वीकार किये गए हैं-(i) दृढ़मूलक तथा (ii) अदृढ़मूलक। दृढ़मूलक कर्म स्थिर संज्ञक तथा अदृढ़मूलक कर्म उत्पात संज्ञक होते हैं। दृढ़मूलक या स्थिर संज्ञक कर्मों के फल को बदला नहीं जा सकता। परन्तु अदृढ़मूलक कर्म या उत्पात संज्ञक कर्मफल को विविध शास्त्रोक्त उपायों द्वारा परिवर्तित तथा परिवर्द्धित किया जा सकता है- 'हन्यते दुर्बलं दैवं पौरुषेण विपश्चिता। स्पष्ट है कि

ज्योतिषशास्त्र की किसी भी विद्या (जन्मपत्र, शकुन, प्रश्नादि) से अशुभ निर्णीत हो चुका हो। वहाँ ग्रहशान्ति आदि विविध शास्त्रीय उपायों द्वारा उन पापों से भी निवृत्त हुआ जा सकता है, जो पाप अशुभ फल प्रदान करने के लिए उद्यत हो रहे है, भले ही उन पाप कर्मों की जड़ें जमी हुई ही क्यों न हो।[24]

न केवल अशुभ फलों की निवृत्ति के सन्दर्भ में अपितु शुभ कर्मजन्य शुभ फलों की प्राप्ति हेतु अथवा उसमें वृद्धि हेतु भी उपायों की व्यवस्था की गई है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कि कृषिकर्म को केवल भाग्य के अधीन नहीं छोड़ा जाता अपितु श्रेष्ठ फलप्राप्ति हेतु निरन्तर विविध उपाय किए ही जाते हैं। अतएव केवल भाग्य को ही सबकुछ मानकर उस पर आश्रित हो जाना बुद्धिमत्ता नहीं है, अपितु उपायों कर्मों द्वारा उसे और सुदृढ़ बनाने का उद्योग करना ही चाहिए- 'फलेद्यदि प्राक्तनमेव तत्किं कृष्याद्युपायेषु पर: प्रयत्न:। श्रुति: स्मृतिश्चापि नृणां निषेधति ध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा।।'[25] महर्षि पराशर ने भी इन ज्योतिषशास्त्रोक्त उपायों की विश्वसनीयता तथा वैधानिकता को अपने ग्रन्थ 'बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम' में स्थापित किया है।

इस ग्रन्थ के पूर्वजन्मशापद्योतनाध्याय में महर्षि ने इन उपायों को उमा-पार्वती के संवाद से उत्पन्न माना है - "यथोमया हि पृष्टेन शिवेन कथितं पुरा"[26] इसी प्रसङग में ऋषि मैत्रेय द्वारा महर्षि पराशर से उन उपायों को बताने हेतु प्रार्थना की गई है, जिससे अपुत्रों ग्रह्यागों द्वारा सिद्ध, को पुत्रादि की प्राप्ति होती है- "अपुत्रस्य सुतप्राप्तेरुपायं कृपयोच्यताम्"[27] इन उपायों में गो, भूमि, तिल-सुवर्ण, अन्न-कन्या ग्रह आदि का दान, गायत्री जप, ब्राह्मण भोजन, गया श्राद्ध, पीपल का वृक्ष लगाना, हरिवंश पुराण का श्रवण, फलयुक्तभूमि का दान, वापी-कूप-तडागादि का निर्माण, बाँध का निर्माण, रुद्राभिषेक, चाँदी का पात्र, नीलमणि का दान, मन्त्र-यन्त्र-औषधि का प्रयोग सेवन, हरिकीर्तन, नागपूजा आदि का वर्णन किया गया है।[28] महर्षि पराशरोक्त इन उपायों में जीवमात्र के कल्याण के साथ-साथ प्रकृति के संरक्षण का का ध्येय निहित है ऐसा स्पष्टतया दृष्टिगत होता है।

वैदिक ज्योतिष एवं लाल-किताब के उपायों का अन्त:सम्बन्ध - वैदिक ज्योतिष के उपायों में सर्वकल्याणप की उपरोक्त उद्दात्त भावना का दर्शन हमें लाल-किताब परम्परा में भी दृष्टिगत होती हैं- जहाँ कहा गया है कि- "लिखत जब विधाता किसी की हो शक्की, उपाओ मामूली बता देती है।"[29] पंडित रूपचन्द जोशी ने लाल किताब (1942) के उपरोक्त स्थल पर स्पष्ट बता दिया है कि यदि जन्मकुण्डली या सामुद्रिक द्वारा किसी ग्रह के फल प्राप्ति को लेकर संशय हो तो श्लाल किताब उस ग्रहफल से सम्बन्धित अत्यन्त सामान्य उपाय बता देती है। इन उपायों को करने की अवधि के विषय में बताया गया है कि, "हर एक उपाओ की मियाद कम अज कम 40 दिन और ज्यादा से ज्यादा 43 दिन होगी। जो अपनी निस्फ और चौथाई हिस्सा मियाद में भी अपना असर जाहिर कर देगा।"[30] लाल किताब आगे कहती है कि किसी भी उपाय को अगर शुरू किया जाए तो उसे निश्चित रूप से 40-43 दिन की अवधि पर्यंत करे। यदि उपाय को बीच में छोड़ दिया, भले ही वह 39वाँ दिन ही क्यों न हो, सब कुछ व्यर्थ हो जाएगा और उससे संबंधित उपाय को पुन: आरम्भ करना होगा तभी उपायों से संबंधित वाञ्छित फल प्राप्त हो पाएंगे। उपायों को आरम्भ करने के समय का महत्व सर्वप्रमुख हैं। इस के विषय में कहा गया है कि भाग्य बीज के समान है जबकि प्रयत्न तथा परिश्रम जल के सिंचन व वायु के समान होते हैं। यदि बीज अर्थात् भाग्य उच्च कोटि का होगा तो प्रयत्न व परिश्रम से श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होगी तथा प्रयत्न व परिश्रमरूपी उद्यम या उपाय भी पूर्णतया फलीभूत हो पाएंगे। वहीं बीज या भाग्य के निर्बल या हीनबली होने पर उपाय, परिश्रम व प्रयत्न भी अपेक्षित फल नही प्रदान कर पाएंगे। जिस प्रकार सूख चुके वृक्ष का सिंचन करना निष्फल होता है, उसी प्रकार उचित समय व्यतीत हो जाने के उपरान्त किये गए समस्त प्रयास व ज्योतिषशास्त्रीय उपाय भी निष्फल ही सिद्ध होते हैं।[31] कई बार ऐसा देखा गया है कि शास्त्रोक्त उपाय करने के बाद भी इष्टफल की लब्धि नहीं हो पाती है। तो इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि कभी-कभी पूर्वकर्मोदय अधिक दृढमूल होते हैं, तो एक ही उपाय की कई आवृत्तियाँ करनी पड़ सकती हैं- 'सूर्यारुणोभयजकर्मविपाकतन्त्रेऽप्युक्तंविभाव्य बहुजन्मरुगादिभूषु। दानादिकं न विदधाति

तथापिकार्यं चेदद्वित्रिगुण्य मिति यत्न कृदेति सिद्धिम्।।"[32] अर्थात् यदि कर्मविपाकशास्त्रादि में बताए गए प्रायश्चित, उपासना, दानादि उपायों का अनुष्ठान करने के बाद भी इष्टफल की प्राप्ति न हो रही हो तो उपरोक्त दानादि उपायों को पुनः दो या तीन बार करना चाहिए। ऐसा करने पर निश्चय ही इष्टफल की प्राप्ति की दिशा में सफलता मिलती है।

मानवीय मूल्य का स्वरुप भारतीय व पाश्चात्य दृष्टि में - मानवजाति की विकास-यात्रा में जब कभी-भी मानव मात्र को अपनी अस्मिता और स्व का बोध हुआ होगा, तथा पाशविकता से स्वयं को मुक्त रखनेवाले विभेदक बिन्दुओं को पहचान लेने के बाद उसने मानव बने रहने तथा पशुओं के आचरण से स्वयं को बचाए रखनेवाले मूल्यों की परिकल्पना की होगी तभी से स्वयं के आचरण और व्यवहार में उन विभेदक बिन्दुओं को उतारने का उद्यम भी निश्चय ही आरम्भ कर दिया होगा। मानवीय मूल्यों की स्थापना की दिशा में मानवजाति के आरम्भिक प्रयास का दिग्दर्शन वैदिक साहित्य में विधि व निषेध के रूप में प्राप्त होता है। इन्हीं 'विधि' अर्थात् आचरणात्मक तथा 'निषेध' अर्थात् 'अनाचरणीय' समस्त तत्वों को ही आज हम मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं। यदि हम मूल्यों के सन्दर्भ में यह कहें कि वैदिक ज्ञान की आधारशिला पर स्थापित मनुष्यजाति के लिए आचरणीय सूत्रों के समूह को ही मानवीय मूल्य कहते हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। [मानवजीवन को उसके उद्गम से उत्स तक ले जानेवाले आचरणीय सूत्रों के समाहार स्वरूप को मानवीय मूल्य कहा गया है।] सामान्यतया 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'Value' शब्द का पर्यायवाची है। प्रसिद्ध पाश्चात्य समाजशास्त्री Young और Mack ने मूल्य को परिभाषित करते हुए कहा है- "Value are assumptions, largely unconscious of what is right and important"[33] - स्पष्ट है कि मानवीय मूल्य वे प्रतिमान या मानदण्ड हैं जिनको आधार और आदर्श मानकर मनुष्य स्वयं के आचार-विचार व व्यवहार को संतुलित और व्यवस्थित रखता है। इन्हीं मानवीय मूल्यों को महर्षि मनु ने मनुष्य के धर्म के रूप में स्थापित किया है तथा इसी धर्म को अपने आचरण में उतारकर मनुष्य वास्तविक अर्थों में मनुष्य बन पाता है। मनुष्य के लिए आचरणीय धर्म के 10 लक्षणों को प्रस्तुत करते हुए मनु कहते हैं कि धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, स्वच्छता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दश लक्षण हैं।[34]

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वैदिक ज्योतिषशास्त्रीय पद्धति में वर्णित नवग्रहों से सम्बन्धित पदार्थों, जीव-जन्तुओं, सम्बन्धियों व परिवार के सदस्यों, सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था के विविध प्रतिनिधि जनों को आधार मानकर ही पंडित रूपचन्दजोशी ने अपनी रचना 'लाल-किताब' के समस्त संस्करणों में वर्णित उपाओं के केन्द्र में उच्च मानवीय मूल्यों तथा मानवमात्र के कल्याण की उदात्त भावना को ही केन्द्र में रखा है। यद्यपि 'लाल-किताब' शुद्ध रूप से ज्योतिषशास्त्र तथा ज्योतिर्विज्ञान की आनुषांगिक शाखा 'सामुद्रिकशास्त्र' का ग्रन्थरत्न है, तथापि ग्रन्थकार ने 'लाल-किताब' के प्रत्येक संस्करण में मानव मात्र की त्रिविध समस्याओं(दुःखों)तथा इष्ट-विषयों की प्राप्ति का शास्त्रीय मार्ग प्रस्तुत करते हुए समस्त जगत के कल्याण की उदात्त वैदिक लक्ष्य को न ही किञ्चित मात्र भी विस्तृत किया है और न ही अपने दृष्टिपथ से ओझल होने दिया है। अतएव 'लाल किताब' ज्योतिष वेदाङ्ग, की अविच्छिन्न और अविरल परम्परा में आधुनिक शाखा का प्रतिनिधि ग्रन्थ होने के साथ-साथ समस्त जगत के कल्याण की वैदिकी भावना का प्रतिष्ठाता ग्रन्थ भी सिद्ध होता है।

सन्दर्भ :

1. शुक्रनीति, 4/ विद्याकलानिरुपण प्रकरण, 27.
2. पाणिनीय शिक्षा, 41-42
3. ज्योतिषरत्नमाला, 1/4
4. बृहत् संहिता, 1/9
5. सारावली, 2/1

6. अथर्ववेद, 1/18/41-4
7. लघुजातकम, 1/3
8. ऋग्वेद, 5/8/2
9. ऋग्वेद, 1/114/10
10. ईशावास्योपनिषद्, 18
11. लाल किताब, तीसरा हिस्सा (1941)
12. सामुद्रिक की लाल किताब के फरमान (1939), फरमान नम्बर-114
13. अरुण संहिता : लाल किताब, चन्द्र खाना नं. 3
14. बौधायन धर्मसूत्र, 2/6/11/1
15. वही, 2/6/11/7
16. गौतमधर्मसूत्र, 1/5/3
17. सामुद्रिक की लाल किताब (1941), सूरज खाना नं.-२ फल ।
18. वही।
19. लाल किताब के अरमान (1940), अरमान नम्बर-159
20. वही।
21. अरुण संहिता, चन्द्र खाना नम्बर ४ फल कथन।
22. 'लाल किताब' (1952), चन्द्रमा खाना नम्बर ४. उपाओ।
23. लघुजातक, 1/3.
24. होरारत्नम्, 1/38
25. केशवार्क, होरारत्नम्, /32.
26. बृ.पा.हो., 85/4.
27. वही, 85/3.
28. वही, 85/19, 31, 32, 62, 63, 69, 70, 79, 80, 93, 106-111
29. इल्म सामुद्रिक की लाल किताब तरमीम शुदा(1942), फरमान-2
30. लाल किताब के अरमान (1940), अरमान नम्बर-114
31. जातक सारदीप, 1/35
32. वही, 1/36
33. Sociology and Social life, Pg 72
34. मनुस्मृति, 6/92-93

❖❖❖

महिला शिक्षा, सशक्तीकरण और पर्यटन

❍ हुस्न आरा[1]

संक्षिप्ति :

महिलाओं ने स्वयं को शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु लंबे समय तक संघर्ष किया है। पुरुष-प्रधान समाज उन्हें अपनी इच्छा से पढ़ने-लिखने, नौकरी करने या घर से बाहर जाने तक नहीं देता था; ऐसे में वे पर्यटन का लुत्फ कहाँ से उठाती जैसा कि पुरुष आरंभ से ही उठाता आया है। धीरे-धीरे महिलाओं ने समाज में अपने आप को स्थापित करने का प्रयास किया है जिसमें वह कुछ हद तक सफल भी हुई हैं, लेकिन अभी भी काफी रास्ता तय करना शेष है। घूमने-फिरने से व्यक्तिगत विकास, आर्थिक विकास, सांस्कृतिक विकास और सामाजिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास भी होता है। पर्यटन के माध्यम से व्यक्ति नई सोच, नए रंग, नए स्वाद और नए अनुभव एवं ज्ञान को प्राप्त करते हैं। महिलाएँ इस अनुभव से अक्सर वंचित ही रह जाती हैं। उनका दायित्व घर संभालने तक सीमित रहता है या अगर कोई महिला शिक्षित है या नौकरी कर रही है तो उसे दोहरी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। उसे घर भी देखना होता है और बाहर भी। ऐसे में वह अपने शौक को अंदर ही अंदर दबा देती है, जबकि पुरुष आरंभ से ही अपने सारे शौक पूरे करते आया है। यह शोध आलेख महिलाओं की शिक्षा, उच्च शिक्षा प्राप्त कर उनके सशक्तीकरण एवं घूमने-फिरने तथा पर्यटन के क्षेत्र में उनकी स्वतंत्रता की पड़ताल करता है ताकि महिलाएं सही मायनों में सशक्त हो सकें।

बीज शब्द : शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, पर्यटन, सशक्तीकरण।

शिक्षित महिला स्वयं को तो उन्नत करती ही है साथ ही साथ अपने परिवार, समाज और देश के विकास में भी योगदान करती है। महिलाओं के शिक्षा प्राप्त कर लेने से उनकी सोच में बदलाव आता है। उनकी समझ का दायरा बढ़ता है। उनके निर्णय लेने की क्षमता विकसित होती है। शिक्षित महिलाएं आत्मविश्वासी होती हैं और उन्हें समाज में अपनी अहमियत का भी अनुभव होता है। वे खुद के और अपने परिवार के विकास में ज्यादा रुचि रखती हैं और आगे बढ़ने के लिए उनमें स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता होती है। समय के साथ-साथ महिलाओं के लिए शिक्षा और सशक्तीकरण का मार्ग खुला है किन्तु अभी भी उनके मार्ग में कतिपय सीमाएं

1. *सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ० एल.के.भी.डी. कॉलेज, ताजपुर, समस्तीपुर, एल.एन.एम.यू. दरभंगा।*

हैं जो उनके बहिर्मुखी होने में बाधा उत्पन्न करती है। महिलाओं को पढ़ने-लिखने के लिए बाहर जाने या घूमने-फिरने की उतनी आजादी नहीं मिलती है जितनी पुरुषों को प्राचीनकाल से प्राप्त है। अधिकतर यह पाया जाता है की उन्हें घर की जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए ही शिक्षा प्राप्त करने तथा नौकरी करने की छूट दी जाती है। सैर-सपाटा एवं पर्यटन की सुविधा एवं आजादी तो प्राचीनकाल से पुरुषों को ही प्राप्त है। फाहियान, ह्वेनसांग, मार्कोपोलो, इब्नबतूता, राहुल सांस्कृत्यायन आदि ऐसे अनेक नाम इतिहास में मिल जायेंगे जिन्होंने देश-विदेश की यात्रा की और अपने अनुभव, कौशल एवं ज्ञान का विस्तार किया। महिलाओं के लिए समाज ने ऐसे मौके उपलब्ध कराने में कोताही बरती है। आज तक महिलाएं घूमने-फिरने एवं पर्यटन के क्षेत्र में काफी पिछड़ी हुई हैं। महिला कुछ हद तक आर्थिक रूप से तो सशक्त हो भी जाती है किन्तु सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर पुरुष प्रधान समाज उनके स्वतंत्र रूप से जीवनयापन में बाधा ही उत्पन्न करता है।

शिक्षित एवं सशक्त महिला कहीं भी आने-जाने घूमने-फिरने में स्वयं सक्षम होती है और अपना कार्य अच्छे तरीके से अकेले दम पर कर सकती है। जहाँ तक पर्यटन की बात है तो यह एक ऐसी गतिविधि है जो लोगों को नये स्थानों को देखने, नए लोगों से मिलने और नए अनुभवों को जीने का मौका देती है। पर्यटन व्यक्तिगत विकास, आर्थिक विकास, सांस्कृतिक विकास और सामाजिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। पर्यटन के माध्यम से लोग अपने जीवन में नए तौर-तरीके, नए रंग, नए स्वाद और नए अनुभव एवं ज्ञान को प्राप्त करते हैं। पर्यटन उन सभी गतिविधियों को शामिल करता है जो किसी भी स्थान को देखने या उससे जुड़े आकर्षण का अनुभव करने के लिए की जाती हैं। इसमें शामिल हैं विभिन्न स्थानों एवं देशों की सैर, धर्मावलम्बियों की तीर्थयात्राएं, समुद्री तटों की छुट्टियाँ, पहाड़ों, पर्वतों, रेगिस्तानों एवं सम्पूर्ण प्रकृति का आनंद लेना। शिक्षा तक पहुँच बनाने में ही तो महिलाओं को सदियाँ लगी हैं और अभी भी पुरुष के समान स्तर तक नही पहुँच पायीं हैं, घूमने-फिरने और सैर सपाटे का आनंद लेना आज भी आम नारी के बस से बाहर की बात ही प्रतीत होती है। जब तक स्त्री शिक्षित नहीं होगी सशक्त नहीं होगी वह घूमने-फिरने या पर्यटन का आनंद ठीक से नहीं ले पाएगी। "स्त्री के लिए शिक्षा प्राप्ति समाज की दृष्टि में भ्रष्टाचार समझा जाता था। लड़की के शिक्षा प्राप्त करने पर उसे अकाल वैधव्य आता है, ऐसी झूठी मान्यता भी समाज में घर कर चुकी थी।"[1] इसलिए महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा गया क्यूंकि शिक्षित महिलाएं आत्मविश्वासी होंगी और उन्हें समाज में अपनी अहमियत का भी अनुभव होगा। शिक्षा के अभाव में स्वाभिमान का ह्रास होगा और जिनमें स्वाभिमान का ह्रास होगा। वह कभी स्वतंत्र जीवन नहीं जी पायेगा। शिक्षा के अभाव में महिलाओं ने तरह-तरह की सामाजिक कुरीतियों को झेला और शोषण का शिकार रहीं। "भारत का पुरुष प्रधान समाज शुरू से ही इस तथ्य को भूल गया है कि नारी भी मानव है और पुरुष के समान उसमें भी बुद्धि है एवं उसका भी स्वतंत्र व्यक्तित्व है। उन्नीसवीं सदी में भी नारी गुलाम बनकर सामाजिक व्यवस्था की चक्की में पिसती रही। अज्ञानान्धकार, कर्मकांड, वर्णभेद, जाति-पाति, बाल-विवाह, मुंडन तथा सती प्रथा आदि व्याधियों से नारी जाति व्यथित थी। नारी को कोई महत्त्व मिलने की उम्मीद नहीं थी। स्वयं स्त्री जाति भी अपना अस्तित्व खो चुकी थी और परावलंबी जीवन जीने की आदी हो गई थी।"[2]

महिलाओं के सशक्तीकरण का मार्ग शिक्षा से होकर जाता है। महिलाएं जबतक शिक्षित नहीं होंगी सशक्त नहीं होंगी। उनके हाशिये पर होने का एक प्रमुख कारण उनका अशिक्षित होना है। वह सदियों से सारे क्षेत्रों में पिछड़ती चली आ रही है चाहे आर्थिक क्षेत्र हो, सामाजिक क्षेत्र हो, राजनीतिक क्षेत्र हो या पर्यटन हो, वे अपने बारे में निर्णय स्वयं नही लेतीं बल्कि उनके परिवार के पुरुष लेते हैं। उनके घूमने-फिरने या बाहर निकलने पर पाबंदी होती है। लंबे समय से इस व्यवस्था में रहने के बाद वे इसकी इतनी आदि हो चुकी हैं कि वे आज के इस आधुनिक युग में, बदलते दौर के साथ-साथ शिक्षा तो प्राप्त करने लगी हैं परंतु अभी भी उनकी मानसिक स्थिति पुरुष-प्रधान समाज के अधीनस्थ ही है। भारत में महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक

स्थिति में प्रगति की रफ्तार यूरोप, अमेरिका, जापान आदि देशों की तुलना में काफी धीमी है। "1892 में इलाहबाद में आयोजित कांग्रेस के आठवें अधिवेशन में श्री डब्ल्यू सी बनर्जी का व्याख्यान..... 'कम से कम मैं उनलोगों से सहमत नहीं हूँ, जो कहते हैं कि जब तक हम अपनी सामाजिक व्यवस्था को सुधार नहीं लेते, तब तक हम राजनीतिक सुधार के योग्य नहीं हैं। मुझे इन दोनों के बीच कोई संबंध नहीं दिखाई देता।...क्या हम (राजनीतिक सुधार के) योग्य इसलिए नहीं हैं, क्योंकि हमारी विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं होता और हमारी लड़कियों की शादी दूसरे देशों की तुलना में कम उम्र में कर दी जाती है, क्योंकि हमारी पत्नियां और पुत्रियां हमारे साथ गाड़ी में बैठकर हमारे मित्रों से मिलने नहीं जातीं और क्योंकि हम अपनी बेटियों को ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज में पढ़ने के लिए नहीं भेजते?'....."[3] हमारे समाज में महिलाओं को लेकर इस तरह की मानसिकता रही है। ऐसे में महिलाओं को शिक्षित और सशक्त होने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ा और आगे भी करना पड़ रहा है। महिलाएं शिक्षित हों, सशक्त हों और स्वतंत्र रूप से घूमना-फिरना कर सकें इसके लिए परिवार, समाज और सरकार को महत्वपूर्ण सहयोग करना होगा।

शिक्षा और महिला सशक्तीकरण :

महिला शिक्षा का तात्पर्य महिलाओं को गुणात्मक और पूर्ण शिक्षा प्रदान करने से है, ताकि वे अपने जीवन में बेहतर विकल्प चुन सकें, समाज में अपने अधिकारों को जान सकें और आत्मनिर्भर बन सकें। यह शिक्षा न केवल बुनियादी ज्ञान प्रदान करती है, बल्कि यह मानसिक, शारीरिक और सामाजिक दृष्टिकोण से महिलाओं को सशक्त बनाती है। एक शिक्षित महिला न केवल अपने परिवार की भलाई में योगदान करती है, बल्कि समाज और राष्ट्र के समग्र विकास में भी सहायक होती है। महिला सशक्तीकरण का अर्थ है महिलाओं को अधिकार, स्वतंत्रता, समानता और अवसर प्रदान करना ताकि वे अपने जीवन में बेहतर निर्णय ले सकें, समाज में अपनी पहचान बना सकें और अपनी भूमिका निभा सकें। सशक्तीकरण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ उन्हें मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से सशक्त करता है। यह उनके अधिकारों की रक्षा करने, आत्मसम्मान और समानता की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करता है। "शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों का दावा करने और अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास प्रदान करके उनके सशक्तीकरण को उत्प्रेरित करती है। यू.एन.ई.एस.सी.ओ. के अनुसार शिक्षा एक मौलिक मानव अधिकार है और सतत विकास एवं लैंगिक समानता का प्रमुख चालक है।"[4] इसलिए समाज में महिलाओं का शिक्षित होना भी उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों का शिक्षित होना। शिक्षा के इसी महत्त्व के कारण ही भारत ने 2009 में शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया है ताकि सभी बालक एवं बालिकाएं शिक्षा ग्रहण कर सकें।[6]

महिला शिक्षा के लाभ :

1. आर्थिक स्वतंत्रता

शिक्षा से महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकती हैं। वे नौकरी प्राप्त कर सकती हैं, व्यापार एवं उद्यम में भागीदारी कर सकती हैं और परिवार की वित्तीय स्थिति को सशक्त बना सकती हैं। इसके परिणामस्वरूप न केवल उनका जीवन स्तर बेहतर होता है, बल्कि समाज और देश की आर्थिक वृद्धि में भी योगदान होता है।

2. स्वास्थ्य में सुधार

शिक्षित महिलाएं अपने और अपने परिवार के स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक होती हैं। वे सही खानपान, स्वच्छता और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के बारे में बेहतर जानकारी रखती हैं। यह उनके और उनके परिवार

के जीवन स्तर को सुधारता है।

3. सामाजिक स्थिति में सुधार

जब महिलाएं शिक्षित होती हैं, तो वे समाज में अपनी स्थिति को मजबूती से पेश कर सकती हैं। वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती हैं और उनके खिलाफ होने वाली हिंसा या भेदभाव के खिलाफ खड़ी हो सकती हैं। समाज में उनका मान-सम्मान बढ़ता है।

4. सामाजिक न्याय

शिक्षा से महिलाएं अपने अधिकारों की रक्षा करने में सक्षम होती हैं। यह सामाजिक असमानताओं को कम करने में मदद करती है और लैंगिक समानता की दिशा में योगदान देती है। शिक्षित महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बेहतर होती है।

शिक्षा और महिला सशक्तीकरण के बीच काफी गहरा संबंध है। एक शिक्षित महिला न केवल अपने जीवन को सशक्त बना सकती है, बल्कि वह समाज में भी सकारात्मक बदलाव ला सकती है। महिला शिक्षा और सशक्तीकरण दोनों ही समाज के समग्र विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। "भारत में महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने में जटिल और बहुआयामी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। नामांकन दरों और साक्षरता स्तरों में सुधार के प्रयासों के बावजूद, लैंगिक असमानताएं बनी हुई हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों और हाशिए के समुदायों में। गहरी जड़ें जमाए हुए सांस्कृतिक मानदंड, कम उम्र में विवाह, संसाधनों तक पहुँच की कमी और सुरक्षा संबंधी चिंताएं अक्सर लड़कियों की शिक्षा में बाधा डालती हैं। इसके अतिरिक्त, डिजिटल विभाजन असमानताओं को बढ़ाता है, ग्रामीण और दूर-दराज के क्षेत्रों में महिलाओं की ऑनलाइन शिक्षण संसाधनों तक सीमित पहुँच है।"[6] हालांकि, चुनौतियाँ तो कई हैं लेकिन लगातार प्रयासों, नीति सुधारों और सामाजिक जागरूकता के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान संभव है। यह समाज की जिम्मेदारी है कि वे महिलाओं को उनके अधिकारों से अवगत कराएं और उन्हें उनकी पूरी क्षमता तक पहुँचने का अवसर प्रदान करें। महिला शिक्षा और सशक्तीकरण केवल महिलाओं के लिए नहीं, बल्कि समग्र समाज के लिए महत्वपूर्ण है।

पर्यटन का महिलाओं के जीवन पर प्रभाव :

पर्यटन एक ऐसा क्षेत्र है जो न केवल दुनिया भर के विभिन्न देशों, संस्कृतियों और लोगों को जोड़ता है, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों, खासकर महिलाओं, के जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है। महिलाएं पारंपरिक रूप से घरेलू और स्थानीय जिम्मेदारियों में सिमटी रहती थीं, उन्हें पुरुषों के समान स्वतंत्र होकर घूमने-फिरने का मौका उपलब्ध नहीं था। लेकिन आधुनिक पर्यटन ने महिलाओं के लिए नए अवसर उत्पन्न किए हैं, जिससे वे आर्थिक, सामाजिक और मानसिक रूप से सशक्त हो सकती हैं। पर्यटन उद्योग ने महिलाओं को कार्य के नए अवसर, आत्मनिर्भरता, शिक्षा और वैश्विक अनुभव प्रदान किए हैं। इसके अलावा, महिला पर्यटकों को भी नए अनुभव प्राप्त होते हैं, जो उन्हें व्यक्तिगत रूप से सशक्त बनाता है और उनके जीवन के दृष्टिकोण को बदलता है।

1. महिलाएं अपने परिवार और समाज के लिए अहम भूमिका निभाती हैं और उन्हें समय-समय पर अपने कैरियर के बारे में सोचने का अवसर मिलना चाहिए। घूमने-फिरने और पर्यटन से नये अनुभव का संचार होता है। नई जगह, नए लोग, नई संस्कृति और नई बातें इन्सान में नया आत्मविश्वास पैदा करती हैं। जब महिलाएं यात्रा करती हैं, नए स्थानों पर जाती हैं, और अलग-अलग संस्कृतियों को समझती हैं, तो यह उनके मानसिक दृष्टिकोण को बदलता है। यात्रा से वे अपनी क्षमता और हिम्मत का एहसास करती हैं, और उनका आत्मविश्वास बढ़ता है।

2. यात्रा और पर्यटन मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए भी एक महत्वपूर्ण साधन है। महिलाएं जब यात्रा करती हैं, तो उन्हें एक नया दृष्टिकोण मिलता है, जो उनके मानसिक तनाव और चिंता को कम करने में मदद करता है। खासकर उन महिलाओं के लिए जो पारिवारिक और सामाजिक दबावों के कारण मानसिक रूप से तनावग्रस्त रहती हैं, पर्यटन एक नई ऊर्जा और शांति का स्रोत बन सकता है। यह महिलाओं को उनकी जिंदगी के बोझ से कुछ समय के लिए मुक्त करता है और उन्हें मानसिक शांति प्रदान करता है।
3. पर्यटन से महिलाओं को स्वयं को समझने और महसूस करने का अवसर मिलता है, साथ ही प्रकृति का आनंद लेने का भी अवसर मिलता जो उनके बौद्धिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। जीवन बहुत अनमोल है और इसके एक-एक क्षण का उपयोग प्रत्येक मनुष्य के द्वारा किया जाना चाहिए।
4. अधिकतर महिलाएं अपने लिए समय निकालने में असमर्थ होती हैं लेकिन वे पर्यटन के माध्यम से अकेले या अपने परिवार के साथ बाहर घूमने-फिरने में समय बिता सकती हैं और अपने जीवन को खुशहाल बना सकती हैं। पर्यटन समय का सदुपयोग है जो मानव को विस्मयकारी रोमांच और ज्ञान प्रदान करता है।
5. पर्यटन के माध्यम से महिलाओं के लिए कई संभावित फायदे हो सकते हैं। पहला फायदा है कि वे अपने अनुभव से सीख सकती हैं। वे नए स्थानों को देख सकती हैं। अलग-अलग संस्कृति के लोगों से मिल सकती हैं और नई भाषाओं को सीख सकती हैं। ये अनुभव उनके व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक जीवन को नए आयाम प्रदान करते हैं।
6. पर्यटन एक ऐसा क्षेत्र है जो आज महिलाओं के लिए एक उपयोगी कैरियर ऑप्शन भी हो सकता है। यह उन्हें नए अनुभव और जगहों का पता लगाने का मौका देता है। महिलाओं के लिए यह एक सुरक्षित वृत्ति हो सकती है जहाँ वे अपनी कौशल को विकसित कर सकती हैं।
7. आज के दौर में महिलायें शिक्षित तो हो रही हैं पर बहिर्मुखी विकास में काफी पिछड़ी हुई हैं, इसकी एक वजह यह भी है कि उन्हें स्वतंत्र रूप से घूमने-फिरने का पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाता। कई बार तो उन्हें घर से दूर जाकर शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति भी नहीं मिलती। पर्यटन के द्वारा महिलाओं का बहिर्मुखी विकास आसानी से हो सकता है।
8. पर्यटन उद्योग ने महिलाओं के लिए एक नया और सशक्त रोजगार क्षेत्र खोला है। होटल, यात्रा मार्गदर्शन, ट्रेवल एजेंसी, एयरलाइन उद्योग, पर्यटन के संचालन में महिलाओं को मुख्य भूमिका निभाने का अवसर मिला है। खासकर ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के लिए पर्यटन ने उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के कई अवसर उत्पन्न किए हैं। विशेष रूप से वे महिलाएं जो ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में रहती हैं, अपने पारंपरिक शिल्प, कला और अन्य सांस्कृतिक वस्तुओं को पर्यटन के माध्यम से बेचकर आय अर्जित कर सकती हैं।
9. पर्यटन ने महिलाओं को खुद का व्यवसाय शुरू करने का अवसर भी प्रदान किया है। विशेष रूप से महिला उद्यमियों के लिए, पर्यटन में होटल व्यवसाय, गाइडिंग, टूर ऑपरेटर के रूप में काम करने, और केवल महिला होम स्टे की सुविधा उपलब्ध कराने जैसे व्यवसायों से उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी। महिलाओं के लिए यात्रा एजेंसियां चलाने, और उन्हें यात्राओं का मार्गदर्शन करने से न केवल उनकी आय बढ़ेगी, बल्कि उनके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होगी।

पर्यटन महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। जब महिलाएं पर्यटन उद्योग में सक्रिय रूप से शामिल होती हैं, तो वे अपनी भूमिका को पहचानती हैं और आत्मनिर्भर बनती हैं। महिलाएं जब यात्रा करती हैं और नए अनुभव प्राप्त करती हैं, तो वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती हैं और उन्हें अपनी स्वतंत्रता का एहसास होता है। इस प्रकार, पर्यटन एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है, जिसके द्वारा महिलाएं अपनी ताकत और क्षमता को पहचानती हैं और समाज में अपनी स्थिति को मजबूत करती हैं। पर्यटन के क्षेत्र में महिलाओं के लिए और विशेष रूप से आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाओं के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वह आसानी से अकेले घूमने जा सकें और अपने कौशल का विकास कर सकें। कई बार महिलाएं पुरुष-प्रधान समाज के दबाव के कारण और भय के कारण भी अकेले घूमने-फिरने नहीं जा पातीं। सरकार द्वारा ऐसे प्रयास होने चाहिए जिससे महिलाएं स्वतंत्र रूप से निडर होकर अकेले भी घूमने-फिरने का आनंद ले सकें। "पर्यटन के क्षेत्र में एक विशेष संयुक्त राष्ट्र एजेंसी के रूप में, संयुक्त राष्ट्र पर्यटन महिलाओं के जीवन पर पर्यटन विकास के सकारात्मक प्रभाव को बढ़ाने के लिए कटिबद्ध है, और ऐसा करके, एस०डी०जी० 5 की उपलब्धि में योगदान दे रहा है।"[7] ऐसे प्रयास प्रत्येक देश में भी होने चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और पर्यटन :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अंतर्गत, भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। इस नीति का मुख्य उद्देश्य एक नयी, समर्पित, बहुआयामी, आधुनिक, विकासशील और संरचित शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहित करना है। "सामाजिक स्तर पर उच्चतर शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र को प्रबुद्ध, सामाजिक रूप से जागरूक, जानकार और सक्षम बनाना है जो अपने नागरिकों का उत्थान कर सके, और अपनी समस्याओं के लिए सशक्त समाधान को ढूँढकर लागू कर सके। उच्चतर शिक्षा देश में ज्ञान निर्माण और नवाचार का आधार भी बनाती है और इसके चलते राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।"[8] राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 देश के नागरिकों, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, के उत्थान पर आधारित है जो राष्ट्र के विकास में सहायक होंगे। इस नीति के तहत, सरकार ने महिलाओं की शिक्षा और सशक्तीकरण के लिए कुछ महत्वपूर्ण आयामों का समावेश किया है। इसमें सबसे प्रमुख है स्त्री-पुरुष दोनों के लिए शिक्षा, सूचना एवं संचार तथा प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा। "उच्चतर शिक्षा के अनुभवजन्य क्षेत्रों में प्रवेश ऐसी अपार संभावनाओं के द्वार खोल सकता है जो व्यक्तियों और साथ ही साथ समुदायों को भी प्रतिकूल परिस्थितियों के कुचक्र से निकाल सकता है। इसी कारण सभी के लिए उच्चतर गुणवत्तायुक्त शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकताओं में होना चाहिए।"[9] राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं को भी उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने की बात करता है जिससे महिलाओं के सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त होगा। एक शिक्षित एवं सशक्त महिला अपना जीवन सुंदर ढंग से गुजारेगी। वह घूमने-फिरने और पर्यटन में भी पर्याप्त रुचि लेगी और अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास करेगी।

महिला पर्यटन का मतलब महिलाओं के लिए पर्यटन उद्योग में भाग लेने के अवसरों के अलावा, यह भी है कि महिलाएं पर्यटन स्थलों पर अपने अनुभवों से न केवल खुद को सशक्त बनाती हैं, बल्कि उनके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है। महिला यात्रियों के लिए विशेष सुरक्षा उपायों, महिला यात्री समूहों और महिला उद्यमियों द्वारा संचालित पर्यटन व्यवसायों के कारण महिलाएं पर्यटन के माध्यम से आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होंगी। "सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा के मुख्य उद्देश्यों, विशेष रूप से लैंगिक समानता के प्रति प्रतिबद्धता और सतत विकास लक्ष्य 5 के महिला सशक्तीकरण को प्राप्त करने में पर्यटन की महत्वपूर्ण भूमिका है।"[10] पर्यटन भी महिला शिक्षा और सशक्तीकरण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। महिलाओं को पर्यटन उद्योग में रोजगार और आत्मनिर्भरता के अवसर भी मिलते हैं, जो उनके जीवन को

बेहतर बनाने में मददगार होंगे। समाज और सरकार के समर्पित प्रयासों के माध्यम से इन तीनों पहलुओं में और अधिक सुधार संभव है, और इस प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान समाज के समग्र विकास में अनमोल रहेगा।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि महिला शिक्षा, सशक्तीकरण और पर्यटन, इन तीनों पहलुओं का आपस में गहरा संबंध है। महिला शिक्षा से महिलाओं को ज्ञान मिलता है, जो उनके सशक्तीकरण का आधार बनता है। जब महिलाएं सशक्त होती हैं, तो वे समाज में बदलाव ला सकती हैं। सबसे पहले शिक्षा किसी भी मानव के व्यक्तित्व निर्माण के लिए आवश्यक है। महिलाओं के लिए शिक्षा के द्वार प्राइमरी से लेकर उच्चतर शिक्षा तक पूरी तरह खोलने होंगे। आज भी महिलाओं की पहुँच उच्चतर शिक्षा के स्तर पर कम ही है। जब महिलाएं उच्च स्तर पर शिक्षित होंगी तभी वे सशक्त हो पाएंगी। एक सशक्त महिला अपने सर्वांगीण विकास का मार्ग स्वयं बना पाएगी। फिर चाहे पर्यटन हो, उद्योग हो या अंतरिक्ष हो, उनको आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता। पर्यटन व्यक्ति के जीवन के लिए न केवल मनोरंजन का एक साधन है, बल्कि यह उनके मानसिक, शारीरिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है। पर्यटन महिलाओं के लिए न केवल नए अनुभव उत्पन्न कर सकता है, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर, सशक्त और स्वतंत्र बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देने का काम कर सकता है और कुछ हद तक कर भी रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि परिवार, समाज, और सरकार को इसके लिए सकारात्मक प्रयास लगातार करने होंगे ताकि महिलाएं स्वतंत्र रूप से विकास के मार्ग पर अग्रसर हो सकें।

सन्दर्भ:

1. मोहनदास नैमिशराय, "भारत कि पहली मुस्लिम महिला अध्यापिका क्रन्तिकारी फातिमा शेख" (2022), सम्यक प्रकाशन, पृ. 25.
2. वही, पृ. 22
3. डॉ. भीमराव अम्बेडकर, अनुवाद: राजकिशोर, (2018) "जाति का विनाश", फॉरवर्ड प्रेस, पृ. 40-41.
4. Empowering Women Through Education: A Path Towards Equality, https://www.igauge.in
5. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009. यह अधिनियम 06 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बनता है।
6. "Empowering Women Through Education: A Path Towards Equality¸ https://www.igauge.in
7. Women's Empowerment and Tourism¸ https://www.unwto.org
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 9.1.3 पृ. 53.
9. वही, (14.1) पृ. 66.
10. Women's Empowerment and Tourism¸ https://www.unwto.org

❖❖❖

भारत–नेपाल संबंध : वर्तमान संदर्भ

❍ प्रेमशंकर गोंड[1]

संक्षिप्ति :

भारत–नेपाल मजबूत मित्रता और सहयोगी संबंध वाले पड़ोसी देश हैं। भारत और नेपाल एक खुली सीमा साझा करते हैं तथा दोनों देशों के बीच मधुर सांस्कृतिक और पारिवारिक संबंध हैं। 1950 की भारत–नेपाल शांति एवं मित्रता संधि, भारत–नेपाल शांति का आधार बनी। इस संधि के तहत नेपाली नागरिकों को भारतीय नागरिकों के समान ही सुविधाएं और अवसर प्रदान किए गए हैं। लगभग 80 लाख नेपाली नागरिक भारत में निवास और कार्य करते हैं। सरकार में लगातार बदलाव और भारत विरोधी या चीन समर्थक नेताओं के उभरने के बावजूद, भारत ने नेपाल के साथ समावेशी आर्थिक विकास, परस्पर निर्भरता, संचार संपर्क और लोगों के बीच संपर्क को बढ़ावा देने पर केंद्रित एक गैर–पक्षपाती दृष्टिकोण बनाए रखा है। नेपाल के साथ भारत के गहरे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों के साथ–साथ आर्थिक सुधार, द्विपक्षीय और क्षेत्रीय सहयोग, आपूर्ति श्रृंखला पुनर्गठन, ऊर्जा सहयोग और विकास सहित कई सुरक्षा चिंताओं को प्रबंधित करने की इसकी क्षमता ने इसे इन चुनौतियों से निपटने में सक्षम बनाया है।

बीज शब्द : भारत, नेपाल, चीन बेल्ट एंड रोड इनीशिएटिव परियोजना, आर्थिक विकास।

नेपाल भारतीय उपमहाद्वीप का हिस्सा होते हुए स्थलों से घिरा हुआ एक देश है। भारत की लगभग 1760 किलो मीटर सीमा नेपाल से सटा है। हिमालय की गोद में बसे एवं भारत तथा चीन के बीच स्थित नेपाल की सीमाएं उत्तर में तिब्बत से तथा पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में भारत से मिलती हैं। नेपाल दो विशाल देशों (भारत तथा चीन) से घिरा भूबद्ध (Landlock) देश है। इसकी जनसंख्या 3 करोड़ के लगभग तथा क्षेत्रफल 1,48,000 वर्ग किमी के लगभग है। नेपाल पांच भारतीय राज्यों– सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड के साथ 1,850 किलोमीटर से अधिक लंबी सीमा साझा करता है।

- नेपाल भारत का एक महत्वपूर्ण पड़ोसी है और भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों के वजह से वह हमारी विदेश नीति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।
- दोनों देश हिंदू धर्म एवं बौद्ध धर्म के संदर्भ में समान महत्व रखते है; उल्लेखनीय है कि महात्मा बुद्ध

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, सच्चिदानंद सिन्हा कॉलेज, औरंगाबाद, बिहार

की जन्मस्थली लुंबिनी नेपाल में और उनका निर्वाण स्थान कुशीनगर भारत में स्थित है।

- 1950 की भारत नेपाल शांति और मित्रता संधि दोनों देशों के बीच मौजूद विशेष संबंधों को आधार प्रदान करती है।

सन् 1951 में राजा और नेपाली कांग्रेस के मध्य समझौता हुआ तथा प्रथम बार संसद हेतु चुनाव हुए तथा नेपाली कांग्रेस के वी.पी. कोइराला के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया। नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना के लिए संघर्षरत नेपाली कांग्रेस के नेताओं की शिक्षा-दीक्षा प्राय: भारत में हुई। इन नेताओं ने ही अपने देश में निरंकुश राजशाही/तानाशाही सरकार का अन्त कराया और नेपाली में लोकतंत्र की स्थापना की। भारत में 30 जुलाई 1950 को भारत-नेपाल के बीच 'भारत-नेपाल शान्ति व सहयोग' की सन्धि हुई। सन् 1947 से पूर्व ब्रिटेन अथवा भारत ने नेपाल के आन्तरिक मामलों में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। भारत के प्रयास से ही नेपाल दिसंबर 1955 में संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना। सन् 1956 में भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने नेपाल की यात्रा की।

नेपाल ने सन् 1960 में साम्यवादी चीन से 'मित्रता एवं सहयोग' की सन्धि कर ली। परिणामस्वरूप सन्धि उपरांत 1961 से दोनों देशों के सम्बन्धों में कुछ दरार देखने को मिलती है। भारत-चीन युद्ध (1962) के समय भी भारत-नेपाल सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे। लाल बहादुर शास्त्री ने भारत-नेपाल सम्बन्धों में सुधार लाने का प्रयास किया तथा नेपाल नरेश ने भी 1965 में भारत की यात्रा कर दोनों देश के बीच भ्रान्तियाँ दूर करने का प्रयास किया। श्रीमती इंदिरा गाँधी के युग में दोनो देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को और मजबूत प्रदान करने का प्रयास किया गया। जिससे नेपाल की सरकार यह अनुभव करने लगी कि भारत की कोई साम्राज्यवादी आकांक्षाएं नहीं हैं और उसे भारत की प्रभुसत्ता का आदर करना चाहिए। 13 अगस्त, 1971 को दोनों देशों के मध्य एक पंचवर्षीय समझौता हुआ जिसके अनुसार भारत ने नेपाल को कच्चे माल के व्यापार की खुली छूट प्रदान की एवं व्यापार के लिये उसे मार्ग सुविधायें भी प्रदान की।

बांग्लादेश के अस्तित्व में आने पर नेपाल ने उसे तत्काल मान्यता प्रदान की परन्तु सिक्किम विलय (1975) के समय नेपाल नरेश वीरेन्द्र ने भारत के इस कार्य को विस्तारवादी नीति की संज्ञा दी। उस समय भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने यह स्पष्ट करते हुए कहा था कि नेपाल को यह सोचकर नहीं चलना चाहिए कि भारत नेपाल मैत्री सदैव बरकरार रहेगी एवं यह मैत्री एक तरफा नहीं चल सकती है। सन् 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने पर दोनों देशों के मध्य आपसी सम्बन्धों को और अधिक मैत्रीपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया, लेकिन कोईराला की गिरफ्तारी एवं उन्हें मृत्युदण्ड दिए जाने के फैसले ने दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में दरार पैदा करने का कार्य किया। सन् 1980 में इंदिरा गाँधी की सरकार के पुन: सत्तारूढ़ होने पर भारत-नेपाल सम्बन्धों में सुधार एवं सहयोग देखा गया। सन् 1987 में दोनों देशों के बीच 'व्यापार एवं पारगमन' की सन्धि की गई, जिसको राजीव गाँधी सरकार ने नवीनीकरण सरकार ने नहीं किया। नेपाल में लम्बे आंदोलन के बाद सन् 1990 में सम्राट वीरेन्द्र ने लोकतंत्र बहाल कर दिया। सन् 1991 के चुनाव में नेपाली काँग्रेस को बहुमत मिला। इसके बाद कई सरकारें बनी तथा बर्खास्त हुई।

भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने मई 2014 से अभी तक 05 बार नेपाल का दौरा किया है और नेपाल के प्रधानमंत्रियों ने मई 2014 से 10 बार भारत का दौरा किया है। पीएम मोदी की नेपाल की आखिरी यात्रा 16 मई 2022 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन पवित्र स्थल लुंबिनी की यात्रा की थी। भारत में नेपाल के प्रधान मंत्री श्री पुष्प कमल दहल 'प्रचंड' 31 मई से 3 जून 2023 तक अकेले आधिकारिक दौरे के लिए भारत आये थे। भारतीय प्रधानमंत्री के रूप में तीसरी बार चुने जाने पर नेपाल के प्रधानमंत्री प्रचंड और प्रधानमंत्री मोदी को फोन कर 5 जून 2024 को बधाई दिए। पीएम मोदी के निमंत्रण पर, पीएम प्रचंड भी 9-10 जून, 2024 को

नई दिल्ली में शपथ ग्रहण समारोह में शामिल हुए।

आर्थिक दशा को सुधारने के लिए नेपाल द्वारा संचालित पंचवर्षीय योजनाओं में भारत ने भरपूर सहायता प्रदान की है तथा उसकी आर्थिक दशा सुधारने हेतु भी उदारता के साथ ऋण दिया है। भारत अगर नेपाल को अपनी जल संसाधनों का उपयोग करने हेतु सहयोग/ सहायता प्रदान करता है, तो इससे नेपाल की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा एवं भारत की अतिरिक्त ऊर्जा एवं अर्थव्यवस्था को भी बल मिलेगा। इसी को ध्यान में रखते हुए भारत ने नेपाल को सहायता प्रदान करते हुए उसकी बड़ी-बड़ी नदियों पर बांध बनाकर सिंचाई एवं बिजली पैदा करने वाली अनेक परियोजनाओं को पूरा करके उसे तथा स्वयं को लाभान्वित किया है। भारत ने अपने कोलकाता बंदरगाह को उपयोग में लाने हेतु नेपाल को भी अनुमति प्रदान की है। नेपाल की कोसी तथा त्रिशूली परियोजनाओं में भी भारत ने उदारता से धनराशि खर्च की है।

भारत नेपाल शांति और मित्रता संधि

- यह एक द्विपक्षी संधि है, जिसका उद्देश्य दोनों दक्षिण एशियाई पड़ोसी देशों के बीच घनिष्ठ रणनीतिक संबंध स्थापित करना है।
- यह संधि दोनों देशों के बीच लोगों और वस्तुओं की मुक्त आवाजाही और रक्षा एवं विदेशी मामलों के मध्य घनिष्ठ संबंध तथा सहयोग की अनुमति देता है साथ ही यह संधि नेपाल को भारत से रक्षा उपकरण खरीदने की सुविधा भी देता है।
- यह संधि नेपाल को एक भू-आबद्ध देश (Land-lock country) होने के कारण कई विशेषाधिकार को प्राप्त करने में सक्षम बनाया है।
- भारत नेपाल की खुली सीमा दोनों देशों के संबंधों की विशिष्टता है जिससे दोनों देशों के लोगों को आवागमन में सुगमता रहती है दोनों देशों के बीच 1750 किलोमीटर से अधिक लंबी साझा सीमा है जिससे भारत के 5 राज्य (बिहार, पश्चिम बंगाल, सिक्किम उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) जुड़े हुए हैं।

भारत-नेपाल सहयोग के विभिन्न क्षेत्र :

1. सांस्कृतिक व धार्मिक क्षेत्र

नेपाल और भारत विश्व के दो प्रमुख धर्म बौद्ध और हिंदू धर्म के जन्म से लेकर विकास तक एक सांस्कृतिक इतिहास साझा करते हैं। महात्मा बुद्ध का जन्म वर्तमान नेपाल में स्थित लुंबिनी में हुआ था। बुद्ध ज्ञान की खोज में वर्तमान भारतीय क्षेत्र बोध-गया आए, जहां उन्हें आत्म ज्ञान की प्राप्ती हुई। बोध-गया से बुद्ध और उनके अनुयायियों ने बिभिन्न देशों में बौद्ध धर्म का प्रसार किया। भारत व नेपाल दोनों ही देशों में हिंदू और बौद्ध धर्म को मानने वाले लोग हैं। रामायण सर्किट योजना दोनों देशों के मजबूत सांस्कृतिक एवं धार्मिक संबंधों का प्रतीक है।

2022 में, भारतीय प्रधानमंत्री ने बुद्ध के जन्मस्थान नेपाल के लुंबिनी का दौरा किया, जहां उन्होंने भारतीय सहायता से बनाए जा रहे बौद्ध विहार के लिए नेपाली प्रधानमंत्री के साथ आधारशिला रखी। प्रधानमंत्री ने 2566वीं बुद्ध जयंती समारोह मनाने के साथ नेपाल और भारत के बौद्ध विद्वानों और भिक्षुओं सहित लोगों की एक सभा को संबोधित करते हुए प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को संरक्षित करने के लिए नेपाल की सराहना की, और भारत-नेपाल संबंधों को हिमालय जितना ही मजबूत और प्राचीन बताया।

2. आर्थिक क्षेत्र

भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। नेपाल का लगभग 65 प्रतिशत से अधिक व्यापार भारत के साथ होता है। कस्टम विभाग के आंकड़े के मुताबिक, 2019-20 में भारत से नेपाल में साल-दर-साल

आयात बढ़कर 735.29 अरब रुपया हो गया। 2020-21 में यह बढ़कर 971.60 अरब रुपया हो गया। नेपाल का भारत से आयात तेजी से बढ़ा और 2021-22 में यह 1.20 खरब रुपये तक पहुंच गया, जो अब तक का रिकॉर्ड है। हालांकि, जुलाई 2023 के मध्य में खत्म हुए वित्तीय वर्ष में आयात घटकर 1.02 खरब रुपये रह गया। 2022-23 में भारत ने नेपाल को 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर का सामान निर्यात किया, जबकि उसका आयात 840 मिलियन अमेरिकी डॉलर रहा।

भारत नेपाल का सबसे बड़ा निर्यातक देश है, जो इसके कुल निर्यात का 67.9 प्रतिशत भारत प्राप्त करता है। नेपाल के निर्यात में मुख्य रूप से खाद्य तेल, कॉफी, चाय और जूट शामिल हैं। भारत से नेपाल का मुख्य आयात पेट्रोलियम उत्पाद, लोहा और इस्पात, अनाज, वाहन और पार्ट्स, मशीनरी पार्ट्स हैं। नेपाल में विनिर्माण, सेवाओं (बैंकिंग, बीमा, ड्राई पोर्ट, शिक्षा और दूरसंचार), बिजली क्षेत्र और पर्यटन उद्योगों में लगभग 150 भारतीय उद्यम कार्यरत हैं। भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार होने के साथ-साथ विदेशी निवेश का सबसे बड़ा स्रोत है। भारतीय कंपनियाँ नेपाल में सबसे बड़े निवेशकों में से हैं, जिनका नेपाल में कुल एफडीआई स्टॉक में 33.5 प्रतिशत हिस्सा है, जिसका मूल्य लगभग 670 मिलियन अमेरिकी डॉलर है। भारत नेपाल को अन्य देशों के साथ व्यापार करने के लिए पारगमन सुविधा भी प्रदान करता है। नेपाल समुद्र से व्यापार के लिए भारत के कोलकाता बंदरगाह का उपयोग करता है। भारतीय कंपनियाँ नेपाल में विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में संलग्न है। इन कंपनियों की नेपाल में विनिर्माण बिजली पर्यटन और सेवा क्षेत्र में उपस्थिति है।

3. आधारभूत-संरचना विकास क्षेत्र

नेपाल एक भू-आबद्ध (Land bound) देश है। जो तीन तरफ भारत से और एक तरफ तिब्बत से घिरा हुआ है। भारत-नेपाल ने अपने नागरिकों के बीच संपर्क बढ़ाने और आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कनेक्टिविटी कार्यक्रम शुरू किए हैं। हाल ही में भारत के रक्सौल को काठमांडू से जोड़ने के लिए इलेक्ट्रिक रेल ट्रैक बिछाने हेतु दोनों सरकारों के बीच समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे। पिछले 15 वर्षों में भारत ने नेपाल के विकासात्मक साझेदार के रूप में एक बड़ी छलांग लगाई है, और नेपाल की परिवहन और वाणिज्य के समुद्री मार्गों तक पहुंच को सुविधाजनक बनाने के लिए कई कनेक्टिविटी परियोजनाएं शुरू की है। जिनमें प्रमुख रूप से जयनगर बिजलपुरा-बरदीबास रेल लिंक (नेपाल की पहली ब्रॉड गेज लाइन) रक्सौल-काठमांडू रेल लिंक, हुलकी/तराई रोड, बीरगंज में एकीकृत चेक पोस्ट, (नेपाल की पहली एकीकृत चेक पोस्ट), विराटनगर, नेपालगंज और भैरहवा जैसे चेक पोस्ट शामिल है।

नेपाल के पूर्व प्रधान मंत्री शेर बहादुर देउबा ने अपनी 1-3 अप्रैल 2022 तक भारत यात्रा के दौरान नेपाल के जयनगर और भारत के कुर्था के बीच पहली सीमा पार ब्रॉड गेज यात्री ट्रेन सेवा को हरी झंडी दिखा कर शुरुआत की गई थी। 31 मई से 3 जून 2023 तक प्रधानमंत्री पुष्प कमल दहल 'प्रचंड' की यात्रा के दौरान भारत और नेपाल के बीच पहली मालगाड़ी ट्रेन सेवा को हरी झंडी दिखाई गई। साथ ही 90 किमी लंबी 132 किलोवाट की डबल सर्किट ट्रांसमिशन लाइन का भी उद्घाटन किया गया। ये ट्रांसमिशन लाइन टिला (सोलूखुंबू) से भारतीय सीमा के नजदीक मिरचौया (सिराहा) को जोड़ती है। इसे एग्जिम बैंक द्वारा 200 करोड़ रु. के रियायती कर्ज की मदद से तैयार किया गया है। इसके तहत सोलू कॉरिडोर में दर्जनभर पनबिजली परियोजनाएं तैयार करने की योजना है। इस सिलसिले में नेपाल बिजली प्राधिकरण 325 मेगावाट के बिजली खघ्रीद समझौते (PPAs) पूरे कर चुका है।

भारत व्यापार और पारगमन व्यवस्था के ढांचे के भीतर वस्तुओं की आवाजाही के लिए अंतर्देशीय जलमार्ग विकसित करना चाहता है, जिससे नेपाल को माउंट एवरेस्ट को हिंद महासागर से जोड़ने के लिए समुद्र तक अतिरिक्त पहुंच प्रदान की जा सके।

नेपाल में बुनियादी ढांचे (स्वास्थ्य जल संसाधन शिक्षा ग्रामीण और समुदाय विकास) के निर्माण पर भारत सरकार समय-समय पर विकास सहायता प्रदान करती है।

4. आपदा प्रबंधन

भौगोलिक कारकों एवं प्राकृतिक रूप से संवेदनशील क्षेत्र होने के कारण नेपाल में अक्सर भूकंप, भूस्खलन, हिमस्खलन बादल फटने और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं का खतरा बना रहता है। नेपाल में आपदा से संबंधित ऐसे किसी भी मामले में भारत कार्मिक सहायता के साथ ही तकनीकी और मानवीय सहायता भी प्रदान करता है।

25 अप्रैल 2015 को जब नेपाल में 7.8 तीव्रता का विनाशकारी भूकंप आया (इसके बाद 12 मई 2015 को 7.4 तीव्रता का शक्तिशाली झटका आया) तो इस आपातकालीन संकट की स्थिति में भारत ही पहला संज्ञान लेने (first responder) वाला देश था। भारत सरकार ने तुरंत एनडीआरएफ की टीमों और विशेष विमानों को बचाव और राहत सामग्री के साथ नेपाल भेजा था। भूकंप के छह घंटे के भीतर नेपाल पहुंचने वाली भारत की सहायता में बचाव उपकरण, चिकित्सा आपूर्ति, भोजन, पानी, तंबू, कंबल और तिरपाल सहित 571 टन राहत सामग्री के साथ 16 एनडीआरएफ टीमें, 39 आईएएफ विमान उड़ानें शामिल थीं।

इसी तरह, कोविड-19 महामारी के दौरान, भारत सरकार ने यह सुनिश्चित किया कि भारत और नेपाल के बीच व्यापार की आपूर्ति लाइनें खुली रहें। नेपाल 21 जनवरी 2021 को 'मेड इन इंडिया-कोविड-19' वैक्सीन प्राप्त करने वाले पहले देशों में से एक था, जिससे नेपाल के राष्ट्रव्यापी टीकाकरण अभियान का मार्ग प्रशस्त हुआ। भारत ने महामारी के शुरुआती चरण में दवाओं की महत्वपूर्ण आपूर्ति (23 टन) भी की थी। दूसरी लहर के चरम के दौरान दुनिया भर में ऑक्सीजन की गंभीर कमी का सामना करने के बीच, भारत सरकार ने धरान में बीपी कोइराला इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ साइंसेज में संचालन के लिए 960 एलपीएम ऑक्सीजन प्लांट भेजा, जो कई लोगों की जान बचाने में सहायक रहा। नेपाली सेना को COVID 19 टीकों की 1 लाख खुराकें और वेंटिलेटर, एम्बुलेंस, आईसीयू बेड, पीपीई किट, पीसीआर परीक्षण किट सहित चिकित्सा उपकरण भी सौंपे गए।

3 नवंबर 2023 की रात को आए भूकंप के बाद, जिसका केंद्र नेपाल के पश्चिमी भाग में करनाली प्रांत के जाजरकोट और पश्चिमी रुकुम में था, भारत ने पहले अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रियाकर्ता के रूप में 48 घंटे से भी कम समय में आपातकालीन राहत सामग्री प्रदान की। भारत सरकार ने अब तक नेपाल को राहत आपूर्ति की 5 किश्तें प्रदान की हैं, जिसमें 200 पूर्व निर्मित घर, तंबू, तिरपाल चादरें, सोने के कंबल, जरूरी दवाएं और साथ ही अन्य चिकित्सा सहायता उपकरण शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, जनवरी 2024 में विदेश मंत्री की यात्रा के दौरान, जजरकोट भूकंप के बाद पुनर्निर्माण का समर्थन करने के लिए लगभग एनपीआर 1000 करोड़ के वित्तीय सहायता पैकेज की घोषणा की गई थी, जिसमें अनुदान के तहत बड़ा हिस्सा शामिल था।

भारत-नेपाल विवाद

भारत का नेपाल के साथ विवाद मुख्यत: व्यापार और पारगमन संधि को लेकर प्रारम्भ हुआ। इस संबंध में दोनों देशों के मध्य अक्टूबर, 1988 में व्यापार संधि पर प्रारम्भिक हस्ताक्षर हो गये थे। भारत को यह विश्वास था कि भारतीय सामानों पर नेपाल सरकार द्वारा लगा भारी सीमा शुल्क स्वत: समाप्त हो जायेगा। परन्तु ऐसा नहीं हो सका। दूसरी ओर नेपाल ने सड़क से आने वाले चीनी वस्तुओं पर साठ प्रतिशत की छूट दे दी। नेपाल द्वारा लिए गए इस निर्णय को भारत अपने खिलाफ वादा खिलाफी मानता है क्योंकि नेपाल ने भारतीय वस्तुओं को प्राथमिकता देने का वादा किया था। इसके अलावा भारत, व्यापार एवं पारगमन संधि दोनों के लिए चाहता है, जबकि नेपाल यह संधि अलग-अलग चाहता है। नेपाल ने अप्रैल, 1987 में आंशिक रूप से एवं सितम्बर, 1988 से पूरे देश में भारतीयों के लिए (लगभग 50,000) रोजगार परमिट अनिवार्य कर दिया, जबकि भारत 1950 की संधि का अनुपालन करते हुए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नेपाली नागरिकों (लगभग 35 लाख) पर नहीं लगाया। वर्ष 1950 की संधि के ही कारण अन्य विदेशी नागरिकों की भाँति नेपाली नागरिकों का पंजीकरण नहीं किया जाता है।

भारत सरकार के लिए स्थिति उस समय असहज हो गई जब कैलाश मानसरोवर यात्रा के लिए भारत द्वारा लिपुलेख-धाराचुला मार्ग के उद्घाटन उपरांत नेपाल की सरकार ने इसे एक तरफा गतिविधि बताते हुए आपत्ति जताई। नेपाल के विदेश मंत्रालय ने यह कहा कि महाकाली नदी के पूर्व का क्षेत्र नेपाल की सीमा में आता है। 2019 में नेपाल ने आधिकारिक रूप से अपना नवीन मानचित्र जारी कर उत्तराखंड के कालापानी, लिपियांधुरा और लिपुलेख को नेपाली संप्रभु क्षेत्र का हिस्सा बताया। नेपाल कि इस प्रकार की प्रतिक्रिया ने भारत को अचंभित किया। इतना ही नहीं नेपाली प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली ने नेपाल में कोरोना वायरस के प्रसार में भारत को दोष देकर दोनों देशों के बीच संबंधों को तनावपूर्ण कर दिया था।

वर्तमान विवाद के बिंदु -

2015 में नेपाल ने भारत पर अघोषित नाकाबंदी करने का आरोप लगाया। इस दौरान नेपाल में कुकिंग गैस, पेट्रोल और दवाओं समेत रोजमर्रा की चीजों की भारी किल्लत हो गयी। इस कथित नाकेबंदी से दोनों देशों के बीच कड़वाहट बढ़ी।

भारत व नेपाल के बीच वर्तमान विवाद का कारण उत्तराखंड के धारचूला को लिपुलेख दर्रा से जोड़ती सड़क है। रणनीतिक रूप से, कालापानी में लिपुलेख दर्रा भारत के लिए चीनी गतिविधियों पर नजर रखने के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान है। 1962 से, कालापानी पर भारत-तिब्बत सीमा पुलिस की तैनाती है। नेपाल सरकार के दावे अनुसार कालापानी (Kalapani) के पास का यह क्षेत्र उसका है और भारत ने नेपाल से बातचीत किए बिना इस क्षेत्र में सड़क निर्माण किया है। नेपाल ने साल 2020 में आधिकारिक नवीन मानचित्र जारी कर उत्तराखंड के लिपियांधुरा (Limpiyadhura), लिपुलेख (Lipulekh) और कालापानी (Kalapani) को अपने संप्रभु क्षेत्र का हिस्सा माना। इस संबंध में नेपाल ने वर्ष 1816 में हुई सुगौली संधि का जिक्र किया है।

नेपाली विदेश मंत्रालय के अनुसार सुगौली संधि (1816 ई.) के अनुसार काली (महाकाली) नदी के पूर्वी क्षेत्र जिनमें लिंपियाधूरा, कालापानी और लिपुलेख शामिल है, नेपाल का अभिन्न अंग है। एंग्लो नेपाली युद्ध के पश्चात वर्ष 1816 में नेपाल और ब्रिटिश भारत के साथ सुगौली की संधि की गई थी।

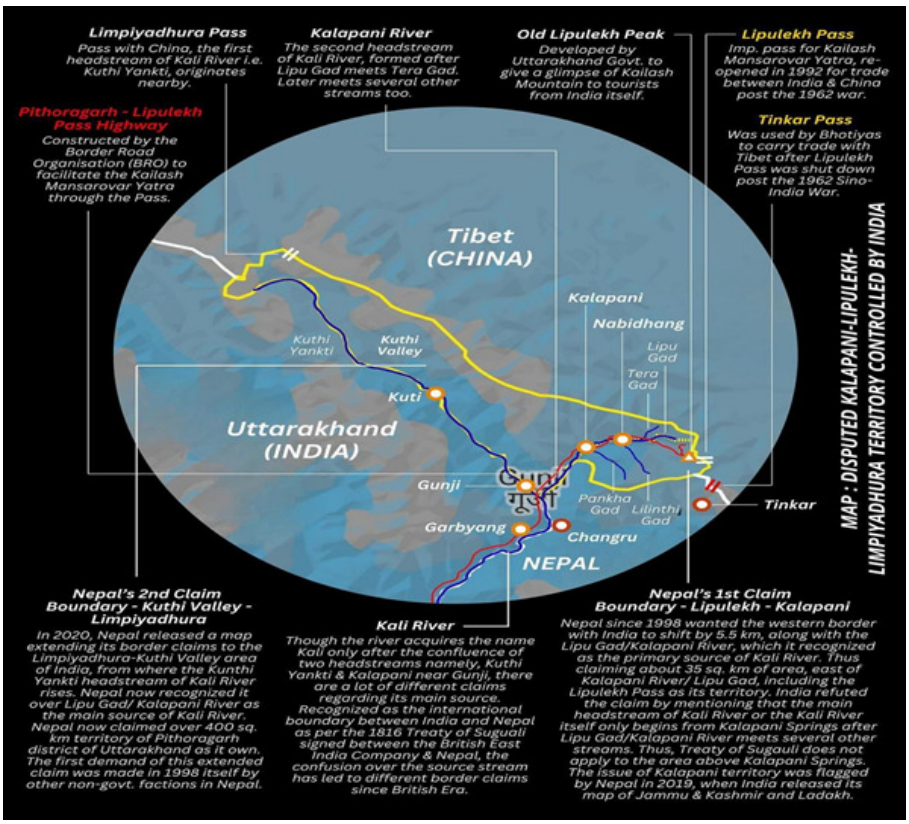

चीन का नेपाल पर प्रभाव

गौरतलब है कि चीन दक्षिण एशियाई देशों में लगातार अपना प्रभाव बढ़ा रहा है। नेपाल, श्रीलंका पाकिस्तान और बांग्लादेश हर तरफ चीन की मौजूदगी बढ़ी है। यह सभी देश चीनी बेल्ट एंड रोड इनीशिएटिव परियोजना में शामिल हो गए हैं। चीन अपनी बेल्ट एंड रोड पहल (बीआरआई) के तहत नेपाल के साथ अपनी आर्थिक भागीदारी बढ़ा रहा है। लेकिन भारत इस परियोजना के पक्ष में नहीं है। नेपाल में चीन के बढ़ते प्रभाव के कारण कुछ समय से भारत–नेपाल संबंधों में पहले जैसी गर्मजोशी देखने को नहीं मिलती। चीन भी इसका पूरा लाभ उठाते हुए नेपाल में अपनी स्थिति और मजबूत कर लिया है। नेपाल के कई स्कूलों में मंदारिन (चीनी भाषा) को पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया है। नेपाल में मंदारिन पढ़ाने वाले शिक्षकों के वेतन पर होने वाले खर्च भी चीन की सरकार उठाने के लिए तैयार है।

इसे हम चीन का जादू कहें या नेपाल की कूटनीतिक चाल, जो पिछले कुछ वर्षों से नेपाल भारत को परेशान करने की कोशिश कर रहा है। भारत इन सभी कोशिशों को नेपाल में चीन के बढ़ते प्रभाव को कारण के रूप में देख रहा है। ऐसे में बड़ा सवाल यह है कि क्या भारत और नेपाल के बीच ऐतिहासिक संबंधो पर चीन की कूटनीति भारी पड़ेगी ? या यह कहा जाए कि हाल के दिनों में नेपाल ज्यादा महत्वाकांक्षी बन गया है और भारत

उसकी आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतर पा रहा है।

निष्कर्ष :

विदेश नीति में नेपाल की अहमियत को देखते हुए ही भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सत्ता में आने के उपरांत पहले पड़ोस देशों की नीति को ध्यान में रखते हुये ही नेपाल को उनके शुरुआती विदेशी दौरों में रखा था। जबकि वर्ष 2014 से पूर्व आखिरी बार वर्ष 1997 में भारत नेपाल के बीच कोई द्विपक्षी वार्ता (Bilateral talks) हुई थी। भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने मई 2014 से अभी तक 05 बार नेपाल का दौरा किया है और नेपाल के प्रधानमंत्रियों ने मई 2014 से 10 बार भारत का दौरा किया है। मौजूदा NDA की सरकार और नेपाल सरकार के मध्य कई महत्वपूर्ण समझौते हुए हैं। 1 जून, 2023 को संशोधित पारगमन संधि पर हस्ताक्षर किये गए, जो नेपाल को भारत के अंतर्देशीय जलमार्गों तक पहुँच प्रदान करेगी। इससे नेपाल तीसरे देशों के साथ अपने व्यापार के लिए हल्दिया, कोलकाता, पारादीप और विशाखापत्तनम जैसे भारतीय बंदरगाहों का उपयोग करने में सक्षम होगा। यह नेपाली निर्यातकों और आयातकों के लिये परिवहन लागत एवं समय को भी कम करेगा। भारत कृषि क्षेत्र में सहयोग के महत्त्व पर जोर देते हुए एक उर्वरक संयंत्र स्थापित करने के लिये नेपाल के साथ भी सहयोग कर रहा है।

भारत-नेपाल के बीच रोटी बेटी का रिश्ता माना जाता है। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के साथ नेपाल के मधेशी समुदाय का सांस्कृतिक एवं नृजातीय संबंध रहा है। दोनों देशों की सीमाओं से यातायात पर कभी भी कोई विशेष प्रतिबंध नहीं रहा। दोनों देशों के मध्य सामाजिक और आर्थिक विनिमय बिना किसी गतिरोध के चलता रहता है। भारत-नेपाल के नागरिक खुली सीमा से बिना किसी पासपोर्ट या वीजा एक दूसरे देश में आ जा सकते हैं। यह उदाहरण कई मायनों में भारत-नेपाल की नजदीकी को दर्शाता है।

भारत-नेपाल के बीच सांस्कृतिक संबंधों का लंबा इतिहास रहा है। नेपाल भारत के आर्थिक और सामरिक हितों के लिए महत्वपूर्ण है। मित्रवत और सहयोगी नेपाल भारत और आक्रामक चीन के बीच एक बफर के रूप में काम करेगा। भारत सरकार को नेपाल के नए नेतृत्व के साथ रचनात्मक रूप से जुड़ना चाहिए और विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने की दिशा में काम करना चाहिए। इससे भारत के दीर्घकालिक हितों को लाभ होगा।

संदर्भ :

- यादव, भूपेन्द्र सिंह (2022), 'भारत-नेपाल संबंध : समासामयिक अध्ययन', इविंसपब पब्लिशिंग, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।
- सिंह, डॉ. आभा (2018), 'भारत नेपाल संबंध : एक राजनीतिक अध्ययन', अंकित प्रकाशन, नई दिल्ली।
- वघेल, वीरेन्द्र सिंह (2017), 'भारत नेपाल संबंधों में चीन की भूमिका, पुस्तक निर्माण प्रकाशक।
- पांडे, डॉ. पीयूष कुमार (2021), 'भारत नेपाल संबंध अतीत से वर्तमान तक', वीएल मीडिया सॉल्यूशंस, दिल्ली।
- झा, मुकेश कुमार (2021), 'भारत नेपाल संबंध के आयाम', कल्पज प्रकाशन, दिल्ली।
- मिश्र, अरुण कुमार, (2022), 'भारत नेपाल संबंध के विविध आयाम' मिश्र उदय पब्लिशिंग हाउस।
- Jha, Kalpana (2017), "The Madhesi Upsurge and the Contested Idea of Nepal" Springer Verlag, Singapore.
- https://www.thehindu.com/hindi/editorial/economic-emphasis-the-hindu-hindi-editorial-on-india-nepal-ties/article66949257.ece
- https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=10818

❖❖❖

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन और पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव : एक अध्ययन

- अनुराग गौतम[1]
- डॉ. सत्य प्रकाश राय[2]

संक्षिप्ति :

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास संघर्ष, बलिदान और विचारधाराओं की एक अद्‌भुत समायोजन है। 1929 का कांग्रेस अधिवेशन भारतीय राजनीति का ऐसा मोड़ था, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को एक ठोस और स्पष्ट लक्ष्य प्रदान किया। लाहौर में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज'(पूर्ण स्वतंत्रता) को अपना अंतिम उद्देश्य घोषित किया। इस निर्णय ने न केवल भारतीय राजनीति को नई पहचान दी अपितु भारतीय जनता के आत्मविश्वास और जागरूकता को नई ऊँचाई भी दी।

तत्कालीन भारतीय राजनीति के उभरते हुए युवा एवं ऊर्जावान नेता जवाहरलाल नेहरू, जो लाहौर अधिवेशन की केन्द्रीय भूमिका में थे, के नेतृत्व में पारित पूर्ण स्वराज भारत के भावी स्वतंत्रता संग्राम का आधार स्तंभ बना। यह प्रस्ताव केवल ब्रिटिश शासन के अंत का आह्वान नहीं अपितु भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में देखने की आकांक्षा थी जो आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से आत्मनिर्भर और समृद्ध हो।

प्रस्तुत आलेख में लाहौर अधिवेशन के प्रस्ताव को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए वैचारिक और नैतिक दिशा एंव दृष्टि प्रदान की।

बीज शब्द : पूर्ण स्वराज, लाहौर अधिवेशन, नेहरू रिपोर्ट, हंटर आयोग, साइमन कमीशन।

19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में भारत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अधीन था। यह शासन न केवल आर्थिक शोषण का पर्याय था अपितु भारतीयों के राजनीतिक और संस्कृतिक अधिकारों को भी सीमित करता था। 1928 में नेहरू रिपोर्ट का प्रकाशन इस बात का संकेत था कि भारतीय नेतृत्व अब स्वशासन (डोमिनीयन स्टेट्स) से आगे बढ़कर पूर्ण स्वतंत्रता की माँग की ओर अग्रसर हो चुका है।[1] हालाँकि, महात्मा गाँधी जैसे नेताओं ने अभी भी अहिंसात्मक और संवाद-आधारित दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी थी। इसके विपरित नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे युवा नेताओं ने एक अधिक आक्रमक और निर्णायक रुख अपनाने की

1. *शोधार्थी, इतिहास विभाग, बी.आर.अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)*
2. *सहायक आचार्य, इतिहास विभाग,बी.आर. अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)*

वकालत की।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन ऐसे समय में हुआ था जब भारतीय समाज और राजनीति में व्यापक परिवर्तन हो रहे थे। 13 अप्रैल 1919 के जालियांवाला बाग हत्याकांड के उपरांत जांच के लिए गठित विलियम हंटर की अध्यक्षता में अंग्रेजी एवं भारतीय सदस्यों वाली अंग्रेजी कमीशन (डिस्ऑर्डर इन्कवारी कमिटी) ने अपने रिपोर्ट में यह स्पष्ट कर दिया कि उनके अंदर भारतीयों के लिए कोई संवेदना नहीं है। 1920-22 के असहयोग आंदोलन ने भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों का गहरा एहसास कराया था। सविनय अवज्ञा आंदोलन की तैयारी और भारतीयों के अधिकारों के लिए संघर्ष ने देशभर में एक नयी चेतना का संचार किया। 1928 में साइमन कमीशन की भारत में नियुक्ति ने स्वतंत्रता की मांग को और अधिक प्रबल कर दिया। इस आयोग में एक भी भारतीय सदस्य शामिल नहीं थे, जिससे यह स्पष्ट हो चुका था कि ब्रिटिश ताज को भारतीयों की राजनीतिक इच्छाओं और आकांक्षाओं की चिंता नहीं थी। शेखर बंदोपाध्याय के अनुसार, "साइमन कमीशन का भारत आगमन और उसमें भारतीय प्रतिनिधित्व का आभाव राष्ट्रीय आंदोलन को एक नयी गति देने वाला था"।[2] इस अपमानजनक व्यावहार ने भारतीय जनता और नेतृत्व को ब्रिटिश सरकार के प्रति और अधिक आक्रोशित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए कतिपय स्पष्ट लक्ष्यों की आवश्यकता महसूस की।

ध्यातव्य है कि 1920 के दशक के अंत तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे युवा नेता का प्रभाव बढ़ने लगा था। नेहरू का दृष्टिकोण गांधीजी के सत्याग्रह और अहिंसा के सिद्धांतों के साथ-साथ आधुनिक, वैज्ञानिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था। नेहरू का विचार था कि भारतीय स्वतंत्रता केवल ब्रिटिश शासन से राजनीतिक मुक्ति तक सीमित नहीं हो सकती। वस्तुतः भारत के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की आधारशिला भी होनी चाहिए। 1929 के कांग्रेस अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में चुना गया। यह नियुक्ति भारतीय राजनीति में युवा नेतृत्व के उदय का प्रतीक थी। 1929 के लाहौर अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली बार औपचारिक रूप से 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव पारित किया। "नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में जोर देकर कहा कि भारत को अब 'पूर्ण स्वराज' के अलावा कुछ भी स्वीकार नहीं होगा।"[3] "अपने प्रस्ताव में स्पष्ट किया कि भारतीयों का लक्ष्य ब्रिटिश शासन से पूर्ण स्वतंत्रता है, न कि केवल औपनिवेशिक प्रशासन में सुधार।"[4] इस प्रस्ताव के माध्यम से भारत की जनता को ब्रिटिश शासन के खिलाफ एकजुट होने और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया गया। नेहरू ने अपने भाषण में कहा, "हमें एक ऐसा भारत बनाना है जो आत्मनिर्भर हो, जहाँ हर नागरिक को समान अधिकार मिले"। 26 जनवरी 1930 को 'स्वतंत्रता दिवस' के रूप में घोषित करना इस प्रस्ताव का महत्वपूर्ण हिस्सा था। यह दिन भारतीय जनता के लिए स्वतंत्रता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का प्रतीक बन गया। इस प्रस्ताव ने कांग्रेस को जनता के करीब लाया और स्वतंत्रता संग्राम को जनान्दोलन का रूप दिया।[5] नेहरू का स्वराज भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई वैचारिक ऊँचाई प्रदान करता है। "उनके अनुसार स्वतंत्रता केवल राजनीतिक आजादी तक सीमित नहीं हो सकती, यह आर्थिक शोषण के अंत, सामाजिक समानता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का साधन भी होनी चाहिए।"[6] नेहरू ने औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिक शिक्षा को भारत की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक माना।

नेहरू के विचार गांधीजी के साथ एक वैचारिक संतुलन बनाते थे। जहाँ गांधीजी का स्वराज ग्राम्य जीवन, खादी और स्वदेशी पर आधारित था वहीं नेहरू का दृष्टिकोण शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और वैश्विक दृष्टिकोण पर आधारित था। दोनों नेताओं का उद्देश्य स्वतंत्रता की प्राप्ति थी लेकिन उनके तरीकों और प्राथमिकताओं में भिन्नता थी।[7] जवाहरलाल नेहरू का स्वराज का विचार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक

प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उनके लिए स्वराज का मतलब केवल ब्रिटिश शासन का अंत नहीं था बल्कि भारत को एक आत्मनिर्भर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आधुनिक राष्ट्र के रूप में स्थापित करना था। नेहरू ने अपने भाषणों और लेखों में बार-बार इस बात पर जोर दिया कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं हो सकती यह एक समग्र परिवर्तन का साधन होनी चाहिए।[8] नेहरू के दृष्टिकोण में औद्योगिकीकरण, शिक्षा का प्रसार और वैज्ञानिक सोच को प्रमुख स्थान दिया गया। उन्होंने यह महसूस किया कि एक स्वतंत्र भारत को केवल ब्रिटिश शासन से मुक्त होने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उसे आर्थिक शोषण, जातिगत भेदभाव और सांस्कृतिक पिछड़ेपन से भी मुक्त होना चाहिए। उनका स्वराज गांधीजी के ग्राम्य जीवन आधारित स्वराज से भिन्न था लेकिन दोनों के दृष्टिकोण में समानता यह थी कि दोनों भारतीय जनता के सशक्तीकरण पर जोर देते थे।

1929 का कांग्रेस अधिवेशन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक प्रमुख क्षण था। यह अधिवेशन लाहौर में हुआ और इसका नेतृत्व पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया। इस समय महात्मा गांधी का प्रभाव भी मौजूद था, लेकिन नेहरू ने एक नई सोच और दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। इस अधिवेशन ने भारतीय राजनीति में एक नई जागरूकता और क्रांतिकारी दृष्टि का संचार किया, जिससे 'स्वराज' के विचार को नया रूप मिला। नेहरू के लिए 'स्वराज' केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का विचार नहीं था; यह समाज की बुनियादी संरचना, आर्थिक स्थिति और सामाजिक सुधारों के लिए भी एक दृष्टिकोण था। उनके अनुसार, स्वराज का अर्थ ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता से अधिक था। यह एक समाजवादी दृष्टिकोण था जिसमें समानता, सामाजिक न्याय और विकास की एक व्यापक योजना शामिल थी। 1929 में जब नेहरू ने 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव रखा तो यह एक नई दिशा का परिचायक था। इससे पहले के कांग्रेस अधिवेशनों में 'डोमिनियन स्टेटस' की बात की जाती थी, जिसमें भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के तहत एक स्वायत्त स्थिति देने की मांग होती थी। लेकिन 1929 में, नेहरू ने 'पूर्ण स्वराज' की ओर बढ़ने का संकल्प लिया, जिसका अर्थ था ब्रिटिश शासन से पूरी स्वतंत्रता। नेहरू का यह दृष्टिकोण महात्मा गांधी के विचारों से मेल खाता था, लेकिन उसमें एक नया पहलू था। गांधी जी ने स्वराज का अर्थ आत्मनिर्भरता और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से जोड़ा, जबकि नेहरू ने इसे व्यापक दृष्टिकोण से देखा। उनके लिए, स्वराज का मतलब एक ऐसा समाज था जिसमें हर व्यक्ति को समान अवसर प्राप्त हो, जहां सामाजिक भेदभाव न हो और जहाँ आर्थिक और सामाजिक न्याय हो। नेहरू के विचारों ने भारतीय राजनीति में एक नई दिशा दी। उनके विचारों ने भविष्य के भारत के लिए एक नई दिशा तय की। वे मानते थे कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता से काम नहीं चलेगा; बल्कि समाज में आर्थिक सुधार, समाजवाद और सामूहिक विकास की आवश्यकता है। उनके अनुसार, अगर भारत को सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता प्राप्त करनी है, तो उसे एक व्यापक दृष्टिकोण को अपनाना होगा, जिसमें शिक्षा, औद्योगिकीकरण, विज्ञान, और तकनीकी उन्नति शामिल हो।

1929 का कांग्रेस अधिवेशन और पूर्ण स्वराज का विचार भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि था। यह अधिवेशन न केवल एक राजनीतिक घटना थी, बल्कि भारतीय जनमानस के लिए एक नई चेतना का संचार भी था। नेहरू के विचारों ने भारत के भविष्य के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष में एक नई ऊर्जा दी। इसके अलावा, नेहरू ने यह भी कहा कि स्वराज का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं होना चाहिए। उनके लिए, इसका मतलब एक नए प्रकार के समाज की रचना था जिसमें हर नागरिक को समान सम्मान और अवसर मिले। उनकी यह सोच उनके जीवन के कई पहलुओं में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उन्होंने समाज के समग्र विकास के लिए कई योजनाओं को लागू किया, जिनमें औद्योगिकीकरण, विज्ञान, और प्रौद्योगिकी की प्रगति शामिल थी।

अंत में, 1929 का कांग्रेस अधिवेशन और पूर्ण स्वराज का विचार भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता आंदोलन

के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। यह अधिवेशन भारतीय जनता को नई दिशा देने के लिए एक प्रेरणा स्रोत बना। नेहरू ने अपने विचारों से देश को एक नई दिशा दी, जिसने उसे स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया और उसे एक आधुनिक, सशक्त राष्ट्र बनाने की दिशा में ले गया। आज भी उनके 'स्वराज' के विचार भारतीय समाज में प्रासंगिक हैं। 1929 का कांग्रेस अधिवेशन और पूर्ण स्वराज की मांग भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक ऐसा अध्याय है, जिसने न केवल आंदोलन को एक स्पष्ट दिशा प्रदान की, बल्कि यह भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का प्रतीक भी बन गया। नेहरू का नेतृत्व, विचारधारा और दूरदृष्टि इस अधिवेशन को एक ऐतिहासिक क्षण बनाने में सहायक रहे। इस अधिवेशन ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत का स्वतंत्रता आंदोलन अब केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहेगा; यह एक समग्र परिवर्तन का माध्यम बनेगा। 'पूर्ण स्वराज' और इसके साथ जुड़ा नेहरू का स्वराज का विचार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आधारस्तंभ बन गया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में लाहौर अधिवेशन 1929 एक ऐसा ऐतिहासिक मोड़ था जिसने भारत के स्वतंत्रता संग्राम की दिशा और गहराई दोनों को परिवर्तित कर दिया। यह अधिवेशन केवल राजनीतिक घोषणा नहीं थी, बल्कि यह भारत के जनमानस में स्वतंत्रता की भावना को संस्थागत रूप देने का निर्णायक क्षण था। लाहौर अधिवेशन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की रणनीति को नरमपंथी से उग्र राष्ट्रवाद की ओर मोड़ा।[9] इससे पूर्व कांग्रेस अधिकतर ब्रिटिश सरकार से संवाद और याचिका के माध्यम से अधिकार प्राप्त करने का प्रयास करती रही थी। लेकिन अब यह स्पष्ट हो चुका था कि ब्रिटिश सरकार केवल दबाव से ही कोई परिवर्तन करेगी। इस अधिवेशन के पश्चात कांग्रेस का आंदोलन अब केवल सांविधानिक सुधारों की मांग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि अब यह एक जागरूक, जनसहभागी और प्रत्यक्ष विरोधात्मक आंदोलन बन चुका था। इससे कांग्रेस को देश के हर वर्ग का समर्थन मिलने लगा विशेषत: युवाओं, महिलाओं, छात्रों और किसानों का।[10] लाहौर अधिवेशन के प्रभावों से भारत का स्वतंत्रता संग्राम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ध्यानाकर्षण करने लगा। कई विदेशी पत्रकारों और राजनेताओं ने भारतीय स्वतंत्रता की मांग को वैध और नैतिक ठहराया। यह आंदोलन अब केवल एक राष्ट्रीय संघर्ष नहीं, बल्कि मानवाधिकार और स्वशासन का प्रतीक बन गया। कई देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों को भारत से प्रेरणा मिली। इससे भारत की वैश्विक छवि एक उभरते हुए स्वाधीन राष्ट्र के रूप में बनी।[11] लाहौर अधिवेशन ने कांग्रेस को जहां एक ओर युवा नेतृत्व के अधीन किया, वहीं दूसरी ओर महात्मा गांधी को एक नैतिक मार्गदर्शक के रूप में आगे रखा। कांग्रेस का राजनीतिक संचालन जहां पंडित नेहरू जैसे युवा नेताओं के हाथों में आया, वहीं गांधीजी ने जन आंदोलनों का नेतृत्व किया।[12] इस सामंजस्य का लाभ यह हुआ कि कांग्रेस के पास नीति निर्माण और जन-संपर्क दोनों में संतुलन बना रहा, जो आंदोलन को लंबे समय तक टिकाए रखने के लिए आवश्यक था। लाहौर अधिवेशन में स्वराज की अवधारणा सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक समावेशी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण भारत की कल्पना भी थी। इसमें गरीबी उन्मूलन, समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य, और बुनियादी अधिकारों के लक्ष्य भी निहित थे। यही अवधारणाएँ बाद में भारतीय संविधान में प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित की गईं। इस अधिवेशन ने स्पष्ट किया कि भारत का भविष्य सामाजिक न्याय और समानता के सिद्धांतों पर आधारित होगा, न कि केवल ब्रिटिश प्रणाली की नकल पर।[13] लाहौर अधिवेशन की सबसे दूरगामी उपलब्धि यह रही कि इससे प्रेरित होकर 26 जनवरी को भारत ने स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाना शुरू किया। यद्यपि 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता मिली, फिर भी 26 जनवरी 1950 को जब भारतीय संविधान लागू हुआ, तब उसी तिथि को गणतंत्र दिवस के रूप में चुना गया। यह तथ्य दर्शाता है कि लाहौर अधिवेशन केवल एक राजनीतिक घटना नहीं, बल्कि भारत के संवैधानिक निर्माण की नींव थी। यह उस दिन का स्मरण है जब भारत ने अपने स्वतंत्र होने का सामूहिक संकल्प लिया था। लाहौर अधिवेशन

1929 केवल एक राजनैतिक अधिवेशन नहीं था, बल्कि यह भारत के इतिहास का ऐसा बिंदु था, जहां से स्वतंत्रता की लड़ाई को एक ठोस और स्पष्ट दिशा मिली। इस अधिवेशन ने दिखाया कि भारत अब सिर्फ सुधारों से संतुष्ट नहीं, बल्कि पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता चाहता है। लाहौर अधिवेशन 1929 भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का वह निर्णायक मोड़ था, जिसने भारत के स्वाधीनता संग्राम को एक स्पष्ट और ठोस दिशा प्रदान की। इससे पूर्व तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मांगें सीमित सुधारों तक ही सीमित थीं, लेकिन इस अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' की उद्घोषणा ने यह स्पष्ट कर दिया कि अब भारत का लक्ष्य केवल ब्रिटिश शासन के भीतर स्वायत्तता नहीं, बल्कि सम्पूर्ण स्वतंत्रता है। यह अधिवेशन न केवल एक राजनीतिक निर्णय था, बल्कि यह भारत के जनमानस में स्वतंत्रता की भावना को जागृत करने का प्रतीक बन गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में संपन्न इस अधिवेशन ने कांग्रेस में नई ऊर्जा का संचार किया। युवाओं, छात्रों, महिलाओं और किसानों को एकजुट कर राष्ट्रवादी भावना को जन-जन तक पहुंचाया गया। अधिवेशन में यह तय किया गया कि हर वर्ष 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जाएगा। इसी निर्णय ने आगे चलकर 26 जनवरी को भारत के गणतंत्र दिवस के रूप में स्थापित करने की प्रेरणा दी। महात्मा गांधी को इस अधिवेशन के बाद असहयोग की अगली रणनीति तैयार करने का दायित्व सौंपा गया, जिसके परिणामस्वरूप 1930 में ऐतिहासिक नमक सत्याग्रह और नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू हुआ। लाहौर अधिवेशन ने भारत को न केवल राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने की दिशा दी, बल्कि यह सामाजिक और संवैधानिक चेतना का भी प्रारंभिक बिंदु था। स्वतंत्रता अब केवल एक याचना नहीं रही, बल्कि यह भारतीयों का अधिकार और कर्तव्य बन चुकी थी। इस अधिवेशन ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत की जनता ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष करने के लिए तैयार है।

अत: लाहौर अधिवेशन का ऐतिहासिक महत्व बहुआयामी है। इसने भारत की स्वतंत्रता के लिए केवल मार्ग प्रशस्त नहीं किया, बल्कि उस राष्ट्र की नींव रखी जिसका निर्माण बाद में भारतीय संविधान के माध्यम से हुआ। यह अधिवेशन भारतीय इतिहास में राष्ट्रीय संकल्प, जन-एकता और स्वतंत्रता की अटूट आकांक्षा का अमर प्रतीक बनकर सदा के लिए अमिट हो गया।

संदर्भ :

1. बिपिन चंद्रा, भारत का स्वतंत्रता संग्राम (इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस), पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 225, 240.
2. शेखर बंद्योपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद : आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंटल ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2015, पृ. 2015.
3. जवाहरलाल नेहरू, मेरी आत्मकथा : स्वतंत्रता की ओर, जॉन डे कंपनी, न्यूयार्क, 1941, पृ. 37, 41.
4. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रस्तावना, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, इलाहाबाद, 1929, पृ. 18.
5. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रस्तावना, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, इलाहाबाद, 1929, पृ. 15, 18, 22, 23
6. जवाहरलाल नेहरू, मेरी आत्मकथा : स्वतंत्रता की ओर, जॉन डे कंपनी, न्यूयार्क, 1941, पृ. 41.
7. महात्मा गाँधी, महात्मा गाँधी के संकलित कार्य, खंड 7, प्रकाशन प्रभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1958, पृ. 82.
8. जवाहरलाल नेहरू, भारत की खोज, सिग्नेट प्रेस, कलकत्ता, 1946, पृ. 143-150.
9. बिपिन चंद्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, वी पब्लिकेशन, दिल्ली, 2019, पृ. 240.
10. बी.एल. ग्रोवर, अलका मेहता और यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन, एस.चाँद,

पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2024, पृ. 289.
11. रामचंद्र गुहा, अनुवादक : सुशांत झाा, भारत : गाँधी के बाद, पैंगुइन बुक्स, हिंदी संस्करण, 2011, पृ. 215
12. जवाहरलाल नेहरू, मेरी आत्मकथा : स्वतंत्रता की ओर, जॉन डे कंपनी, न्यूयार्क, 1941, पृ. 190
13. रामचंद्र गुहा, भारत के संविधान का इतिहास, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृ. 102–110.
14. बी.एल. ग्रोवर, अलका मेहता और यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन, एस.चाँद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2024, पृ. 179–183.

❖❖❖

प्राचीन भारतीय शिक्षा परंपरा बनाम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कौशल विकास

❍ (प्रो.) डॉ. आशा[1]

संक्षिप्ति :

प्रस्तुत लेख प्राचीन भारतीय शिक्षा परम्परा में निहित व्यावसायिक अर्थात रोजगारपरक शिक्षा को महत्व देने तथा उसकी आवश्यकता आज के समय में भी कितनी प्रासंगिक है और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कैसे इस बात को गम्भीरता से लेते हुए रणनीतियाँ तैयार की गई हैं, उन्हीं का उल्लेख मात्र है।

मुख्य बिन्दु : प्राचीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न कलाओं एवं विधाओं का वर्णन, रोजगारपरक शिक्षा की आवश्यकता, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कौशल विकास तथा उनका महत्व।

उज्जैन में गुरु सांदीपनि का आश्रम है जिसका उल्लेख महाभारत, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में मिलता है। देश की इस प्रथम पाठशाला में भगवान श्रीकृष्ण ने 4 दिन में चार वेद, 6 दिन में 6 शास्त्र, 16 दिन में 16 विद्या, 18 दिन में 18 पुराण सहित कुल 64 दिन में 64 अलग-अलग कलाओं का ज्ञान अर्जित किया था। इस आश्रम में सोलह विद्याओं एवं चौंसठ कलाओं की दीर्घाएं हैं, जो इस प्रकार है-

1. गीत (The art of singing) - गायन कला।
2. वाद्य (The art of playing musical Instruments)- संगीत वाद्य यंत्रों को बजाने की कला।
3. नृत्य (Different types of dance art)- विभिन्न प्रकार की नृत्य कला।
4. आलेख्य (To paint) -चित्रकारी करना।
5. विशेषकच्छेद्य (To decorate the forehead)- माथे की सजावट करने की कला।
6. तंडुल कुसुम बलिविकार (Creating decorative floral and grain designs on the floor)- फर्श पर सजावटी पुष्प एवं अनाज से डिजाइन बनाना।
7. पुष्पास्तरण (Flowering)- घर और मंदिर में फूलों की सजावट करने की कला।
8. दथनवसनांगरांग (The art of enhancing personal beauty)- व्यक्तिगत सौन्दर्य को निखारने की

1. प्रभारी प्राचार्य, लालता सिंह राजकीय महिला, स्नातकोत्तर महाविद्यालय अदलहाट, मीरजापुर

कला।

9. मणिभूमिकाकर्म (Different types of flooring arrangements and construction)- फर्श की विभिन्न प्रकार से व्यवस्था एवं निर्माण।
10. शयन रचना (Bedroom arrangement)-शयन कक्ष से सम्बन्धित साज-सज्जा एवं व्यवस्था।
11. उदकवाद्य (Creating music with water)- जल से संगीत बनाना।
12. उदकाघात (Splashing and squiring with water)- फौव्वारों का निर्माण।
13. चित्राष्च योगा (Secret mantras)- गुप्त मंत्र।
14. माल्यग्रथन (Making flower garlands)- पुष्पों से माला तैयार करना।
15. शेखरकापीडयोजन (Head adorements)- सिर के शिखा स्थान पर पहनने के कारण शेखर कहलाता है। रंग-बिरंगे फूलों से तैयार किया जाता है और उस काल में नागरिकों का प्रमुख शृंगार था।
16. नेपथ्य प्रयोग (Dressing)- परिधान धारण करने की कला।
17. कर्णपत्रभंग (Ear decoration art)- कान के सजावट की कला।
18. गन्धयुक्ति (Perfumery)- इत्र बनाने या बेचने की क्रिया अथवा व्यवसाय।
19. भूषणयोजन (Jewellery making)- आभूषण बनाना।
20. ऐन्द्रजाल (Magic and illusion)- जादू और भ्रमजाल की कला।
21. शृंगार (Make up)- सौन्दर्य वृद्धि की कला।
22. हस्तलाघव (Manual dexterity) -समस्त कार्यों को शीघ्रता से करने की कला जिससे कार्य को करने में अधिक समय न लगे और लोगों को चकित करने के लिए हाथ की सफाई।

    सर्व कर्मसु लघुहस्तता कालातिपातनिरासार्यम्।
    द्रव्यहानिषु वा लाघवं क्रीडार्य विस्मापनार्यम् च।।

23. विचित्रषाकयूषभक्ष्यविकार क्रिया (Skill of cooking, eating and drinking)- खाना पकाने, खाने और पीने का कौशल।
24. पानकरस-रगासवयोजन (Beverage and dessert preparation)- पेय पदार्थ एवं मिठाई तैयार करने की कला।

    भक्ष्य-भोज्य-लेह्य-पेयमिति चतुर्विध आहारा:।
    तेषां निर्माण विधि:।।

25. सूचीवानकर्म (Sewing, making and mending garments)- कपड़ों की सिलाई, निर्माण एवं मरम्मत करने की कला।
26. सूत्रक्रीड़ा (Embroidery)- कढ़ाई कला।
27. वीणाडमरुकवाद्यानि (Playing vina and drum)- वीणा एवं ड्रम बजाना।
28. प्रहेलिका (Riddles and rhymes) -पहेली कहना और उसका अर्थ बताना।
29. प्रतिमाला (Poetry gems)- कविता रत्न।
30. दूर्वाचकयोग (Tongue twister and dffiicult recitation)- जीभ घुमाने वाला और कठिन उच्चारण।
31. पुस्तकवाचन (Book reading)- पुस्तक पढ़ना।
32. नाटकाख्यायिकादर्शन (Drama and storytelling)- नाटक और कहानी सुनाना।

33. काव्यसमस्यापूरण (Verse composition game)- काव्य या छन्द के चरण पूरे करना। क्रीड़ा या वाद-विवाद प्रयोजन।
34. पट्टिकावेत्रवानविकल्प (Furniture canning)- खाट और आसन की बेंत द्वारा विभिन्न प्रकार की बुनाई।
35. लक्षकर्म (Meenakari on utensils and jewellery)- बर्तनों एवं गहनों पर मीनाकारी।
36. तक्षण (Carpentry work for wood art) -लकड़ी की कला हेतु बढ़ई का काम।
37. वास्तुविद्या (Architecture)- घर आदि बनाने की कला।
38. रुप्यरत्नपरीक्षा (Distinguishing between ordinary and precious stones and metals)- धातु रत्न के गुण-दोष और मूल्य की परीक्षा।
39. चाटुवाद (Sycophancy)- हाँ में हाँ मिलाना यानि चाटुकारिता की कला सीखना।
40. मणिरागाकरज्ञान (Gems and mining)- स्फटिक आदि मणियों को धन और आभूषण के लिए रंगने की कला।
41. वृक्षायुर्वेद योग (Gardening and horticulture)- गृहोधान के लिए रोपना, पालन-पोषण करना, चिकित्सा में विचित्रता लाने की दक्षता।
42. मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि (Sheep and chicken cubs fighting for sport or competition) -भेड़, मुर्गी, शावकों को खेल या प्रतिस्पर्धा के लिए लड़ना।
43. शुकशारिका प्रलापन (Parrot and maina learning to speak in human language)- तोता-मैना को मनुष्य की भाषा में बोलना सीखना।
44. उत्सादन-संवाहन-केशमर्दन कुशलता (Skilled in foot massage, hand body and hair massage)- पैरों की मालिश, हाथों से शरीर और बालों की मालिश में कुशलता।
45. अक्षरमुष्टिका कथन (Knowledge of code letters)- सांकेतिक अक्षरों का ज्ञान।
46. म्लेच्छित विकल्प (Speaking in code)- गुप्त भाषा के विविध रूप।
47. देशभाषा विज्ञान (Knowledge of foreign languages and dialects)- विदेशी भाषाओं और बोलियों का ज्ञान।
48. पुष्पशकटिका (Making a flower bouquet)- फूलों का गुलदस्ता बनाना।
49. निमित्तज्ञान (Knowledge for the purpose)- उद्देश्य के लिए ज्ञान।
50. यन्त्रमातृका (Instrument matrix)- साधना मैट्रिक्स।
51. धारणमातृका (Memory training)- स्मृति प्रशिक्षण।
52. संपाठ्य (In this joint game or competition, one person read a text and the other person listens to it and then reads it along with him)- मिलकर खेल या स्पर्धा के लिए एक व्यक्ति ग्रन्थ पढ़ता है और दूसरा उसे असुने को भी उसके साथ वैसा ही पढ़ देता है।
53. मानसी (Meaning of words)- बिखरे अक्षरों से कमल आदि आकृति के श्लोक बनाना।
54. अभिधानकोश (Dictionary study)- शब्दकोश का ज्ञान।
55. छन्दोज्ञान (Knowledge of the verses created by Pingala etc.)- पिंगल आदि द्वारा बनाए गए छन्दों का ज्ञान।
56. क्रियाकल्प (Knowledge of poetics to understand other poetry)- दूसरे काव्यों को समझने के लिए काव्यशास्त्र का ज्ञान।

57. छलितयोग (To become an imposter)- बहुरुपिया बनना।
58. वस्त्रगोपन (Covering up clothes)- छोटे कपड़े इस प्रकार पहनना कि वे बड़े दिखें और बड़े कपड़े छोटे।
59. द्यूतविशेष (Different types of gambolling)- विभिन्न प्रकार की द्यूतक्रिड़ाओं की कला।
60. आकर्षक्रीड़ा (Play dices)- पासे खेलना।
61. बालक्रीड़ाकार (Child playmate)- बच्चों के साथ खेलना।
62. वैनायिकी विद्या (Personal and animal trainings)- स्वयं को प्रषिक्षित करने एवं विभिन्न जन्तुओं को प्रशिक्षित करने की कला।
63. वैजयिकी विद्या (The knowledge that brings victory)- विजय दिलाने वाली विद्यायें अर्थात् शस्त्र-शास्त्र संग्राम में दूसरो को पराजित करने वाली विद्या।
64. व्यायामिकी (The art of exercising)- व्यायाम विद्या, जो कई प्रकार की बतायी गयी है- स्वयं की उन्नति, अन्य की रक्षा, उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति आदि।

उपरोक्त चौंसठ कलाओं के प्रयोगात्मक ज्ञान अर्जन के पश्चात् कोई भी व्यक्ति रोजगार से वंचित हो ही नहीं सकता है। यहाँ ज्ञान-विज्ञान है, यहाँ शास्त्र है, यहाँ शस्त्र का भी अध्ययन है। इन चौंसठ कलाओं में कुछ ऐसी कलाएँ हैं जिनके अध्ययन से स्वयं की शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति है तो दूसरी ओर अन्य लोगों की सुरक्षा का संकल्प भी है। यहाँ रोजगार परक शिक्षा है। यहाँ गीत-संगीत, वाद्य तथा आलेख की शिक्षा है। भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल में प्रशिक्षण देने की बात है तो इसके साथ ही इस आश्रम में घर, मन्दिर, आभूषण, बालों तथा शरीर को कई प्रकार से सजाने की विद्या भी है। जिस होटल मैनेजमेण्ट अथवा मास्टर सैफ बनने की पढ़ाई आज विद्यार्थी आधुनिक समय की पढ़ाई के रूप में जानते हैं वो वर्षो पहले विश्व के प्रथम विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित गुरु सांदीपनि के आश्रम में विद्यार्थी प्राप्त कर रहे थे। जिस कृषि विज्ञान का अध्ययन फसल उत्पादन की क्रिया को वैज्ञानिक रूप से बढ़ावा देने के रूप आज के समय में किया जाता है वैसी अनाज उगाने की कला वर्षो पहले लोग सीख रहे थे और आर्थिक उपार्जन के रुप में उसका प्रयोग कर रहे थे।

वास्तव में शिक्षा के विभिन्न रूप हैं और मनुष्य को अपनी योग्यता तथा क्षमता का आंकलन करके अपनी रुचि तथा गुण के अनुसार रोजगार परक शिक्षा ग्रहण करना चाहिए जिससे पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। जब विद्यार्थी अपने-अपने गुणों के आधार पर कर्मो के विभाग में दक्षता प्राप्त करते हैं तो मानसिक सन्तोष प्राप्त करते हुए उत्साह पूर्वक अपने कर्त्तव्यों का पालन कर पाते हैं।

1986 की शिक्षा नीति के बाद नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बनी जिसमें बालक के सर्वांगीण विकास तथा उसके लिए आवश्यक अन्तर्निहित गुणों की अभिव्यक्तता के लिए आवश्यक बिन्दुओं पर इसमें विशेष ध्यान दिया गया है। शिक्षा के सन्दर्भ में महात्मा गाँधीजी का तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ठ विकास से है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। शिक्षा का शाब्दिक अर्थ होता है सीखने एवं सिखाने की क्रिया लेकिन यदि इसके व्यापक अर्थ को देखें तो शिक्षा किसी भी समाज में निरंतर चलने वाली सामाजिक प्रक्रिया है जिसका कोई उद्देश्य होता है और जिससे मनुष्य की आंतरिक शक्तियों का विकास तथा व्यावहार को परिष्कृत किया जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा में व्यापक परिवर्तन की परिकल्पना करती है- "भारतीय लोकाचार में निहित एक शिक्षा प्रणाली जो सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करके भारत को एक समतापूर्ण एवं जीवंत ज्ञान समाज बदलने में सीधे योगदान देती है, जिससे भारत वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बन जाता है।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पहुँच, समानता, गुणवत्ता, सामर्थ्य और जवाबदेही के पाँच मार्गदर्शक स्तंभों पर आधारित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में व्यावसायिक शिक्षा एवं कौशल विकास पर विशेष बल दिया गया है। व्यावसायिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा के साथ एकीकृत करने और व्यावसायिक शिक्षा को मुख्य धारा में लाने की सिफारिश की गयी है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समग्र शिक्षा की मौजूदा योजना को नया रूप दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत HHRO द्वारा बुनियादी शिक्षा और संख्यात्मक ज्ञान पर एक राष्ट्रीय मिशन की स्थापना की गई है जिसमें आधारभूत कौशलों के विकास के लिए प्राथमिक स्तर पर ही पहल करने की बात की गई हे। विद्यालयों में सभी स्तरों पर छात्रों को बागवानी, नियमित रुप से खेल-कूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट आदि को स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रदान करने की संकल्पना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा प्रणाली को बदलने की दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम है। इसका उद्देश्य छात्रों को 21वीं सदी में सफल होने के लिए आवश्यक कौशलों से लैस करना है। यह नीति न केवल एकेडमिक ज्ञान पर ध्यान केन्द्रित करती है बल्कि कौशल विकास, आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता एवं डिजिटल साक्षरता पर भी जोर देती है ताकि छात्र भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार हो सकें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा के लिए एक समग्र और बहु-विषयक दृष्टिकोण की कल्पना करता है, जो आधुनिक दुनिया में छात्रों की जरूरतों को पूरा करने वाले आवश्यक कौशल को बढ़ावा देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में 21वीं सदी के कुछ प्रमुख कौशलों पर प्रकाश डाला गया है-

1. आलोचनात्मक चिंतन एवं समस्या के समाधान हेतु विश्लेषणात्मक ढंग से सोचने के लिए प्रोत्साहित करना।
2. रचनात्मकता एवं नवाचार को बढ़ावा देना।
3. डिजिटल साक्षरता पर ध्यान देना।
4. प्रभावशाली संचार कुशलता उत्पन्न करना जिससे समूह में सफलतापूर्वक कार्य किया जा सके।
5. बदलते परिवेश से अनूकुलन करने की क्षमता विकसित करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उपरोक्त कौशलों के विकास के लिए कई रणनीतियाँ बनायी गई हैं जो इस प्रकार से हैं-

1. कौशल आधारित शिक्षा को षामिल करने के लिए प्राथमिक स्तर पर ही कोडिंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा साइंस जैसे विषयों को एकीकृत करना षामिल है।
2. प्रोजेक्ट आधारित शिक्षा एक शैक्षणिक दृष्टिकोण है जो वास्तविक दुनिया की समस्याओं के समाधान की दृष्टि पैदा करती है।
3. 21वीं सदी के कौशल को विकसित करने में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षकों के लिए निरंतर व्यावसायिक विकास की आवश्यकता पर जोर देता है।
4. लर्न कोच के साथ छात्रों के पास ई-पुस्तक एवं ऑनलाइन डिजिटल संसाधन की विषाल श्रृंखला उपलब्ध है।

वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य बिना किसी भेद-भाव के अपनी परम्परा, संस्कृति, मूल्यों पर आधारित ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना है जिससे लोगों में ज्ञान, कौशल विकास, बुद्धि एवं

आत्मविश्वास का विकास हो सके और अपनी क्षमताओं तथा कुशलताओं का प्रयोग करके छात्र आर्थिक रूप से इतना सक्षम बन सके कि अपने पारिवारिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का सुगमतापूर्वक निर्वहन कर सके।

सन्दर्भ :

1. पंवार, डॉ. सीमा (2022), शोध मंथन, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कौशल विकास के अवसर'.
2. देवानन्द (2024), 'बारहवें ज्योतिर्लिंग की ओर', आनन्दकानन प्रेस, वाराणसी, पेज नं. 15–18.
3. शर्मा, प्रो. के.एल. (2020), दैनिक भाष्कर जयपुर संस्करण, अगस्त, पेज नं. 2.
4. गंगपाल सुभाष, (2020) 'नई शिक्षा नीति 21वीं सदी की चुनौतियों का करेंगी मुकाबला', दैनिक नव ज्योति, अगस्त, पेज नं. 4.

❖❖❖

भारत में जल संसाधन एवं आर्थिक विश्लेषण : एक दृष्टिकोण

- महेन्द्र यादव[1]
- राजेश कुमार यादव[2]

जल जीवों व वनस्पतियों के जीवन के लिए विशेष महत्व रखता है, इससे अमूमन हम सभी लोग सदियों से वाकिफ हैं। जहाँ तक भारत में जल संसाधन की उपलब्धता तथा इसके वितरण का सवाल है तो एक अध्ययन के अनुसार देश में 71% जल संसाधन की मात्रा देश के 36% में क्षेत्रफल में सिमटी है और बाकी 64% क्षेत्रफल के पास देश के 29% जल संसाधन ही उपलब्ध हैं। इससे यह देखा जा सकता है कि जल संसाधन के वितरण में पर्याप्त असमानता मौजूद है। जल एक प्राकृतिक संसाधन जो किसी भी देश के आर्थिक विकास में अपना अहम रोल हर स्तर पर अदा करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में जल संसाधन के आर्थिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

जल एक प्राकृतिक संसाधन है जो पृथ्वी पर सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है। मानव के उपयोग के लिए यह मात्रा लगभग 3% के आसपास ठहरती है, इसलिए मानव समाज की यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि वह इस बहुमूल्य संसाधन को अपने और अपने आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास करें। भारत की अर्थव्यवस्था के लिए जल संसाधन बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत कृषि प्रधान देश है जहाँ काफी जनसंख्या कृषि पर ही आश्रित है, सिंचाई के लिए भारत विश्व का सबसे बड़ा भूजल उपयोगकर्ता देश है। भारत का यह दुर्भाग्य है कि यह अपने यहाँ होने वाली वर्षा जल का उपयोग बहुत ही सीमित मात्रा में कर पाता है और अधिकतर जल बिना किसी उपयोग के बह जाता है।[1] भारत में वर्षा जल की उपलब्धता काफी है और यहाँ के सामान्य जीवन का अंग भी है। भारत में औसत दीर्घकालीन वर्षा 1160 मिलीमीटर है जो इस आकार के किसी भी देश में नहीं पायी जाती, साथ ही भारतीय कृषि का एक बड़ा हिस्सा सीधे वर्षा पर आधारित है जो करीब 8.6 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल पर है और यह भी विश्व में सबसे अधिक है। विश्व बैंक के अनुमान के मुताबिक भारत करीब 230 घन मीटर भूजल का दोहन प्रतिवर्ष करता है।[2]

1. *असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिकी, रमाबाई राजकीय महिला पी जी कालेज, अकबरपुर , अंबेडकरनगर*
   Email : drmahendrayadav1976@gmail.com
2. *असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, रमाबाई राजकीय महिला पी जी कालेज, अकबरपुर , अंबेडकरनगर*
   Email: rajeshyadav.gdc@gmail.com

ग्लोबल रिस्क रिपोर्ट 2016 में विश्व आर्थिक मंच में प्रभावकारिता के स्तर पर जल संकट को सबसे बड़े वैश्विक खतरे के रूप में सूचीबद्ध किया है। जल संकट के विविध आयाम हैं, जिसमें भौतिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय आदि प्रमुख हैं। आबादी का बढ़ता दबाव, बड़े पैमाने पर शहरीकरण, बढ़ती आर्थिक गतिविधियां, उपयोग की बदलती प्रवृत्तियाँ, रहन-सहन के स्तर में सुधार, जलवायु विविधता, सिंचित कृषि का विस्तार एवं जल की अधिकांश मांग करने वाली फसलों की पैदावार आदि से जल की मांग का दायरा बढ़ा है। जल की उपलब्धता का वार्षिक आकलन वर्ष भर में इसकी उपलब्धता की विविधता के साथ नहीं जोड़ा जाता, इस प्रकार जल संकट एवं इससे जुड़े सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव का आकलन नहीं हो पाता। उच्च जल सुरक्षा, उच्च आबादी घनत्व वाले क्षेत्रों में होती हैं, फिर अधिकांश सिंचित कृषि वाले क्षेत्रों में या फिर दोनों ही क्षेत्रों में भारत के गंगा बेसिन में जल का उपयोग सर्वाधिक पाया जाता है जब जल की उपलब्धता सबसे कम होती है।

जल के सर्वाधिक उपयोग के संदर्भ में सिंचित कृषि पर जल संकट का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है, जल संकट का यह प्रभाव विविधता पूर्ण होता है। फसल ना होने की स्थिति में यह किसानों की आजीविका को बुरी तरह प्रभावित करता है। वैसे तो सभी किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अलग-अलग होती है। इस कारण इसका प्रभाव अलग-अलग तरीकों से उन पर पड़ता है। जल की उपलब्धता के संबंध में किसानों तक सूचना की पहुंच एवं फसल बोने से पूर्व अकाल की जानकारी हो जाना भी जल संकट से जूझने में किसानों की मदद करता है जो किसान अपनी आजीविका के लिए सिर्फ खेती पर निर्भर नहीं है, वे जल संकट का सामना अपेक्षाकृत बेहतर तरीके से कर सकते हैं। कृषि में आए की कमी का असर अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर पड़ता है, देश की मुद्रा स्मृति प्रभावित होती है जो आर्थिक मंदी के रूप में सामने आता है। कृषि की तुलना में औद्योगिक क्षेत्रों में जल का उपयोग कम होता है, फिर भी जो औद्योगिक घटक भूमि या सतही जल से मिलते हैं, वे जल स्रोत को अन्य उपयोग के लिए बेकार कर देते हैं। ऐसी निर्माण इकाइयां प्रदूषण रोकने हेतु अपने व्यक्तिगत खर्च में कटौती कर एवं मानकों का पालन न करने की वजह से प्रदूषण का सारा भार अंततः समाज पर डाल देते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि भूजल एवं सतह जल का प्रदूषण व्यापक स्तर पर होता है।

सुरक्षित पेयजल के स्रोत को कायम रखने का प्रयास आज भावी पीढ़ी के लिए दांव पर है। प्रदूषित पेयजल का उपयोग करने वाली आबादी विविध प्रकार के जल जनित रोगों का शिकार बनती है। इस कारण जल जनित बीमारियों से मृत्यु दर एवं बीमारियां उच्च स्तर पर है। प्रदूषित जल के उपयोग से भावी स्वास्थ्य खतरे को रोकने के लिए सरकारें एवं आम लोग विभिन्न प्रदूषण मुक्त गतिविधियों में पैसा खर्च करते हैं, जिनमें जल का शोधन, स्रोत की सफाई या फिर बोतल बंद पानी की खरीद आदि शामिल है। इसमें ज्यादातर गरीब हाशिए के लोग ही शिकार होते हैं, क्योंकि वे प्रदूषण के प्रभाव से खुद को बचा पाने में असमर्थ होते हैं, फिर आपूर्ति किए जा रहे जल तक उनकी पहुंच नहीं है या फिर भी वे जल शोधन में खुद ही खर्च नहीं कर सकते हैं।

नदियों के जल के बड़े पैमाने पर ऊपर ही ऊपर दोहन से इस पर निर्भर लोगों के लिए स्वच्छ पेयजल की कमी हो गई है। कई सदानीरा नदियों में गर्मियों में पर्याप्त स्वच्छ पानी नहीं होता ताकि वे वांछित पर्यावरणी बहाव एवं पारिस्थितिकी क्रियाओं जैसे भूजल रिचार्ज में अपना योगदान दे सकें। सतही जल एवं भू जल की एक दूसरे पर निर्भरता वजह से किसी भी किस्म का अवरोध नदियों की पारिस्थितिकी को संवेदनशील स्तर पर पहुंचा देता है, एवं इसके कारण बड़े पैमाने पर जल का क्षरण एवं अपघटन हो जाता है। भारत के कई हिस्सों में भूजल का गिरता स्तर चेतावनी पूर्ण स्थिति में पहुंच चुका है।

जल ग्राही फसलों जैसे गन्ना, धान की वर्षभर पैदावार सतह जल आधारित सिंचाई प्रणाली में अपर्याप्त निवेश, नहर के जलापूर्ति की अनियमितता, नहर जल की आपूर्ति में राजनीतिक हस्तक्षेप एवं जल स्रोतों पर कब्जे

आदि ने सिंचाई के लिए भूजल स्तर पर निर्भरता बढ़ा दी है। वर्षा जल एवं जल छाजन संसाधनों से साल भर भूजल का पंप से दोहन की वजह से, भूजल पर निर्भर लोगों के लिए जल की कमी हो गई है व भूजल काफी नीचे चला गया है।[3] सतह जल आधारित सिंचाई प्रणाली से लोग निवेश को विमुख करने, नि:शुल्क बिजली मुहैया करा कर सिंचित कृषि एवं भूजल आधारित सिंचाई प्रणाली को बढ़ावा देकर जल प्रबंधन का अदूरदर्शी कदम वर्तमान जल संकट के प्राथमिक कारणों में से एक है। सिंचित कृषि एवं ज्यादा मांग वाले बदलते फसल क्रम की तरफ झुकाव ने जल संकट की स्थिति में अनुकूलित कृषि की संभावना को कम कर दिया है।

जल के अभाव की तरह बाढ़ भी पर्याप्त आर्थिक असर डालते हैं। बड़े पैमाने पर अनाज एवं संपत्ति के नुकसान, चारे एवं मानव जीवन नुकसान के साथ-साथ में जल जनित रोग भी पैदा करते हैं। भारत के नदी बेसिन में बाढ़ के पूर्वानुमान के लिए शायद ही कोई प्रमाणित अध्ययन हुआ है। बाढ़ के आर्थिक आधार पर प्रभावों का भी आकलन नहीं हुआ है। बाढ़ से होने वाले आर्थिक-सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभावो की कीमत इससे बचने हेतु बनाए जा रहे आधारभूत ढांचे के निर्माण से भी कम नहीं होता। हमारे तालाबों एवं जलाशयों में सीमित जलग्रहण क्षमता, जलवायु विविधता एवं मानसून के समय जल के उच्च प्रवाह के बहने की वजह से बढ़ जाती है। भारतीय शहरों में बाढ़ आना अब आम बात हो गई है। कई शहरों में घरेलू उत्सर्जन जल (सीवेज एवं बेकार) से अलग चक्रवर्ती जल के प्रबंधन की कोई प्रणाली नहीं है। इसके अलावा हमारे शहरों के उत्सर्जित जल का ढांचा भी भारी दबाव में है और यह जल संरक्षण परिवहन शोधन निस्तारण करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम नहीं है। प्राकृतिक बहाव प्रणाली के प्रबंधन की उपेक्षा एवं पारंपरिक जल संरक्षण संरचनाओं जैसे वर्षा के टैंक, जलभराव की भूमि की उपेक्षा से यह समस्या और भी गहरी हो रही है।[4] चक्रवर्ती जल स्वच्छ जल का एक महत्वपूर्ण संसाधन है और यदि इसका प्रबंधन ठीक तरीके से किया जाए तो शहरों से सुदूर स्रोत से जल की निर्भरता काफी हद तक कम हो सकती है।

पर्यावरण में लगातार हो रहे बदलाव की वजह से न केवल मानव जीवन बल्कि प्रकृति और हमारी कृषि पर भी बुरा असर पड़ा है। जल संसाधन की अनदेखी और जल प्रदूषण के कारण बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था प्रभावित हो रही है। एक अध्ययन में यह बात स्पष्ट हुई है कि दुनिया के कई देशों में समुद्री भोजन के उत्पादन का खतरा जल प्रदूषण के कारण बड़ा है। गौरतलब है कि दुनिया में 3.2 अरब लोग अपने जीवन यापन के लिए समुंद्री खाद पदार्थों के उत्पादन पर निर्भर हैं। शोधकर्ताओं ने दुनिया भर में समुद्री भोजन के उत्पादन और उसकी सुरक्षा का विश्लेषण करने के बाद बताया है कि समुद्र का बढ़ा जलस्तर तापमान में बदलाव और कीटनाशकों का अत्यधिक इस्तेमाल इसकी सबसे बड़ी वजह है। समुद्री खाद पदार्थों का सबसे बड़ा उत्पादन देश चीन भी मौसम संबंधी और जलाशयों को पोषक तत्वों से परिपूर्ण करने के प्रयासों में कमी जैसी समस्याओं से जूझ रहा है।[5]

वन और पर्यावरण की कमी और अनियंत्रित विकास के कारण ही जल प्रबंधन की समस्या बढ़ रही है। पानी के स्रोत सूख रहे हैं तथा भूमिगत जलस्तर गिर रहा है। परिणामस्वरूप पेयजल संकट बढ़ रहा है। देश के अधिकांश भागों में भूमिगत जल स्तर के गिरने से अधिकांश नलकूप, हैंडपंप प्रतिवर्ष निष्क्रिय होते जा रहे हैं। महाराष्ट्र व पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे हरित क्रांति क्षेत्रों में अत्यधिक बोरिंग और विद्युत खर्च से इसकी लागत और बिजली के खर्च में अत्यधिक वृद्धि हुई है। पानी के महत्वपूर्ण स्रोत हिमालय स्थित 1500 ग्लेशियरों में से अधिकांश ताप वृद्धि और बर्फ गिरने से आई कमी के कारण पीछे खिसक रहे हैं।

सन्दर्भ :

1. द कास्ट ऑन इनैक्शन वैल्यूईग द इकोनामी : ब्रैंडन, कार्टर एवं होमैन (1995)

2. वाटर फ्रूमन डेवलपमेंट एंड इकोनामिक ग्रोथ : एम डी कुमार , जेड शाह , एस मुखर्जी एवं मुदगेरियन (2008)
3. एनवायरमेंटल सीनेरियो इन इंडिया : एस मुखर्जी एंड डी चक्रवर्ती (2012)
4. सस्टेनिंग अर्बन वॉटर सप्लाईज इन इंडिया : एस मुखर्जी , जेड शाह एवं एम डी कुमार (2010)
5. ग्राउंड वॉटर पॉल्यूशन : यस मुखर्जी एंड पी नेल्लियत (2007)

❖❖❖

पिछले 25 वर्षों में कृषि जैव विविधता का ह्रास : नालंदा जिला के अस्थावाँ प्रखंड के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन

❍ अरविन्द कुमार[1]

संक्षिप्ति :

किसी निश्चित क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवन के विभिन्न रूप 'जैव विविधता' कहलाते हैं। इसके अन्तर्गत जन्तु, पौधे, कवक, बैक्टीरिया, सूक्ष्म जीव आदि समस्त जीवित तत्व शामिल हैं।[1] कृषि जैव विविधता का अर्थ कृषि के अन्तर्गत आने वाले फसलों के विभिन्न रूपों से है। किसी स्थान पर जीवों एवं पौधों के विभिन्न प्रकारों में होने वाली वृद्धि उस पारिस्थैतिक तंत्र के अच्छे स्वास्थ्य का द्योतक है। पारिस्थैतिक तंत्र में पाए जाने वाले जीवों एवं पौधों के विभिन्न रूप एक-दूसरे के सम्पूरक होते हैं। किसी एक जैविक घटक की संख्या में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव दूसरे जीवों पर निश्चित रूप से पड़ता है। सिंचाई सुविधाओं के विकास एवं उच्च उत्पादकता वाले पौधों (HYV) के प्रयोग के कारण वर्तमान में एक ही प्रकार के फसलों को उगाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इससे कृषि जैव विविधता में पर्याप्त ह्रास देखने को मिला है। प्रस्तुत शोध-पत्र में नालन्दा जिला के अस्थावाँ प्रखंड में रहने वाले 250 कृषकों के विभिन्न श्रेणियों से एकत्रित किए गए सूचनाओं के आधार पर यह जानने का प्रयास किया गया है कि उक्त क्षेत्र में कृषि जैव विविधता में पिछले तीन दशकों के दौरान किस प्रकार का परिवर्तन हुआ है।

बीज शब्द : कृषि जैव विविधता, नालंदा जिला, अस्थावाँ प्रखंड, जैविक कृषि, फसलोत्पादन, बगीचा कृषि, मत्स्यन, डेयरी फार्मिंग, परम्परागत बीज बैंक, कृषि पैटर्न में बदलाव।

वर्तमान समय में जैव-विविधता एक महत्वपूर्ण अध्ययन एवं शोध का विषय है। विश्व स्तर पर जैव-विविधता के क्षेत्र में व्यापक कार्य किए जा रहे हैं। प्राकृतिक कारणों, खासकर वायुमंडलीय तापन आदि के कारण तो जैव-विविधता में ह्रास आया ही है, मानवीय कारकों ने जैव-विविधता को उससे ज्यादा प्रभावित किया है। मानव ने कई रूपों में प्रकृति एवं प्राकृतिक विविधताओं को कुप्रभावित किया है। स्थल, जल एवं वायु-पर्यावरण के तीनों रूपों को मानव ने बहुत क्षति पहुँचाई है। वर्तमान मोबाइल फोन की बढ़ती संख्या के कारण वायु में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक तरंगों (रेडियो तरंग) की संख्या एवं प्रकृति में भारी परिवर्तन आया है। इन

1. पी-एच. डी., भूगोल, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।

हानिकारक तरंगों की वजह से वायु में उड़ने वाली पक्षियों की कई प्रजातियाँ एवं कीट-पतंगों के कई रूप अब विलुप्ति के कगार पर हैं। उदाहरण के तौर पर हम पाते हैं कि गिद्ध, गौरया, मैना आदि पक्षियों की संख्या में तेजी से गिरावट आई है। जुगनू जो 25.30 वर्ष पहले बड़ी संख्या में शहरों में दिखता था, आज गाँवों में भी नजर नहीं आता है। भृंग बरूथी (Beetle), भौंरा, झींगुर आदि की संख्या तेजी से घटी है। इसी प्रकार जल में पाए जाने वाले जीवों के प्रकार एवं संख्या में काफी कमी आई है। मत्स्यन को भी कृषि के अंतर्गत शामिल किया जाता है। पिछले 25 वर्षों में मछली की किस्मों में कमी देखी गई है। स्थल पर पाये जाने वाले जीव-जंतु एवं पेड़-पौधों की संख्या एवं विविधता में भी काफी कमी देखी गई है। इस शोध-पत्र में हमारा फोकस अस्थावाँ प्रखण्ड के अन्तर्गत आने वाले कृषि क्षेत्रों में होने वाले जैव विविधता की कमी पर होगा। कृषि के अंतर्गत खाद्यान्न फसलों की कृषि, बागानी फसलों की कृषि, डेयरी फार्मिंग, मत्स्यन, पशुपालन एवं वन रोपन भी शामिल हैं।

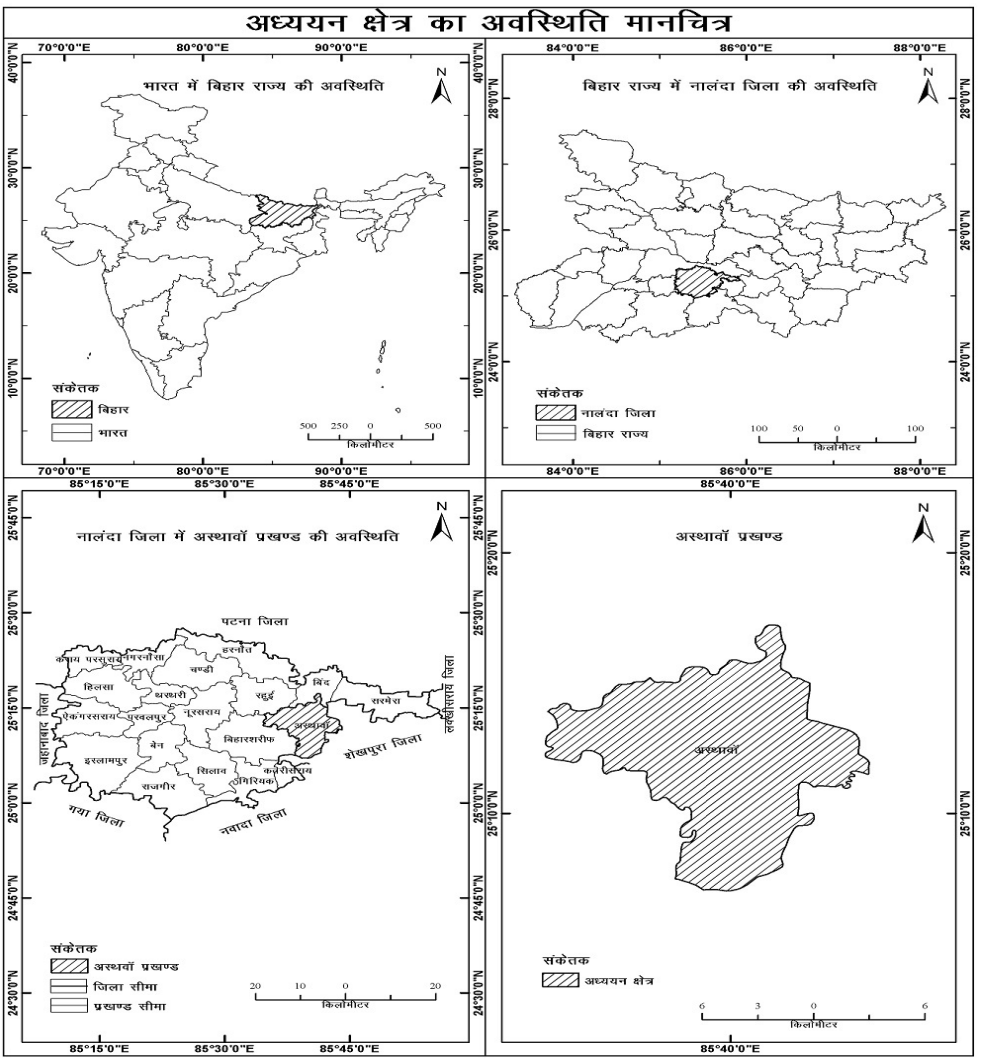

नालंदा जिला का अस्थावाँ प्रखण्ड का अवस्थित मानचित्र

अस्थावाँ प्रखण्ड के अंतर्गत निम्नलिखित 19 ग्राम पंचायतें शामिल हैं- 1. अन्दी, 2. अमावाँ, 3. अस्थावाँ, 4. ऊगावाँ, 5. ओइयाब, 6. ओन्दा, 7. कटहरी, 8. सारे, 9. कैला 10. कोनन्द, 11. गिलानी, 12. जाना, 13. जीयर, 14. डुमरावाँ, 15. नेरुत, 16. नोआवाँ, 17. मुर्गियाचक, 8. महम्मदपुर, 19. मालती।

अस्थावाँ प्रखण्ड नालन्दा जिले के पूर्वी हिस्से में स्थित है। इसके उत्तरी हिस्से में बिन्द प्रखण्ड, पूर्वी हिस्से में शेखपुरा जिले का बरबीघा प्रखण्ड, पश्चिमी हिस्से में बिहार शरीफ प्रखण्ड तथा उत्तर-पश्चिम हिस्से में रहुई प्रखण्ड अवस्थित है। इसके मध्यवर्ती हिस्से में दक्षिण से उत्तर की ओर लगभग समानांतर स्थिति में दो नदियाँ बहती हैं। पूर्वी नदी का नाम 'कुम्भरी' है तथा पश्चिमी नदी का नाम 'जिराईन' है। दोनों नदियों से सटा हुआ एक बड़ा क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है। इसे आगे अंकित चित्र में देखा जा सकता है। अस्थावाँ प्रखण्ड की जलवायु एवं मृदा कृषि की दृष्टि से काफी अनुकूल है। सिंचाई साधनों की उपलब्धता के आधार पर किसान अपने खेतों में दो-फसली और कहीं-कहीं तीन-फसली कृषि करते हैं। चावल और गेहूँ इस प्रखंड की प्रमुख फसलें हैं। इसके अलावा चना, सरसों, आलू, प्याज, मूँग, अरहर आदि फसलों की कृषि होती है। उपजाऊ एवं समतल मैदान होने के कारण इस प्रखण्ड में जंगल का सर्वथा अभाव है। कई किसान आम का बगीचा जरूर लगाए हैं। लेकिन बगीचे में दूसरे प्रकार के पेड़ों का नितांत अभाव दिखता है। बाँस के पेड़ (बँसभिट्ठी) लगभग हर गाँव में देखे जा सकते हैं। बगीचे में प्राय: मालदह आम के पेड़ लगाए जाते हैं। प्राकृतिक तालाब या पोखर इस क्षेत्र में नहीं पाए जाते हैं। मानव-निर्मित पोखरों में मछली पालन का कार्य सीमित क्षेत्र में किया जाता है। मुर्गीपालन एवं बकरी पालन का कार्य भी बड़े पैमाने पर नहीं किया जाता है। लोग व्यापारिक स्तर पर नहीं, वरन् अपनी जरूरतों की खातिर इन कार्यों में लगे हैं।

जैव विविधता हमारे प्राकृतिक पर्यावरण का अनिवार्य हिस्सा है। पर्यावरण संतुलन एवं सतत् विकास हेतु इस विविधता को बनाए रखना जरूरी है। यह तभी संभव है जब हमारे द्वारा इसका संरक्षण किया जाए।ख्2,

अध्ययन का उद्देश्य

नालन्दा जिला के अस्थावाँ प्रखण्ड से संबंधित प्रस्तुत शोध-अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इस तथ्य की जाँच करना है कि पिछले 25 वर्षों में इस क्षेत्र में कृषि जैव-विविधता में किस प्रकार का परिवर्तन आया है? यदि परिवर्तन ऋणात्मक है तो जैव-विविधता को संरक्षित करने हेतु किस प्रकार के व्यक्तिगत, सामूहिक एवं सरकारी प्रयास किया जाना जरूरी है।

परिकल्पना

पिछले 25 वर्षों में नालन्दा जिले के अस्थावाँ प्रखण्ड में कृषि जैव विविधता में व्यापक कमी आई है। कुछ क्षेत्रों में यह कभी संवेदनशील स्थिति तक पहुँच गई है।

शोध प्रविधियाँ

प्रस्तुत शोध हेतु नालन्दा जिला के अस्थावाँ प्रखण्ड के विभिन्न ग्राम पंचायतों से कुल 240 सैम्पल इकट्ठा किए गए। इस सैम्पल को इकट्ठा करने में समाज के विभिन्न वर्गों को शामिल किया गया है। सर्वे हेतु जिन लोगों का चयन किया गया, उनकी उम्र 40 से ऊपर थी जिनमें आधे पुरुष और आधी महिलाएँ थीं।

इस शोध हेतु व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से संबंधित विषय पर सूचनाओं को एकत्रित किया गया। इसके बाद इन सूचनाओं को शोध के उद्देश्य के अनुरूप साहित्य में ढाला गया।

पूर्ववर्ती अध्ययनों का विश्लेषण

प्रस्तुत विषय पर यूँ तो राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर कई शोध किए गए हैं, किन्तु प्रखण्ड स्तर

पर, विशेष कर अस्थावाँ प्रखण्ड, के संदर्भ में इस प्रकार के अध्ययन का अभाव दिखता है। इन परिस्थितियों में प्रस्तुत विषय से संबंधित साहित्य को समझने हेतु देश के अन्य राज्यों में किए गए शोध एवं उपलब्ध साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया गया है। सुन्दर एस. मेती एवं अन्य (वर्ष 2003) ने अपनी पुस्तक 'इन्डेजेनश ट्रेडिशनल नॉलेज एण्ड इथनोफार्मोकोलोजी' के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया कि भारत में किस प्रकार पारम्परिक देशज ज्ञान के माध्यम से जैव विविधताओं का संरक्षण किया जा सकता है।[3], डी.डी. हनुमन्त एवं अन्य (वर्ष 2003) ने अपनी पुस्तक 'फ्रेश वाटर क्रैब' के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया कि नदी वं अन्य जल प्लावित क्षेत्रों में किन कारणों से केकड़ों की संख्या में कमी आई है।[4] संजीत कुमार ने अपनी पुस्तक 'इनडेन्जर्ड प्लांट्स' के माध्यम से भारत में पौधों की विलुप्त हो रही प्रजातियों का जिक्र किया है।[5], आर. डिमरी महोदय ने अपने शोध आलेख 'मेडिको बायो वेल्थ ऑफ इंडिया' के माध्यम से भारत में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार की औषधीय पौधों का वर्णन किया है। इस आलेख में उन्होंने कई ऐसी प्रजातियों का वर्णन किया है जिनकी उत्पादकता में कमी आई है।[6], डॉ. रतन जोशी की पुस्तक 'जैव भूगोल एवं जैव विविधता' का अध्ययन करते हुए हमने जाना कि आदिकाल से ही हमारे पूर्वजों ने जीव मंडल के विभिन्न घटकों के मध्य उत्तम सामंजस्य बनाए रखा था, किन्तु आधुनिक मानव ने भौतिक प्रगति की दौड़ में प्राकृतिक संतुलन को छिन्न-भिन्न कर दिया है।[7],

विश्लेषण एवं परिणाम

प्रस्तुत शोध-पत्र में 250 लोगों के साक्षात्कार के बाद हमने पाया कि नालन्दा जिला के अस्थावाँ प्रखण्ड के कृषिगत जैव विविधता में काफी परिवर्तन आया है। इन परिवर्तनों का विश्लेषण कृषि के अलग-अलग रूपों के अन्तर्गत किया जा सकता है। परिचय खण्ड में हमने जाना कि कृषि के विभिन्न रूपों के अंतर्गत फसलोत्पादन के अलावा, बागीचा रोपण, मत्स्यन, डेयरी फार्मिंग, पशुपालन एवं वनरोपण आदि हैं।

फसलोत्पादन

नालंदा जिला के अस्थावाँ प्रखण्ड की प्रमुख फसलों में चावल, गेहूँ, सरसों, आलू, प्याज आदि शामिल हैं। 25 वर्षों पहले इनके अलावा मौसम के अनुसार और भी कई फसलों का उत्पादन यहाँ के किसान कर रहे थे। वर्तमान में फसलों की विविधता में काफी कमी देखी गई है। साक्षात्कार के दौरान लगभग 98% लोगों (स्त्री-पुरुष सहित) ने बताया कि 25-30 वर्ष पहले तक ग्रीष्मकाल (वर्षा ऋतु) में इस क्षेत्र में लोग चावल के अलावा और भी कई प्रकार के अनाज का उत्पादन करते थे। इन फसलों का उत्पादन उस वर्ष विशेष रूप से होता था, जिस वर्ष वर्षा की मात्रा कम होती थी, अर्थात् सूखे की स्थिति में इन वैकल्पिक फसलों का उत्पादन होता था। ये इन फसलों को प्रायः वैसे क्षेत्रों में भी लगाते थे, जो ऊँचाई पर थे, तथा वहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं थी। अधिकांश लोगों ने वैकल्पिक फसलों के अन्तर्गत निम्नलिखित फसलों का नाम लिया - चीना, कोदो, मडुआ, बाजरा आदि। अध्ययन के दौरान उक्त प्रखंड के डुमरावाँ पंचायत के एक कृषक श्री शिव कुमार जी ने बताया कि 25-30 वर्ष पहले 6 कट्ठा (18.74 डिसमिल) जमीन में 8 मन (320 किलोग्राम) मडुआ का उत्पादन होता था। वर्तमान में दो कृषकों के अलावा किसी ने मडुआ उत्पादन की बात नहीं कही। इन दो कृषकों ने भी हाल ही में अपनी छोटी-सी जमीन (2 कट्ठा) पर मडुआ का उत्पादन करना शुरू किया है। वस्तुतः ये दोनों किसान पढ़े-लिखे थे और वर्तमान में डॉक्टर के सलाह के अनुसार ये मडुआ उत्पन्न करना शुरू किए थे। चिकित्सा क्षेत्र में किए गए कई अध्ययनों एवं शोध कार्यों के उपरांत हाल के वर्षों में चिकित्सकों के द्वारा लोगों को मडुआ, चीना, कोदो, बाजरा, आदि मोटे अनाजों को खाने की सलाह दी गई है। ऐसे अनाज स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण माने जाने लगे हैं। वस्तुतः हमारे पूर्वजों ने जिन अनाजों का सेवन किया

है, हमारे जीन (gene) का उसी रूप में विकास हुआ है। अत: उन्होंने जिन भोज्य पदार्थों का सेवन किया है उनको हमारे जीन आसानी से स्वीकार करते हैं।

कृषकों ने यह बताया कि वर्तमान में अधिक चावलोत्पादन की आकांक्षा के कारण लोग चावल के परम्परागत बीजों की जगह अधिक उत्पादकता (HYV) वाले बीजों को लगा रहे हैं। वस्तुत: लोग फसलों के अधिक उत्पादन के द्वारा ज्यादा लाभ कमाना चाहते हैं। इस वजह से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा तैयार किए गए बीजों पर आश्रित हो गए हैं। पर्यावरण की दृष्टि से यह एक खतरनाक संकेत है। एक ही प्रकार के बीजों से एक ही प्रकार के फसलों का उत्पादन होता है, जो जैव विविधता को तो क्षति पहुँचाते ही हैं, फसलों के रोग-प्रतिरोधक क्षमता को भी बहुत कम कर देते हैं। चावल की निम्नलिखित किस्में अब नहीं उगाई जा रही हैं। इन किस्मों में पंकज (मोटा चावल), कमलधान, सेलहा, परवलिया, सिरहंटी, बौना मंसूरी, मोटा मंसूरी, सोना, सीता, सामा, साठी आदि प्रमुख हैं। सिरहंटी के बारे में श्री भीम यादव ने बताया कि यह लाल रंग का होता था। इसका माड़-भात खाने में बहुत स्वादिष्ट लगता था। यह चावल विटामिन से भरा था। 'साठी चावल' साठ दिन में तैयार हो जाता था। यह तब लगाया जाता था, जब वर्षा देर से होती थी। इस चावल को लगाने हेतु मोरी नहीं लगाया जाता था। चावल को खेत में छींट दिया जाता था और 60 दिन में चावल का पौधा तैयार हो जाता था।

25-30 वर्ष पहले देश के अलग-अलग क्षेत्रों में सुगंधित धान की अलग-अलग किस्में लगाई जाती थीं। स्थानीय नाम के साथ मोटे तौर पर ये सुगंधित चावल बासमती के नाम से प्रसिद्ध थीं। बिहार में भागलपुर के अमरपुर क्षेत्र में यह कतरनी के नाम से जानी जाती है। अस्थावाँ क्षेत्र में लोग जिस बासमती चावल को उगाते थे, उसका नाम 'कारीबौख' था। इसे लोग काला बासमती के नाम से जानते थे। इसमें सुगंध होता था। 80% कृषकों ने बताया कि बासमती का उत्पादन इस प्रखण्ड में बहुत कम होता है। यदि कुछ किसान अपने खाने के लिए लगाते भी हैं तो उसमें परम्परागत सुगंध का नितांत अभाव पाया जाता है। किसान इसका कारण रसायनिक खाद का प्रयोग बताते हैं। इनका मानना है कि 25-30 वर्ष पहले खेतों में रसायनिक खाद एवं कीटनाशकों का इतना प्रयोग नहीं हो रहा था। किसान खेतों को मजबूत रखने के लिए गोबर का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया करते थे। खेतों में गोबर के माध्यम से जो बासमती चावल उत्पन्न होता था उनमें सुगंध और स्वाद पाया जाता था। इसी संदर्भ में अमरपुर, भागलपुर के एक किसान श्री अनिरुद्ध कुमार से बात किया गया तो उन्होंने बताया कि उनके क्षेत्र के कतरनी चावल (बासमती चावल) के स्वाद और सुगंध में कमी आई है। इस कमी का कारण अब यहाँ की बरसाती नदियों में बाढ़ का नहीं आना है। पहले बाढ़ का पानी खेतों में फैल जाता था जिससे खेतों की उर्वरता में अत्यंत वृद्धि हो जाती थी और अत्यंत कम खाद डालकर किसान जो चावल उगाता था उसमें सुगंध और स्वाद होता था। वर्तमान में बालू के अधिक खनन से इन नदियों का पानी अपनी धारा (river-bed) में ही सिमट कर रह जाता है। वर्तमान कृषि वैज्ञानिकों के लिए अध्ययन और शोध हेतु यह बहुत ही मौजूँ विषय है।

चीना के त्पादन के बारे में श्री दिनेश महतो जी ने बताया कि 40 वर्ष पहले चीना लगभग 50% किसानों के द्वारा उत्पादित किया जाता था। एक मध्यम किसान के यहाँ करीब 70 मन चीना का उत्पादन होता था।

3 दशक पूर्व मकई की भी कई किस्में लगाई जाती थीं। इनमें तुलबुलिया मकई काफी महत्वपूर्ण था। सूखे की स्थिति में लोग इसे लगाते थे और इसका भूजा बहुत स्वादिष्ट होता था। मकई का चोकर लोग गाय को खिलाते थे। लगभग 95% कृषकों ने बताया कि तुलबुलिया मकई अब इस क्षेत्र में नहीं होता है। मकई के उत्पादन में तो वृद्धि हुई है, लेकिन अभी मकई की जो किस्में उगाई जा रही हैं, उनमें स्वाद का नितांत अभाव है।

चना के बारे में अधिकतर लोगों ने बताया कि अब बड़े आकार का संकर चना उत्पन्न किया जाता है।

पहले उगाया जाने वाला देहाती चना अब नहीं होता है। लहसुन की नई किस्में जो लगाई जा रही हैं, उनमें भी स्वाद का नितांत अभाव है। पुराना देहाती लहसुन अब नहीं मिलता है।

सब्जियों की जैव विविधता में भी काफी कमी आई है। आलू में अधिक रसायनिक उर्वरक डालने के कारण स्वाद में भारी गिरावट आई है। लोगों ने बताया कि सीम, कद्दू, साग की पहले कई किस्में उगाई जाती थीं। वर्तमान में इनकी बहुत किस्में नजर नहीं आ रही हैं। कद्दू की जो किस्म बाजार में उपलब्ध है, उसमें स्वाद की बहुत कमी है। पहले काला गाजर होता था जो अब नहीं हो रहा है। गाजर के अलावा शकरकंद, मिसरीकन्द आदि कंद-मूल भी बहुत कम उपज रहे हैं। लगभग 50 वर्ष पूर्व इस प्रखण्ड के गाँवों में तीसी का उत्पादन बड़े पैमाने पर हो रहा था। पहले सरसों का उत्पादन बहुत कम होता था। लोग पकवान बनाने हेतु तीसी के तेल का ही प्रयोग करते थे। वर्तमान शोध के बाद चिकित्सकों ने तीसी के तेल को मनुष्य के स्वास्थ्य, खासकर हृदय के लिए बहुत उपयोगी बताया है।

बगीचारोपण

प्रस्तुत शोध अध्ययन के दौरान 98% लोगों ने यह बताया कि तीन-चार दशक पहले जब बगीचा लगाया जाता था तो किसान अपने बगीचे में अलग-अलग प्रकार के फलों के वृक्ष लगाते थे। इन वृक्षों में आम के वृक्ष जरूर सर्वाधिक थे, लेकिन उस समय आम की कई प्रजातियाँ लगाई जाती थीं। वर्तमान में लगाए जा रहे बगीचों में भी आम के वृक्ष ही सर्वाधिक है। फर्क यह आ गया है कि पहले जहाँ आम की कई किस्में लगाई जाती थी वहीं आज हर बगीचे में लगभग 95% पेड़ मालदह आम के ही लगाये जा रहे हैं। वर्तमान में जामुन, कटहल, अमरूद, केला आदि फलों के पेड़ बहुत सीमित मात्रा में लगाए जा रहे हैं। केला की कई किस्में विलुप्ती के कगार पर पहुँच चुकी हैं, इनमें 'प्राइड ऑफ बिहार' कहा जाने वाला सुगंधित केला भी शामिल है। वरिष्ठ फल वैज्ञानिक डॉ. एस. के. सिंह बिहार के अत्यंत स्वादिष्ट एवं विटामिन युक्त मालभोग केले को बचाने में लगे हैं। पनामा विल्ट रोग की वजह से मालभोग केले विलुप्ती के कगार पर पहुँच गये हैं।[8] अमरूद जो पहले अस्थावाँ प्रखण्ड के हर गाँव में प्रचुर मात्रा में लगाया जाता था, बल्कि स्वतः हो जाता था, आज इसकी संख्या घटकर 20% तक रह गई है। साक्षात्कार के दौरान लगभग 80% लोगों ने बताया कि अमरूद की प्रजातियों एवं वृक्षों की संख्या में कमी आने का मुख्य कारण उसमें कीड़ा लगना है। लोगों ने बताया कि बरसात में पकने वाली अमरूद की सभी किस्में जब पकती हैं तो उसमें कीड़ा पाया जाता है। बिहार में फालसा और अंजन के पेड़ विलुप्त होने के कगार पर हैं और राज्य सरकार ने इसका कारण जानने के लिए सर्वेक्षण कराने का फैसला किया है।[9] फालसा का फल छोटा एवं खट्टा होता है। इसमें विटामिन "C" भरपूर मात्रा में पाया जाता है। खिरनी के फल भी अब न के बराबर मिलते हैं। यहाँ के लोग बड़े आकार के जामुन को 'फलेंदा' कहते हैं। फलेंदा बहुत स्वादिष्ट होता था जो अब शायद ही किसी बगीचे में मिल पायेगा। बेर के पुराने मीठे प्रकार विलुप्त हो चुके हैं।

मत्स्यन

मछली के पुराने कई प्रकार अब तालाब में नहीं पाये जाते हैं, इनमें मांगुर, गरय, सिंघी, कबई आदि प्रमुख हैं। एस. के. वर्मा ने मछली के ऊपर किये गए अपने शोध अध्ययन में बताया कि मांगुर और सिंघी जैसी स्वतः उत्पन्न होने वाली मछलियों को मानव द्वारा उत्पन्न करने की कोशिश की गई है। जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिली है। आगे उन्होंने बताया कि आंध्र प्रदेश मॉडल अपनाने की वजह से बिहार में मछलियों के कई प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी है।[10]

डेयरी फार्मिंग एवं पशुपालन

कॉम्फेड (Comfed) के अंतर्गत गाँव से दुग्ध संग्रहण हेतु जो केन्द्र स्थापित किये गए, इसने कृषकों को

दुधारू पशुओं को पालन हेतु प्रोत्साहित किया। इसमें समस्या यह आई कि कृषक अधिक दूध देने वाले गायों की प्रमुख प्रजाति जर्सी एवं फ्रीजीयन का पालन करने लगे। साक्षात्कार में हिस्सा लेने वाले किसी भी किसान के पास गाय की पुरानी देहाती नस्लें उपलब्ध नहीं थी। इस प्रकार इसे क्षेत्र में पायी जाने वाली गायों की कई पुराने नस्लें जो तुलनात्मक रूप से छोटी एवं नाटी होती थी, विलुप्त हो गई।

वनरोपण

पहले बगीचे में फलों के वृक्षों के साथ-साथ इमारती लकड़ियों के वृक्ष भी लगाये जाते थे, जिनमें शीशम, सखुआ, सागवान, अर्जुन आदि के वृक्ष महत्वपूर्ण थे। वर्तमान में गाँव के 1% लोग जो वनरोपण कर रहे हैं, वे केवल सागवान के वृक्ष लगा रहे हैं। बहुत थोड़े किसान महोगनी के वृक्ष लगा रहे हैं। अब शायद ही कोई किसान शीशम एवं सखुआ के वृक्ष लगाते हैं। इस प्रकार आगे चलकर वृक्षों की कई प्रजातियाँ भी बहुत कम संख्या में बच जाएँगे।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में अस्थावाँ प्रखण्ड के 250 लोगों से साक्षात्कार के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया कि इस प्रखण्ड की कृषि जैव विविधता में व्यापक कमी आयी है। यह कमी कृषि के विभिन्न रूपों यथा- फसलोत्पादन, बगीचारोपण, मत्स्यन, डेयरी फार्मिंग एवं वनरोपण- सभी क्षेत्रों में आयी है। फसलोत्पादन के अंतर्गत हमने पाया कि फसलों के उत्पादन में तो वृद्धि हुई है, लेकिन फसलों की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी है। वर्तमान में लोगों का मुख्य ध्यान अधिक-से-अधिक लाभ कमाने पर है। स्वाद और फसलों की विविधता को बनाए रखने में उनकी कोई रुचि नहीं है। जैव विविधता को कुप्रभावित करने में उच्च उत्पादकता वाले बीजों (HYV) का सबसे ज्यादा योगदान है। रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों के प्रयोग के कारण हमारे पारिस्थैतिक तंत्र पर बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इनकी वजह से हमारे तालाब एवं नदियों का जल भी जहरीला हो गया है। इससे वहाँ की जैव-विविधता में व्यापक कमी आई है। 25-30 वर्ष पहले बरसात के दिनों में जब धान के खेतों में जल-जमाव हो जाता था तो वहाँ 'पोठिया' नामक छोटी मछली बड़े पैमाने पर स्वत: आ जाती थी। लोग इसे पकड़कर खाते थे, जो पौष्टिकता से भरी होती थी। वर्तमान में रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग के कारण धान के खेत में पोठिया मछली का उत्पादन नहीं हो रहा है। जैव-ह्रास का यह एक प्रसिद्ध उदाहरण है।

इस प्रखंड में जैव विविधता को बचाने के लिए सरकारी प्रयास सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अलावा स्वयंसेवी संगठनों को भी मेहनत करनी होगी। पुराने बीजों को बचाने हेतु 'परम्परागत बीज बैंक' का निर्माण करना होगा ताकि जिस किसी को परम्परागत बीज से फसल उगाने की इच्छा हो वो यहाँ से बीज ले सकें। इस तथ्य को समझते हुए अनुराधा सिंह एवं अन्य लेखकों ने अपनी पुस्तक में बताया है कि जैविक कृषि गुणवत्ता वाले बीजों के उत्पादन में भी भूमिका निभाएगा।[11] जैविक कृषि केवल कागजों पर नहीं वरन् खेतों में भी साकार हो, इसके लिए किसान को न सिर्फ जागरूक करना होगा, वरन् आवश्यक सलाह भी देनी होगी। इन्हीं तथ्यों पर बल देते हुए डॉ. अरुण के. शर्मा महोदय ने अपनी पुस्तक 'जैविक कृषि' के अंतर्गत लिखा है कि 'वर्तमान में जैविक कृषि को बढ़ावा दिये जाने की जरूरत है।' यह रसायनिक उर्वरकों के ऊपर से हमारी निर्भरता को कम करती है। असल में जैविक कृषि को पारम्परिक खेती की ओर लौटने की दिशा में एक कदम के रूप में देखा जा सकता है।[12] जैविक कृषि से उत्पन्न फसलों की उत्पादकता चूँकि कम होती है। अत: बाजार में उसे ऊँची कीमतों पर बेचने की व्यवस्था सरकार को करनी होगी। इस प्रकार हम पाते हैं कि कृषि जैव विविधता को बचाने हेतु सामूहिक एवं व्यक्तिगत दोनों स्तरों पर प्रयास करने की जरूरत है।

सन्दर्भ :

1. https//:www.worldwildlife.org
2. जाट बी. सी., जैव विविधता संरक्षण, 2018, आयरिश पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ. 89
3. Sundar S. Mety and others, Indigenous Traditional Knowledge & Ethnopharmacology, 2023, APRF Publishers, Odisha, Page No.-34
4. Hanumant DD and others, 2023, Freshwater Crab, APRF Publishers, India, Page No.-38
5. Kumar Sanjeet, Endangered Plants, 2021, Intech Open, London, UK, Page-86
6. Dimiri R, & other, Medico Bio-Wealth of India, 2023, Vol.-1, P-139, APRF, Odhisa
7. जोशी, रतन, जैव भूगोल एवं जैव विविधता, 2014, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 18
8. https://www.tv9hindi.com
9. https://navbharattimes.indiatimes.com
10. https://hindi.downtoearth.org.in
11. सिंह, अनुराधा एवं अन्य, Substainable Agriculture and Bio Diversity Conservation, 2016, Pointer Publisher, Page No.-40
12. शर्मा, अरुण के., जैविक खेती, (2021), एग्रोबायोज (भारत), पृ. 156

❖❖❖

शोधालेख

वाग्गेयकार डॉ. अरविन्द कुमार के बंदिशों में अष्टनायिकाएँ : एक अवलोकन

❍ पल्लवि प्रिया[1]

❍ प्रो. (डॉ.) स्वस्ति वर्मा[2]

संक्षिप्ति :

पद-रचना (कविता) एवं गायन करने योग्य स्वर-रचना करने वाले को वाग्गेयकार कहा जाता है अर्थात् वाग्गेयकार सरस पद रचकर उसके भावार्थ के अनुकूल संवेदनशील व मनोरंजक स्वर-रचना करता है। मुजफ्फरपुर का वातावरण संगीतमय रहा है। देश के विभिन्न स्थानों से आये हुए कलावन्तों ने इसे अपना कर्मक्षेत्र बनाया और अपने नये सौन्दर्यबोध से सांगीतिक रचनाओं को रचा और प्रस्तुत किया। इस तरह मुजफ्फरपुर में वाग्गेयकारों की परंपरा बन गयी है। उसी परंपरा में आने वाले एक महत्वपूर्ण वाग्गेयकार, डॉ. अरविन्द कुमार, के रचनात्मक वैशिष्ट्य को समझने के उद्देश्य से प्रस्तुत शोधालेख की रचना की गई है।

बौद्धिकता के क्षेत्र में डॉ. अरविन्द कुमार की पहचान एक कलामर्मज्ञ और संगीतशास्त्री के रूप में रही है। एक वाग्गेयकार के रूप में भी ये अपनी शिशिष्ट उपलब्धियों के लिए जाने जाते हैं। इन्होंने शास्त्रीय-उपशास्त्रीय संगीत की शिक्षा ग्वालियर, बनारस, लखनऊ आदि घराने के गुणियों से लिया है। विभिन्न शैलियों को आत्मसात कर उनमें निहित राग को आप रंजनात्मक अंदाज में देखने की शक्ति रखते हैं। इन्होंने राग के स्वरात्मक स्वरूप से भावात्मक स्वरूप को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। डॉ. अरविन्द कुमार सांगीतिक वातावरण में सदा लीन रहने के कारण अपनी प्रस्तुति तथा प्रशिक्षण देने के क्रम में नित-नवीन बंदिशों का सृजन करते रहते हैं। उनकी बंदिशें अपने कलात्मक स्वरूप में ओत-प्रोत हैं; साथ ही नये सौन्दर्यबोध से व्यंजित भी। इन बंदिशों में राग का सम्पूर्ण व्यक्तित्व निनादित है। अत: इनके द्वारा रचित बंदिशों में अष्ट नायिकाओं के भाव को रेखांकित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसी आवश्यकता को देखते हुए यह शोधालेख सृजित किया गया।

बीज शब्द : नायिका, बंदिश, वाग्गेयकार, राग, ताल।

'राग' का अर्थ है कल्पना द्वारा संचालित स्वर रचना। संगीतज्ञ राग के स्वरूप की कल्पना कर उसका एक

---

1. *शोध-छात्रा, संगीत विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर*
2. *विभागाध्यक्ष एवं आचार्य, संगीत विभाग, एम.डी.डी.एम. कॉलेज, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर*

चित्र खींच लेता है। यह चित्र उसके मानस में स्थापित होता है। इस चित्र को वह साकार करता है–राग के स्वरों को भावाभिव्यंजित करते हुए तथा उसके अनुरूप शब्द पिरोते हुए, तभी बंदिश का जन्म होता है। इस बंदिश की अपनी खास लय भी होती है। अलग–अलग रागों की स्वरों के अनुसार उसका उठान या गठन या गुथाव होता है। संगीतज्ञ उस राग के स्वरों एवं पदों के भावों से अपने द्वारा अलग–अलग खींचे गये चित्रों की सहजता से अपने विशिष्ट कल्पना के अनुसार उसे चित्रित करता है। यह चित्रण शब्दों के संश्लिष्ट भावों को स्वरों में उतार कर श्रोताओं को भी उसी विशिष्टता की अनुभूति कराता है और तब रस की धारा सर्वत्र प्रवाहित होती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर और शब्द का मणिकांचन संयोग दृष्टिगत होता है। पद लालित्य संगीत का आधारभूत घटक है। एक कुशल वाग्गेयकार तभी सफल होता है जब उसे रागों के भावनारूप शब्दों का चयन करने, पदों का निर्माण करने, सौन्दर्य, लालित्य, भाव आदि का बोध हो और उसकी रचना श्रोताओं को स्पंदित करे। तभी वह उत्तम वाग्गेयकार कहलायेगा। एक उत्तम वाग्गेयकार शब्द–स्वर–संयोजन में राग की स्वरावली के द्वारा शब्द में निहित भावों के अनुरूप संयोजित करता है।

भारतीय संगीत में प्रत्येक राग विशिष्ट भावनाओं से सम्बन्धित माना जाता है। क्योंकि प्रत्येक राग की सृष्टि विशिष्ट स्वरों के मेल से होती है और विशिष्ट स्वरों में विशेष भावों को प्रकट करने की शक्ति निहित रहती है। जिस प्रकार वाणी के विभिन्न उच्चारणों से विभिन्न भाव प्रकट होते हैं, उसी प्रकार संगीत में भी विभिन्न स्वरों के गायन से विभिन्न भाव प्रदर्शित होते हैं। प्रत्येक राग स्वरों से भावों को व्यक्त कर विशेष वातावरण की सृष्टि करके विशेष रस की उत्पत्ति करता है। स्वरों के संयोजन, प्रयोग, संकोचन, विश्रांति, उतार–चढ़ाव, खटका–मुरकी, लपेट, कम्प, आस, शांस आदि द्वारा विशिष्ट भावों के प्रकटीकरण से विशेष रसों की उत्पत्ति होती है।

भारतीय संगीत साम–गान, स्तुति–गान, धुर्वा–गान, गीति–गान, जाति–गान, प्रबंध–गान, ध्रुपद–धमार गान से लेकर ख्याल गायन तक के विविध रूपों में विकसित हुआ है। हर काल–खंड के वाग्गेयकार उस शैली में उसके अनुरूप बंदिशों का निर्माण किया है। 18वीं शताब्दी में ख्याल शैली के प्रचार–प्रसार होने से इस शैली के अनुसार बंदिशकारों में सदारंग–अदारंग और मनरंग (भूपत खाँ) प्रसिद्ध हुए हैं। इन्हीं लोगों से ख्याल के वाग्गेयकारों की परम्परा विकसित हुई है। आगे चलकर फैय्याज हुसैन खाँ 'प्रेमपिया', जहूर खाँ 'रामदास', अमान अली खाँ 'अमर', कृष्ण नारायण रातंजनकर 'सुजान', सबरंग, दिलरंग, शोक, भावरंग, रामरंग आदि प्रसिद्ध वाग्गेयकार हुए। वर्त्तमान में भी वाग्गेयकारों की कमी नहीं है। हर क्षेत्र में वाग्गेयकारों की उपस्थिति देखी जा सकती है। इन्हीं में से एक डॉ. अरविन्द कुमार हैं, जिनका कर्मक्षेत्र मुजफ्फरपुर एवं पटना है।

भारतीय साहित्य और शास्त्र का सबसे सुललित प्रसंग 'नायिका' भेद है। नायिका उस स्त्री को कहते हैं जिसे देखने पर हृदय या मन में रसीले भावों की उत्पत्ति स्वतः होने लगती है–

रम्य नायिका पेखी, उपजे भाव सिंगार रस।।
रिझि रहे हरि देखि, तिय तन छवि सुकुमारता।।

–भानु विरचित 'काव्य प्रभाकर'

साहित्यकारों ने नायिका के निम्नलिखित लक्षण माने हैं– यौवन, रूप, गुण, शील, चातुर्य, प्रेम, कुल, भूषण, दातृत्व, कृतज्ञता, पाण्डित्य, उत्साह, तेज आदि। इनमें सबसे अधिक और शीघ्र प्रभाव डालने वाले तत्त्व हैं– यौवन एवं रूप। 'रूप–यौवन–संपन्न' नायिका ही नायक के हृदय पर अधिकार करने में समर्थ होती है, अन्य गुणों का परिचय तो उसे पीछे प्राप्त होता है। इन गुणों से जितना ही अधिक परिचय होता जाता है, उतना ही प्रेम सुदृढ़

होता जाता है। रूप की परिभाषा बड़ा कठिन है। इसका निर्णय तो नायक के दृष्टि पर ही निर्भर करता है। नायक-नायिका के हृदयगत मिलन से अकृत्रिम और स्थायी प्रेम उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सुख-दु:ख, हानि-लाभ, सम्पत्ति-विपत्ति सबमें दोनों समान रूप से भागीदार हो जाते हैं। भेद-भाव खोकर एकरूपता का उदय होता है। दोनों मिलकर समान रूप से कुल-मर्यादा का पालन करते हैं।[1]

आचार्यों ने नायिका के अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है- स्वरूप भेद से-दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य। धर्म भेद से- स्वकीया, परकीया और सामान्या। आयु भेद से-मुग्धा, मध्यमा और प्रगल्या। प्रकृति के अनुसार-उत्तमा, मध्यमा और अधमा। मानवावस्था के भेद से-धीरा, अधीरा और धीराधीरा तथा जाति भेद से-पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी और हस्तिनी आदि।[2]

कुछ प्रमुख नायिकाओं के लक्षण इस प्रकार हैं-

1. स्वकीया : लज्जाशील, सच्चरित्र और व्यवहार कुशल गुणों से युक्त। इसके तीन भेद हैं-मुग्धा, मध्यमा तथा प्रगल्या।
2. परकीया : इसका अर्थ है अन्य स्त्री। यह भी अविवाहित कन्या है, जो किसी की भी परणिता हो सकती है।
3. सामान्या: अर्थात् गणिका। यह कलाओं में निपुण और धूर्तता से भरी होती है।

परकीया और सामान्या प्रत्येक के दस-दस भेद हैं- प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिका, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यतपतिका तथा आगतपतिका।[3]

नायिका भेद का सर्वप्रथम व्याख्या भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में प्राप्त होता है। उन्होंने नायिका के अवस्थागत आठ भेद बताएं हैं।[4]

1. स्वाधीनपतिका : जिसका प्रिय समीप हो और अपने भाग्य पर प्रसन्न हो।
2. वासकसज्जा : प्रिय के आगमन से हर्षित होकर अपने को सजानेवाली।
3. विरहोत्कंठिता : प्रिय के अपराधी होने पर भी उसके पास न आने पर प्रतीक्षा करने वाली।
4. खंडिता : नायक से दूसरी स्त्री के साथ सम्बन्ध होने पर ईर्ष्या से कलुषित हो उसे ताना दे अथवा शिकायत करे।
5. कलाहान्तरिता : नायक के अपराध पर पहले क्रोधवश उसे तिरष्कृत करें और बाद में पाश्चाताप से पीड़ित हो।
6. प्रोषितप्रिया : जिसका प्रिय दूर देश में वास करे तथा वह विरह पीड़ित हो।
7. विप्रलब्धा : नायक द्वारा इंगित स्थान पर न पहुँचने पर अपने को तिरष्कृत समझ कर दु:खी होने वाली।
8. अभिसारिका : काम-वासना से पीड़ित होकर नायक के पास अभिसार करने वाली नायिका।

नायिका का सम्बन्ध संगीत से नहीं है, काव्य से है। कंठ संगीत में काव्य का प्रयोग किया जाता है। अत: काव्य में वर्णित भावात्मक पहलु संयोग, वियोग, रूठना, मनाना, शिकायत आदि का समावेश कंठ संगीत में मिलता है।

डॉ. अरविन्द कुमार द्वारा रचित बंदिशों में श्रृंगारिक भाव अर्थात्, नायिका के विभिन्न दशाओं के भाव प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। बंदिश स्वर (राग), ताल, लय और काव्य का सुगठित स्वरूप है, जिसमें गेयता की प्रधानता होती है जिसके कारण यह अधिक रसीली एवं भावात्मक स्वरूप लिए होता है। इसमें श्रृंगार की मधुर, ललित एवं कोमल भावनाओं का भाव दृष्टिगत है साथ ही नायक-नायिका के संयोग-वियोग का कलात्मक चित्रण भी है।

डॉ. कुमार के बंदिश में सुरों से श्रृंगारिक काव्यों का समन्वय होने से प्रेम रस छलकता है। श्रृंगारिक भावनाओं का प्रभाव काव्य तथा संगीत दोनों पर पड़ता है। फलत: डॉ. कुमार के अनेक बंदिशों के विषय नायिका भेदों

से सम्बन्धित दिखलाई पड़ती है। ऐसे बंदिशों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

1. स्वाधीनपतिका : इस नायिका का प्रिय उसके समीप रहता है तथा उसके प्रेम के अधीन भी। यह सौभाग्य की बात है। इससे संबंधित इनके अनेक बंदिश हैं; उदाहरणार्थ -

(i) राग मालकौस (झपताल)[5]
परत तोरे पैंया, छोड़ दे अब बैयाँ
इतनी अरज मोरी, मान जाओ सैंयाँ।
देखो हँसत हैं सब, बृज की लुगैयाँ।।

(ii) राग काफी (तीनताल)[6]
मत मारो मोहन पिचकारी रे
देखत हैं सब नर नारी रे।
काहे भये कान्हा निपट अनाड़ी
रीत प्रित कछु नहिं जानी रे।।

(iii) राग मिश्र काफी (अद्याताल)[7]
कान्हा तोहें गारी मैं दूँगी
का से खेलत मोसे होरी।
लपकी-झपकी मोसे करे बरजोरी
फाटत हैं नव सारी रे मुरारी।।

2. वासकसज्जा : प्रिय के आगमन पर अपने को सजाने वाली नायिका वासकसज्जा कहलाती है। डा. कुमार के इस पर अनेक बंदिश प्राप्त होते हैं; उदाहरणार्थ-

(i) राग केदार (तीन ताल)[8]
मंगल गाऊँ चौक पुराऊँ
प्रियतम आये मोरे मंदिरबा।
कंगना बजाऊँ, नाचूँ-गाऊँ
दीप जलाऊँ सगरो मंदिरबा।।

(ii) राग देशकार (तीन ताल)[9]
उचरत कागा मोरे अटरिया
पी की आवन की देत संदेसबा।
मन हर्षित तन उमगे जोबनमा
फरकत मोरा अंग नयनमा।।

3. विरहोत्कंठिता : प्रिय के अपराधी होने पर भी उसकी प्रतीक्षरत रहती है, उसे 'उत्कंठिका' अथवा 'विरहोत्कंठिता' कहते हैं। डॉ. कुमार के निम्न बंदिश में इस नायिका का भाव दृष्टिगत होता है-

(i) राग साँझ (तीन ताल)[10]
साँझ भई आये नाहिं श्याम

चिंता मगन बैठी बृज बाम।
जनम की दासी राधा प्यारी
बाट तकत रही आठो याम।।

(ii) राग मधुकौस (तीनताल)[11]
लगन लागी रे तो से पिहरवा
कैसे समझाऊँ अपने हिया को।
आकुल-व्याकुल तड़पत सगरो
चैन न आबत दरस पिहरवा।।

4. खंडिता : नायक के पर स्त्री प्रेम के कारण उससे रूठना, ताना देना आदि क्रियाएँ करती हैं। डॉ. कुमार की रचनाओं में सबसे अधिक इसी नायिका का चित्रण हुआ है-

(i) राग रागेश्रीकौस (तीनताल)[12]
बलमा न माने मोरी बात
कैसे कटे अब रात।
जाए बसे सौतन द्वारे
हमसे किए हैं घात।।

(ii) राग मालकौस (तीन ताल)[13]
रतियाँ डराबन लागे ऐ री माई
कारी अंधिआरी घन बिजरी चमके
जिया मोरा घबराये ऐ री माई।
सुनी सेजरिया बिरहा जराबे
किन सौतन संग कंत बिरमाये
सुध न रही घर आबन की ऐ री माई।।

5. कलहान्तरिता : नायक के गलती करने पर पहले तो क्रोधवश अपशब्द कहती है, तिरस्कार करती है बाद में उसके रूठने पर अपने व्यवहार से दु:खी हो पश्चाताप करती है। इस नायिका का चित्रण डॉ. अरविन्द कुमार के बंदिशों में हुआ है-

(ii) राग आभोगी (तीन ताल)[14]
माने न कन्हैया करत हैं रार
का करूँ आली मैं तो गई हार।
समझत नाहीं कैसे समझाऊँ
अरज करत तोसे मैं तो कर जोर।।

(ii) राग मारवा (रूपक ताल)[15]
उन बिन नाहीं बितत रैन
का से कहूँ मैं अपनी बैन।

उमगे नैना तरपे जियरा
बेगी आओ परत न चैन।।

6. प्रोषितप्रिया : इस नायिका का प्रिय उसके पास न होकर दूर देश में रहता है। इसमें विरह भाव प्रमुख है। डॉ. कुमार के बंदिशों में इस नायिका का स्वरूप दृष्टिगत है-

(i) राग बागेश्री (एक ताल)[16]
तड़प-तड़प बीत जाए
यूँ हीं सारी दिन रैना।
जब से गये परदेश
रहत जिया में अन्देश।
भेजे नाहिं कछु सन्देश
कैसे पड़े अब चैन।।

(ii) राग कलावती (तीन ताल)[17]
कल न परे ये मोरी आली
जब से देखी साँवली सूरत।
याद सताबे कछु नहिं भावे
रतियाँ बीतत तारे गिनत।।

7. विप्रलब्धा: जो नायिका अपने नायक को संकेत स्थान में न पाकर दुखी होती है उसे विप्रलब्धा नायिका कहते हैं। डॉ. अरविन्द कुमार ने इस नायिका का भावात्मक चित्रण किया है-

(ii) राग भिन्न षड्ज (झपताल)[18]
कल न पड़त मोहे, निश दिन धड़ी पल
विरहा जरावत, कुछ नहिं भावत।
नैना झरत झर तड़पत मीन जल।।

(ii) राग मालगुंजी (रूपक ताल)[19]
का से कहूँ मैं मन की बैन
उन बिन नाहिं परत न चैन।
चैन न आवे बिरहा सतावे
सुनी सेज मैंका तरसावें।।

8. अभिसारिका : नायक के पास जाने की इच्छा रखने तथा पास जाने का प्रयास करने वाल नायिका। इस इच्छा में बाधक कोई भी वस्तु उसे अच्छी नहीं लगती, जैसे-सास, ननद, पायल का बजना आदि। इस नायिका से सम्बन्धित बहुत से रचनाएँ डॉ. कुमार ने रची है-

(ii) राग मालकौस (तीन ताल)[20]
झननन बाजे मोरे बिछुवा
कैसे जाऊँ आली उनसे मिलनिया।
एक डर है मोहे सास ननद की

दूजे बैरिन काली रैना।।

(ii) राग सूर मल्लहार (झप ताल)[21]

उमड़-घुमड़ घन आय बदरा
बिजली चमकत गरजत मेहा
मैं तो अकेली विरहा की मारी
जिया डर पावे निशी अँधियारी।।

काव्य के साथ नायिका का सम्बन्ध होने के कारण बंदिशों में नायिकाओं के भाव स्वत: व्यक्त होते हैं। नायिका भेदों में भूल रूप से विरह का भाव ही चित्रित है। प्रिय के पास न होने पर तड़पना, उसे देर से आने पर चिन्ता व्यक्त करना, परदेश रहने पर विरह वेदना, परदेशी को सन्देश भेजना, प्रिय के आने की खबर से प्रसन्न होना, सजना-संवरना, रूठना-मनाना आदि दशाओं से सम्बन्धित बंदिश डॉ. अरविन्द कुमार ने रची है।

सन्दर्भ :

1. दधिची, डॉ. पुरु, कथक नृत्य शिक्षा, द्वितीय भाग, बिन्दु प्रकाशन, इंदौर, पंचम संस्करण, 2013, पृ. 224.
2. नैहरंग, प्रदीप कुमार दीक्षित, सरस' संगीत, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, द्वतीय संस्करण, 2005, पृ. 30.
3. वही, पृ.-31.
4. जैन, श्रीमती विजयलक्ष्मी, संगीत-दर्शन, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण-2002, पृ. 77.
5. कुमार डॉ. अरविन्द, वाग्गेयकारों के रंग मुजफ्फरपुर के संग, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण, 2020, पृ. 100
6. वही, पृ. 107
7. कुमार डॉ. अरविन्द, कृतिका, अभिधा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2024, पृ. 71.
8. कुमार अरविन्द के संग्रह से।
9. वहीं से।
10. संगीत, अप्रैल 2020, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ. 11
11. कुमार डॉ. अरविन्द, कृतिका, अभिधा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2024, पृ. 70.
12. कुमार डॉ. अरविन्द, वाग्गेयकारों के संग मुजफ्फरपुर के रंग, प्रथम संस्करण, 2020, पृ. 91.
13. वही, पृ. 103.
14. कुमार डॉ. अरविन्द, कृतिका, पृ. 69.
15. कुमार डॉ. अरविन्द, वाग्गेयकारों के रंग मुजफ्फरपुर के संग, पृ. 104.
16. वही, पृ. 92.
17. वही, पृ. 106
18. वही, पृ. 109.
19. वही, पृ. 94.
20 वही, पृ. 104.
21. संगीत, अक्टूबर-1997, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ. 12

❑❑❑

शोधालेख

बज्जिकांचल के लोक वाद्य : एक अध्ययन

❍ राम ललित कुमार[1]
❍ प्रो. (डॉ.) स्वस्ति वर्मा[2]

संक्षिप्ति

प्राचीन काल से ही बज्जिका का क्षेत्र समृद्ध तथा सांस्कृतिक परिदृश्य को समेटे हुए यहाँ की लोक-कलाओं को विकासमान बनाए हुए हैं। इस भू-भाग की अपनी सांस्कृतिक पहचान है जो कभी मिथिला अथवा भोजपुरी भाषी अपना बताते आए हैं। यहाँ के निजी वैशिष्ट्यों पर अब तक विद्वानों की गहरी दृष्टि नहीं गई है, लेकिन विगत कुछ दशकों से अध्येताओं एवं विद्वतजनों ने यहाँ की समृद्ध लोक-कलाओं को प्रखरता प्रदान करने की दिशा में काफी ध्यान दिया है।

भोजपुरी और मिथिला के बीच में स्थित यह क्षेत्र सदियों से अपने लोक-वैशिष्ट्यों के समक्ष परंपरा को जीवंत बनाए हुए है। यहाँ के भित्ति-चित्र, लोक-संगीत, काव्य-शिल्प, सुजनी-शिल्प, मूर्तिकला आदि की अपनी अलग पहचान है। इन लोक कलाओं के विशेषताओं को रेखांकित करते हुए अभी तक कोई गहन शोधपूर्ण कार्य मेरे देखने में नहीं आया है। यहाँ की लोककलाएँ बाजारवाद और भूमंडलीकरण के दौर में अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। अत: वर्तमान परिदृश्य में यहाँ की लोक-वाद्यों को बचाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसी को दृष्टिगत कर इस आलेख को पूर्ण किया गया है।

बीज शब्द : लोक, वाद्य, तत्, सुषिर, अवनद्य, धन आदि।

बज्जिकांचल की भाषा बज्जिका है। इस शब्द के सर्वप्रथम प्रयोगकर्त्ता पं. राहुल सांकृत्यायन हैं। पं. राहुल सांकृत्यायन ने सर्वप्रथम बज्जिका भाषा की स्वतंत्र सत्ता की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने बज्जिका शब्द का प्रयोग उत्तर बिहार के उस क्षेत्र के लिए किया जो प्राचीनकाल में 'वज्जी' जनपद के नाम से पुकारा जाता था। बुद्ध के समय यह 'वज्जी' गणतंत्र उत्तरी भारत की पाँच प्रधान राजशक्तियों- अवन्ती, वत्य, कोसल, मगध और वज्जी में से एक था। इस गणराज्य की राजधानी वैशाली थी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'पुरातत्व निबंधावली' में प्राचीन वैशाली की ऐतिहासिक गरिमा पर विचार किया है। इनके

1. शोधार्थी, संगीत विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
2. विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एम.डी.डी.एम कॉलेज, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

आधार पर इतना कहा जा सकता है कि बज्जिका भाषा-भाषी संपूर्ण मुजफ्फरपुर जिला, वैशाली, सीतामढ़ी, शिवहर जिलों के अतिरिक्त पूर्वी चम्पारण, समस्तीपुर और दरभंगा के पश्चिमी भाग तथा गंडकी नदी के दाहिने तट पर निवास करते हैं।[1]

बज्जिकांचल में लोक संगीत की धारा सतत् प्रवाहित है। इसमें माटी की सोंधी महक है, बुद्धि-विलास का दिग्दर्शन नहीं होता। इसमें दिमाग नहीं बोलता बल्कि दिल की पुकार हुआ करती है। इसमें समग्र जीवन का जीवंत चित्र मिलता है। ये भावपूर्ण अमृत कलश है। गार्हस्थ्य जीवन का हास-उल्लास, हर्ष-विषाद और सुनहरे सपनों का विस्तृत आकाश इन गीतों में समाहित है। इन्हीं से जीवन को गति एवं ऊर्जा मिलती है, जिसके माध्यम से मानव एक नये रचना संसार की नींव रखता है।

लोकगीतों की कई विधाएँ हैं, तदनुसार कई प्रयोजन भी। वस्तुतः वे लोक जीवन के अंग हैं। केवल मनोरंजन या वैचारिक मन्थन ही उनका लक्ष्य नहीं, बल्कि उनका मूल प्रयोजन तो मानव मात्र के जीवन से जुड़ा हुआ है; चाहे वह संस्कारों के रूप में हो, मांगलिक ऋतुओं-व्रतों के रूप में हों, नृत्य और रस के रूप में हो अथवा जाति या श्रमगीतों के रूप में हो; उनकी लय किसी न किसी के साथ अवश्य मिलती है। संस्कार गीतों में जातीय चेतना और पारिवारिक स्नेह-वितान की आश्वस्तता रहती है तो श्रमगीतों में मानव नियति की करुणा होती है। ऋतुगीत में उल्लास का ज्वार उमड़ता है तो धार्मिक गीतों में चौतन्य शक्ति और भक्ति की अनुभूति होती है। ये कहने के लिए विभिन्न वर्ण्य विषय हैं, किन्तु कभी-कभी ये संश्लिष्ट होकर एक दूसरे के पर्याय बन जाते हैं।[2]

लोकगीत की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। संभवतः सृष्टि के आरंभ से ही इसकी परंपरा रही है। इस परम्परा के बीज विश्व के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद में दिखाई पड़ता है। जैसे-जैसे मानव सुसंस्कृत होता गया वैसे-वैसे लोकगीत भी अपने आप को विकासमान बनाए रखा। यह गीत मानव के भीतरी सौन्दर्य को उजागर करता है। मानव के क्षण-क्षण के भाव इन गीतों में अभिव्यक्त होते हैं।

लोकगीतों में यह देखा जाता है कि कोई वाद्य नहीं बजता लेकिन कुछ लोकगीतों में प्रचुर मात्रा में वाद्यों का प्रयोग किया जाता है; जैसे-कीर्तन, भूतखेली, भगतई आदि। इसमें प्रयुक्त वाद्य उनके गीतों के अनुरूप ही होते हैं, जिनका कार्य मुख्य रूप से लय देना और गीतों में प्रयुक्त धुनों को उजागर करना होता है। लोकवाद्य लोकसंगीत को आकार देकर उसे एक सौन्दर्यात्मक आयाम भी प्रदान करता है। हमारे शास्त्रकारों ने चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया है- '1. तत, 2. अनवद्ध, 3. सुषिर और 4. घन।'[3]

आधुनिक युग में इलेक्ट्रॉनिक वाद्ययंत्रों का भी प्रचलन हो गया है। नारदीय शिक्षा में कहा गया है कि संगीतात्मक ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शरीरज होती है। वीणा आदि वाद्य नखज है, वंशी आदि वायुज है, मृदुंग आदि वाद्य चर्मज है, ताल, मंजीरा आदि वाद्य लोहज है तथा कंठ ध्वनि शरीरज है। इन पाँच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करनेवाले वाद्यों को 'पंचमहावाद्यानि' कहा गया है। इसमें से एक ईश्वर द्वारा निर्मित है, जो नैसर्गिक है तथा चार प्रकार के वाद्य मानव-विरचित हैं।[4]

जब हम बज्जिकांचल के लोक संगीत में प्रयुक्त वाद्यों का अवलोकन करते हैं तो उपर्युक्त वर्णित चारों प्रकार के वाद्य दिखाई पड़ते हैं। स्वरों का अवतारणा होती है। सुषिर वाद्य में हवा के झोकों द्वारा स्वरों का प्रकटीकरण किया जाता है। अवनद्ध वाद्य मुख्य रूप से ताल वाद्य है जो चमड़े से मढ़ा रहता है। धन वाद्य भी तालात्मकता देने के लिए ही प्रयुक्त होता है जिसमें धातु टकराने से ध्वनि उत्पन्न होती है।

1. तत् वाद्यः

बज्जिकांचल में तत् वाद्य के रूप में एकतारा, तुनतुना, सारंगी आदि का प्रयोग होता है।

(क) एकतारा : एकतारा वाद्य यंत्र को ब्राह्मी और कुछ लोग एकतारा को तुंबुरे का ही प्राचीन रूप मानते हैं। इस वाद्य को कोण या मिजराव के बजाय हाथ की ऊँगलियों से छेड़ने के कारण 'दा' बोल की प्रधानता रहती है। लगभग 90 सेंटीमीटर लंबे तथा 15 सेंटीमीटर की परिधि वाले एक बांस के एक सिरे पर लगभग 5 सेंटीमीटर दूरी में तार फंसाकर बांधा जाता है। दूसरी ओर से 60 सेंटीमीटर व्यास के तुंबे में दोनो ओर दंड की परिधि के नाप के आर-पार छेद बनाकर दंड को तुम्बे के दूसरी ओर आगे निकाल कर तुंबे में सेट कर दिया जाता है। इसके बाद तुम्बे में चिपकने वाला माशाला लगाकर दंड में अच्छे से जोड़ दिया जाता है। तुम्बे के करीब 52 सेंटीमीटर की परिधि की गोलाई को मढ़कर चारो ओर से किलों से जड़ दिया जाता हैं खाल मढ़ी तबली के मध्य भाग पर ब्रिज लगा कर तुम्बे से बाहर निकले शेष भाग में खुंटी से लपेटे तार को खींच कर बांध दिया जाता है। यह वाद्य यंत्रा खासतौर पर भक्ति-संगीत में साधु-संतों के द्वारा भजन-कीर्तन में बजाया जाता है। इसका वादन कंधे पर रख कर एक हाथ से होता है। इस वाद्य का प्रयोग भिक्षुकों के द्वारा भी किया जाता है।

(ख) तुनतुना : इस वाद्य का प्रयोग मुख्य रूप से भजन गाने वाली मंडली करती है। कुछ जगहों पर तुनतुना को एकतारा के नाम से ही जाना जाता है। इसमें लकड़ी के काठ में चमड़े की झिल्ली मढ़ी होती है और बाहर की ओर बटन से तार फंसा कर भीतर की ओर से निकाल लिया जाता है। इस काठ के बाहरी भाग में एक बांस का दंड लगा दिया जाता है जिसके ऊपर के भाग पर खुंटी लगी होती है। तार को अपने मन अनुसार किसी स्वर में मिला लिया जाता है। इसके दंड को दाहिने हाथ की मूठ से पकड़कर दाहिने हाथ की तर्जनी ऊँगली से बजाई जाती है। एकतार वाद्य के जैसे ही तुनतुना का भी वादन होता है।

(ग) सारंगी : इस वाद्य यंत्र का प्रयोग मुख्य रूप से जोगिया साधु करते हैं जो इसको बजा कर राजा-भरथरी या गोरखनाथ के प्रसंगों को गाते हुए भिक्षा मांगते हैं। ये गोरखपंथी साधु होते हैं जिन्हें 'गुडरिया बाबा' भी कहा जाता है।

यह वाद्य कमानी अथवा गज से बजाई जाती है। इस वाद्य में तारों पर गज से प्रहार कर स्वर की अवतारणा की जाती है। इसकी बनावट को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। सामने से डमरू के आकार जैसा प्रतीत होने वाला खाल या चमड़े से मढ़ा तीस सेंटीमीटर लंबा अधोभाग मन्धान कहलाता है। शेष तीस सेंटीमीटर लंबे ऊपरी भाग को छाती कहते हैं। सबसे ऊपर आयताकार अथवा चौकोर भाग को सिर अथवा मगज नाम से जाना जाता था। मन्धान के मध्य में घुरचें लगायी जाती हैं। खूंटी से बंधे तारों को धुरच पर फंसा कर नीचे तार गहन में बांध दिया जाता है। फिर खूंटियों की सहायता से इन तारों को कसते हैं और अपेक्षित स्वर में मिलाया जाता है। सिर तथा मगज में लगी खूटियों में लपेटे मुख्य चार तार तांत के होते हैं। बांयी ओर की दो खूंटियों से लगाए गये जोड़ के नं. 2 की तातें एक जैसी मोटी होती है। तीसरे नं की तांत नं. 1 तथा दो तांत से सवाई गुनी मोटी होती है तथा नं. 4 की तांत नं. 1 जैसी मोटी होती है। सारंगी वादकों ने तांत के मुख्य तारों की मोटाई का अनुपात हिस्सों के नाप से दिया है अर्थात् नं. 1 तथा नं. 2 की ताल 18 हिस्सा, 3 नं. की ताल बाइस हिस्सा तथा 4 नं. की तांत अट्ठारह हिस्सा। आजकल कुछ गुणीजन तांत के स्थान पर नायलन के विशेष तारों का प्रयोग करने लगे हैं। कुछ कलाकार एक दो तार अथवा मुख्य बाज का तार स्टील का लगाने लगे हैं।

2. सुषिर वाद्य :

यह ध्वनि के प्रकार से उत्पन्न होने वाला स्वर-वाद्य है। इस वाद्य में बाँसुरी, पुंगी, सींधा, शहनाई, शंख आदि बज्जिकांचल में प्रचलित हैं।

(क) बाँसुरी : यह वाद्य इस क्षेत्र में सबसे प्रचलित लोक वाद्य है जो बाँस या नरकट से बनाया जाता

है। यह प्राचीन सुषिर वाद्य है जिसे भगवान कृष्ण ने अपने अधरों से लगा कर अमरत्व प्रदान कर दिया। इस वाद्य में छह सूराख होते हैं जिसके खोलने और बंद करने से विभिन्न स्वर बजते हैं। इस वाद्य को मुँह द्वारा फूँककर ध्वनि की अवतारणा की जाती है।

(ख) सिंगी : सिंगी, सींग या शृंग यह तीनों नामों से जाना जाता है। यह वाद्य हरिन या भैंसे के सींग या धातु का बना होता है। कंठ से उत्पन्न ध्वनि को दबाकर वायु के सहारे से सिंगी द्वारा वादन करने पर तीन-चार स्वर निकलते हैं। लोक जीवन में सिंगी वादन के द्वारा अलग-अलग अवसरों पर इच्छित प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। युद्ध के समय इसे रण-सिंगा भी कहा जाता है। मांगलिक कार्य के अवसर पर भी इस वाद्य को बजाया जाता है।

(ग) शंख : यह प्राचीन वाद्य है। यह वाद्य प्रकृति ने ही मानवों को दिया है। यह वाद्य यंत्र सागर-तल में रहने वाले जीव का ढांचा है। शंख का प्रयोग मुख्यत: मंदिरों में पूजा के समय किया जाता है। प्राचीन समय में युद्ध के अवसर पर शंखनाद के द्वारा युद्ध की शुरुआत होती थी। यह वाद्य का पेट बारह अंगुल का होता है। हवा फूँककर शंख का वादन किया जाता है। इसमें वायु के दबाव और होठों की गति से एक ही स्वर में ऊँचा-नीचा कर के प्रसारित किया जाता है। कुछ लोग अपनी कुशलता से इसमें विभिन्न स्वर बजा देते हैं। शंख, अनेकों आकार के होते हैं इसमें सभी वादन के योग्य नहीं होते।

(घ) पुंगी : यह शहनाई वाद्य का छोटा रूप है जिसमें तीन छेद होते हैं। मुँह से फूँककर इन छिद्रों की सहायता से लोक धूनों की अवतारणा की जाती है। यह शादी-व्याह के अवसरों पर बजाए जाने वाले वाद्यवृंदों में मुख्य वाद्य है।

(ड.) शहनाई : शादी-व्याह के अवसर पर बजने वाले 'रसनचौकी' वाद्य वृंद का मुख्य वाद्य है। आजकल यह वाद्य शास्त्रीय मंचों पर प्रमुखता के साथ बजाई जाती है।

(च) पपही : मुख्य रूप से इस वाद्य को चरवाहा लोग बजाते हैं। गाय या भैंस को चराते समय मुख्य रूप से इसे बजाया जाता है। तार के पत्ते से इस वाद्य को बनाते हैं। मुँह से हवा देकर इस वाद्य से स्वरों की अवतारणा की जाती है। बहुत से लोग केला के पत्ते को गोलाकार और आगे चिपटा कर इस वाद्य को बजाते हैं।

3. अवनद्ध वाद्य :

इस वर्ग के वाद्य मुख्य रूप से ताल देने का कार्य करते हैं। इस वर्ग के खुरदक, मानर, डफ, ढोल, नगारा, डमरू आदि वाद्य इस क्षेत्र में प्रचलित रहे हैं।

(क) ढोलक : यह सबसे लोकप्रिय अवनद्ध वाद्य है जो लकड़ी से बनती है जिसमें दोनों ओर चमड़ा मढ़ा रहता है। दोनों चमड़े को डोरी से कसा जाता है जिसमें अंगुठी भी लगी रहती है। बाएँ भाग के चमड़े के अंदर 'गद' लगाई जाती है। इसे दोनों हाथों के प्रहार द्वारा बजाई जाती है।

(ख) मानर : यह वाद्य भी लकड़ी के पोला कर दोनों तरफ चमड़ा से मढ़ कर बनाई जाती है। दोनों तरफ चमड़े पर स्याही लगाते हैं। चमड़े के दोनों सिरा को डोरी से कसते हैं जिसमें लकड़ी का गुटका भी लगा होता है। यह वाद्य मुख्य रूप से भगतई गान के साथ बजाई जाती है।

(ग) खुरदक : यह वाद्य पुंगी वादन के साथ संगत वाद्य के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका उभरा हुआ भाग मिट्टी का बना होता है जो अर्द्धचंद्रमा के समान दिखता है। इसके ऊपर चमड़ा मढ़ा जाता है जो डोरी के द्वारा कसा रहता है। इसे दो दंड से प्रहार कर बजाया जाता है। बजाने से पहले चमड़े को आग से सेंका जाता है जिससे चमड़े में कसाव आ जाता है।

(घ) दो पल्ली : यह रसनचौकी वाद्य वृंद में शहनाई के साथ बजाई जाने वाली वाद्य है। इसमें खुरदक के समान ही दो आकृति होती है जिसे दायां-बायां कहते हैं। इसे हाथ से प्रहार कर बजाई जाती है। यह वाद्य शनाई के साथ शास्त्रीय मंचों पर भी शोभायमान होती है।

(ड़) डफ : यह 'होरी' का मुख्य वाद्य है लो लकड़ी के गोल, चौकोड़ घेरा के आवृत्त में चमड़ा मढ़कर बनाई जाती है। लकड़ी के किलों द्वारा चमड़ों को घेरा में कसा जाता है। इस वाद्य को भी समय-समय पर आग से गर्म करके कसा जाता है।

(च) डमरू : यह छोटे आकार का वाद्य वृंद है जो लकड़ी पर चमड़े से दोनों ओर मढ़ा होता है। इसके बीच का भाग पतला होता है और बीच में ही डोरियाँ बंधी होती है। जिसके सिरे पर मोम की गोलियाँ बनी होती है। हाथ में पकड़कर हिलाने पर दोनों ओर की गोलियाँ दोनों सिरों के चमड़े पर पड़ती है और उससे ध्वनि निकलता है। इसे शिव का वाद्य माना जाता है।

4. घन वाद्य :

इस वर्ग के वाद्य बज्जिकांचल में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जिनमें प्रमुख हैं-करताल, झांझ, घंटा-घड़ियाल, घुंघरू, चिमटा, झाल इत्यादि।

(क) करताल : यह वाद्य मुख्य रूप से कीर्तन या भजन करते समय बजाई जाती है। दो चतुर्भुज आकार के लकड़ी के टुकड़े जिसमें झनझनाहट करने वाले लटकन लगे रहते हैं। इसका एक भाग चारों ऊँगलियों में और दूसरा भाग अंगूठे में पहना जाता है तथा दोनों को आपस में टकरा कर बजाया जाता है। इसके विभिन्न रूप होते हैं। वर्तमान में लकड़ी के जगह पर धतु से बना करताल भी प्रयोग में आ गया है।

(ख) झांझ : यह करता के समक्ष ही वाद्य यंत्र है। यह वाद्य दो बड़े चक्राकार चपटे टुकड़े जिसके मध्य भाग में छोटा सा गड्ढ़ा रहता है, से आपस में टकरा कर बजाए जाते हैं। इसमें झनझनाहट भरी ध्वनि उत्पन्न होती है। इसे मुख्यत: ताशा और बढ़े ढोल के साथ बजाया जाता है। झांझ के मध्य भाग में डोरी की बनी मूठ होती है जिसे बजाते समय मुट्ठी में पकड़ जाता है। यह वाद्य मुख्य रूप से भजन-कीर्तन में बजाई जाती है।

(ग) मंजीरा : यह मुख्य रूप से भक्ति संगीत में बजाई जाने वाली वाद्य है जो धातु से निर्मित प्याली आकार का वाद्य यंत्र है। दो प्यालियों के बीच में डोरी लगी होती है। इसी डोरी को पकड़ के दोनों को एक साथ प्रहार करके या टकराने से ध्वनि की उत्पत्ति होती है।

(घ) घंटा-घड़ियाल : यह मुख्यत: मंदिरों से आरती के समय बजाई जाने वाली वाद्य यंत्र है। घड़ियाल धातु से निर्मित मोटी थाली की आकार की चक्रदार होती है जिसे लकड़ी के हथौड़ा से प्रहार कर बजाई जाती है।

(ड़) झाल : कीर्तन परंपरा एवं लोकगीतों में प्रमुख रूप से इस वाद्य का प्रयोग होता है। इसे दो समान धातु के विशेष आकृति के बने हुए तस्तरी के बीच में डोरी लगा के बनाई जाती है। दोनों भागों को एक साथ टकराने से इसमें ध्वनि उत्पन्न होती है।

(च) घुंघरू : इसका भी प्रयोग इस क्षेत्र में विशेष रूप से देखा जा सकता है। यह धातु से निर्मित होता है। जिसके भीतर धातु का ही छोटा गोली डाला रहता है। इसको हिलाने-डुलाने से ध्वनि की उत्पत्ति होती है। एक साथ कई घुंघरूओं को डोरी से बांध कर इसे बनाया जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बज्जिकांचल में लोक वाद्यों की विशाल भेद प्रचलन में है जो वर्तमान भौतिकवादी युगों में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। इस क्षेत्र के लोक वाद्य वादक स्वांत:सुखाय के लिए इन वाद्यों को बजाते हैं। गाँव के चौपालों पर, घर के दरबाजे पर, समूह में, भजन-कीर्तन करते समय अथवा

भुईयां बाबा, अमरसिंह बाबा, कारिख बाबा की भगतई करते समय उपर्युक्त वाद्यों को देखा जा सकता है।

लोकगीत मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा गाई जाती है और वे ही इसका संरक्षिका भी हैं। लेकिन इनके गीतों के साथ कोई भी वाद्य नहीं बजता। कहीं-कहीं छोटी ढोलकी से ताल देते हुए देखा जा सकता है। इस क्षेत्र की महिलाओं के द्वारा प्रस्तुत गीतों की लयात्मकता इतनी गरी हुई होती है कि ताल वाद्य बजाना किसी विद्वान के द्वारा संभव नहीं है। यह भी कारण हो सकता है कि इनकी गायकी के साथ ताल वाद्य प्रयुक्त नहीं होता लेकिन ताल आवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

वर्तमान में 'हारमोनियम' का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि इसे भी यहाँ लोक वाद्य के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं। धीरे-धीरे 'बैंजू' वाद्य भी लोक स्वरूप ग्रहण करने लगा है। कहीं-कहीं भजन-कीर्तन में इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों का चलन दिखाई पड़ने लगा है। अतः आवश्यक है कि अपने परंपरागत लोक वाद्यों का संरक्षण किया जाय जिससे इस वाद्य को इस क्षेत्र से भावनात्मक जुड़ाव बना रहे। यह परंपरागत लोक वाद्य ही यहाँ की संस्कृति को सुरक्षित रखने में सहायक है। बदलाव तो शास्वत है इसलिए बदलाव तो आएगा ही। जरूरत है इलेक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्रों के 'टोनल क्वालिटी' को लोकात्मक ध्वनि में रूपांतर करने की ताकि यह हमारे सौन्दर्य भाव को उजागर कर सके।

संदर्भ :

1. सुधांशु, डॉ. श्रीनिवास, बज्जिका संस्कृति तथा संस्कार-गीत, प्रथम संस्करण-2017, सारस्वत प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, पृ. 1
2. जैन, डॉ. शान्ति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 2019, शाश्वत स्वर, पृ. xii
3. 'सुजान' श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर, संगीत परिभाषा, विवेचनन, आचार्य एस.एन. रातंजनकर फाउण्डेशन मुंबई, प्रथम संस्करण 2000, पृ. 124.
4. मिश्र, डॉ. लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, चौथा संस्करण 2011, पृ. 41

❖❖❖

शोधालेख

भारतीय संगीत जगत को पूर्वांचल की देन

- प्रेमरंजन सिंह[1]
- प्रो. (डॉ.) जयकांत सिंह[2]

संक्षिप्ति :

पूर्वांचल का भौगोलिक परिक्षेत्र की सीमा अयोध्या से लेकर सदानीरा (गण्डक), उत्तर में बुटवल की शिवालिक श्रेणियों से लेकर दक्षिण में स्यन्दिका सरिता तक का विवरण प्राचीन वाङ्मय में विवेचित है। आधुनिक पूर्वांचल की सीमा पूर्वी उत्तर प्रदेश के लगभग अष्टादश जनपदों के साथ बिहार के भोजपुरी भाषी क्षेत्र सम्मिलित हैं। यद्यपि अभी हम पूर्वांचल परिक्षेत्र, भूक्षेत्र को राजनीतिक रूप से मान्यता प्राप्त नहीं हुआ तथापि सांस्कृतिक दृष्टि से लोक जीवन में पूर्वांचल का प्रयोग किया जा रहा है।

संस्कृति के अनेक विधि क्षेत्रों-वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला के साथ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी के जो संवृद्धि पूर्वांचल ने प्रदान किया है वह अप्रतिम एवं अद्वितीय है। आधुनिक भोजपुरी भाषा ने सम्पूर्ण विश्व को उन्मथित कर दिया है। भारतीय राष्ट्रभाषाओं की आठवीं अनुसूची में भोजपुरी को प्रतिष्ठित करने की माँग बढ़ती जा रही है। पूर्वांचल की इस मिठास ने सम्पूर्ण वाणी व्यवहार को परिवर्तित कर दिया है।

पूर्वांचल में मुख्य रूप से भोजपुरी एवं उससे मिलती-जुलती भाषा बोली जाती है। इस क्षेत्र की संस्कृति प्राचीन काल से ही समृद्ध रही है। यहाँ लौकिक एवं वैदिक परम्पराएँ साथ-साथ प्रवाहित होती हैं। संगीत कला की दृष्टि से यह क्षेत्र काफी समृद्ध है। यहाँ लोक-संगीत की परम्पराएँ सदियों से सतत विकासमान रही है। इसी लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत की धारा पल्लवित एवं पुष्पित हुई है। ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी, पूर्वी आदि शैलियाँ यहीं की मिट्टी की उपज हैं। कत्थक नृत्य एवं सारंगी वाद्य मुख्य रूप से इसी क्षेत्र की देन है। यहाँ तक कि तबला की पूरबी बाज को विकसित करने का श्रेय भी इसी क्षेत्र को जाता है। अतः इस क्षेत्र के अवदान को रेखांकित करना ही इस शोध-आलेख का मुख्य ध्येय है।

बीज शब्द : ठुमरी, दादरा, चौती, कजरी, पूर्वी इत्यादि।

संगीत प्रकृति की आत्मा है। प्रकृति में अनहद संगीत चलता रहता है। झरणों की झर-झर, नदियों की कल-कल, पक्षियों की चहचहाहट, भ्रमरों की गुनगुनाहट आदि में संगीत निरन्तर गुंजायमान है।[1] प्रारंभ में शायद मानव को इसी प्रकृतिजन्य संगीत में अभिरुचि होने से संगीत में उत्कण्ठा उत्पन्न हुई होगी, जो अभिराम गतिशील

1. शोध-छात्र, भोजुपरी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

2. विभागाध्यक्ष, भोजपुरी विभाग, लंगट सिंह कॉलेज, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

एवं जीवंत है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ जिस प्रकार विविध ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुई, उसी प्रकार संगीत भी उत्पन्न होता रहा है। भारतीय संगीत, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अपरिहार्य अंग के रूप में उल्लेखनीय है। भारतीय संगीत का इतिहास अति प्राचीन है, क्योंकि विश्व के अन्य देशों को जब लोक संगीत का साधरण ज्ञान तक नहीं था तब इस देश में संगीत कला का पूर्ण विकास हो चुका था।[2]

पूर्वांचल में जीवन का कोई भी अवसर ऐसा नहीं होता जब कोई गीत न गाया जाता हो। चाहे जन्म हो, विवाह हो, कोई मांगलिक अवसर हो या कोई पर्व-त्योहार हो, कोई न कोई गीत अवश्य गाया जाता है। यहाँ तक कि मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाये जाते हैं। लोक संगीत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सम्भवत: सृष्टि के आरम्भ से ही इसकी परम्परा रही है। लोकगीतों का बीज हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में दृष्टिगत होता है।[3]

पूर्वांचल के जब लोकगीतों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें संस्कार गीत, ऋतु गीत, जाति गीत, श्रम गीत आदि के विपुल भंडार दिखाई दिखाई पड़ता है। संस्कार गीत के अन्तर्गत सोहर, खेलवना, मुंडन, उपनयन, विवाह और मृत्यु गीत हैं। बच्चे के जन्म पर जहाँ सोहर गायी जाती है वहीं खेलवना गीत भी प्रस्तुत किया जाता है। जब बच्चा तीन या पाँच साल का होता है तो उसका मुंडन संस्कार किया जाता है। इस अवसर पर भी यहाँ गीत गाने की प्रथा रही है। कुछ जातियों में उपनयन की परम्परा है, यह परम्परा प्राचीन काल में बच्चे को गुरुकुल में भेजने से पहले किया जाता रहा है। इसी का अवशेष वर्तमान में भी दिखाई पड़ती है। उपनयन में बहुत से विधि विधान निहित है। प्रत्येक विधि विधान के लिए अलग-अलग गीत गाये जाते हैं। विवाह संस्कार प्रत्येक समाज में अनिवार्य है। इस संस्कार के विविध विधि-व्यवहार में गीत प्रमुख अंग है। इन गीतों में कहीं हास-परिहास है तो कहीं दुखांत पीड़ा भी। इस संस्कार के गीतों में फलदान, तिलक, द्वार छेकाई, सोहर, जोग, कन्यादान, सिन्दुरदान, लावा छिटाई आदि के साथ विदाई गीत भी प्रमुख है। मानव की अंतिम यात्रा में भी यहाँ गीत गाये जाते हैं ताकि अगला जन्म उनका सुखमय और आनंददायक हो।

पूर्वांचल में सालों भर पर्व-त्योहार मनाया जाता है। इन पर्व-त्योहारों का मुख्य आकर्षण गीत-संगीत ही है। प्रत्येक पर्व का अपना गीत होता है। जिसमें उस पर्व से संबंधित भावों को दर्शाया जाता है। यहाँ की विविध जातियों के गीत द्रष्टव्य हैं; जैसे- अहीरों का विरहा, दुसादों का पचरा, मल्लाहों के घाटो आदि। यह क्षेत्र कृषि प्रधान रहा है अत: कृषि कार्य करते हुए भी गीत गाने की परम्परा दिखाई पड़ती है। ऋतु गीतों में चैती, कजरी, बारहमासा, श्रावणी, झूला के साथ रंगीन होली गीतों की परम्परा इस परिक्षेत्र में है।

इस परिक्षेत्र में पराती एवं सांझा गीतों की भी परम्परा सदियों से चली आ रही है। गाँव के मंदिर या किसी के दरवाजे पर कीर्तन गाने की परम्परा आज भी विद्यमान है। कजरी, चैती की अखाड़े आज भी प्रचलन में है। मिर्जापुर, बनारस के साथ छपरा और आरा भी कजरी की विशिष्ट अंदाज के लिए जाना जाता है। एक ओर जहाँ कजरी के दंगल होते हैं तो दूसरी ओर महिलाएँ बगीचे में हिंडोला डाल के झूलते हुए अनूठे अंदाज में कजरी गाती हैं। होली की मस्ती इस परिक्षेत्र में अपनी खास विशेषताएँ लिए प्रगट होती है। इस गीत में जहाँ शिव-पार्वती, सीताराम, राधाकृष्ण आदि के मर्यादित भंगिमाएँ प्रगट होती है वहीं आमजनों के शृंगारिक भाव-भंगिमा लिए हुए उच्छृंखल गीत भी।

यहाँ भक्ति गीतों की भी विषद परम्पराएँ दिखाई पड़ती हैं। एक ओर शिवालय पर शिव का गुणगान होता है तो राम और कृष्ण के मंदिरों पर इनके जीवन की उपलब्धियों के बखान के साथ-साथ लोक देवी-देवता से संबंधित गीतों की माला सुनाई पड़ती है। एक तरफ सगुन भक्ति की प्रधानता है तो दूसरी तरफ निर्गुण भक्ति की नीरामयता भी। कहीं गोरखनाथ हैं तो कहीं कबीर और कहीं तुलसीदास की वाणी भी लोक संगीत में मुखरित हैं।

पूर्वांचल की देन

यहाँ लोक संगीत की समृद्ध परम्परा रही है। यही लोक संगीत विकास कर ठुमरी-दादरा[4] आदि के रूप

में आज हिन्दुस्तानी संगीत की प्रमुख शैली है। ठुमरी गायन शैली अपने रसीलेपन गायन, रंगीनी और जनसामान्य की रसिकता को स्तब्ध करने वाली अपनी काव्यात्मक प्रकृति के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय रूप धारण कर चुकी है। इस गायकी को प्रचलित करने का श्रेय लखनऊ के नवाब एवं उनके दरबारी संगीतज्ञों को है।[5] राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा से आरभ कर सामान्य नायक और नायिकाओं के रस भरे श्रृंगार तक की अभिव्यक्ति इसमें होती है। शब्दों की कोमलता और स्वरों की नजाकत इस शैली की खास विशेषता है।[6]

ठुमरी गायकी के दो भेद पछाहीं ठुमरी और पूर्वी अंग की ठुमरी है। बोलबाँट की पछाहीं ठुमरी की बन्दिशें बहुत ही सुगठित कलात्मक, लयबद्ध तथा चमत्कारपूर्ण होती हैं। यह ठुमरी प्राय: मध्य लय में गाई जाती है तथा प्रचलित सभी तालों में निबद्ध होती है। बोल बनाब की पूर्वी ठुमरी के बोलों में निहित भावों को अभिव्यक्ति के लिए इत्मीनान और चैनदारी से विलम्बित लय में गायकी प्रस्तुत की जाती है। यह ठुमरी जत, दीपचंदी आदि तालों में निबद्ध रहती है। लोकतत्त्वों से अधिक प्रभावित होने के कारण पूर्वी ठुमरी प्राय: लोकधुनों से तादात्म्य रखने वाले रोगों में अधिक गाई जाती है; जैसे भैरवी, पीलू, जंगला, बिहारी, झिंझोरी, गारा, खमाज, तिलंग इत्यादि।[7]

बोल बनाव की ठुमरी के लिए लखनऊ और बनारस प्रसिद्ध है। लखनवी ठुमरी अवध के नवाबी युग की नागरिक संस्कृति से प्रभावित है। इनमें बोलबनाव के कलापक्ष पर नाज नखरों, बनाव-शृंगार और नफासत की प्रधानता दिखाई पड़ती है।[8] बनारसी ठुमरी में बोलबनाव करते समय बोलों के 'कहन' अर्थात लहजे में पूर्वी बोलियों के विशिष्ट उच्चारण की मिठास के साथ-साथ स्वर-निवेशों के प्रयोग में लोक धुनों की सादगी व सरलता के दर्शन होते हैं।[9] इस गायकी में पूर्वांचल के लोक जीवनी की सादगी और सरलता के दर्शन होते हैं। बंदिश की भाषा भी मुख्यत: भोजपुरी ही होती है; जैसे,

"नाहक लाए गवनवाँ
अरे आप तो जाय बिरेसवा में छाए।
जब से गए मोरी सुधहूँ न लीनी
बीतो ही जाय जोबनवाँ।"[10]

चंचल क्रीड़ाशील एवं श्रृंगारयुक्त काव्य और गतिशील खटकों-मुरकियों से युक्त कलात्मक सौन्दर्य व भावमय गायन-शैली 'दादरा' है। इस शैली का विकास यहाँ के लोक संगीत जैसे पूर्वी, झूमर आदि के आधार पर हुआ है। इस गायकी के शब्द मुख्यत: पूर्वी बोली के ही होते हैं। जैसे- "अँधेरिया है रात, सजन रहिहे कि जइहें।"[11]

ठुमरी दादरा प्रस्तुतीकरण के समय विषयानुकूल दोहा, सवैया, कवित्त इत्यादि बीच-बीच में कहे जाते हैं। इन दोहा कवित्त इत्यादि की भाषा मुख्यत: भोजपुरी ही होती है।

पूर्वांचल में प्रचलित ऋतुगीत जैसे- कजरी, सावनी, झूला, चैती, होली आदि का गायन सभी संगीतज्ञों द्वारा किया जाता है। यह ऋतुगीत अपने परम्परागत लोक-धुनों में ही प्रस्तुत किया जाता है। इस धुनों को खटका-मुरकी, छूट-पुकार आदि से सजा कर कलात्मक एवं सौन्दर्यमूलक बनाया जाता है। इस गायकी में लोक धुनों के सहज लालित्य के साथ शास्त्रीयता के भी दर्शन होते हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में सबसे प्रमुख एवं लोकप्रिय शैली 'ख्याल' है। इस शैली के आविष्कारक के रूप में चैनपुर के बादशाह सुलतान हुसैन शर्की का नाम आता है।[12] सुलतान शर्की ने यहाँ के लोक धुनों के आधार पर राग जौनपुरी सिन्धु-भैरवी, जौनपुरी-तोड़ी, रसूली-तोड़ी, श्याम, सिंदूरा इत्यादि रागों को भी प्रचलित किया।[13]

भारतीय संगीत का प्रधान वैशिष्ट्य 'राग' है। राग का आधरभूत तत्त्व लोकधुन ही है।[14] जौनपुरी, खमाज,

काफी, पीलू, जंगला, बिहारी, झिंझोटी, गारा, बिलावल आदि राग का बीच पूर्वांचल के लोक-धुन में दृष्टिगत है। लोक धुन जब किसी संगीतज्ञ के हृदय का छूता है तो वह उस धुन को परिष्कृत कर अर्थात् वादी-संवादी, वर्ज्यावर्ज्य, आरोह-अवरोह इत्यादि के नियम में बाँध कर राग का निर्माण करता है। अतः यहाँ के लोक धुनों के आधार पर राग का निर्माण होना स्वाभाविक है।

सितार के लोकप्रिय गत रजाखानी गत के आविष्कारक पूर्वांचल के रजा खां[15] साहब ही हैं। सारंगी, शहनाई आदि लोकवाद्य को शास्त्रीय रंग देने का श्रेय यहाँ के संगीतज्ञों को ही जाता है। आधुनिक तबला को स्थापित करने मे बनारस घराने के कलाकारों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

उत्तर भारत के एक मात्र शास्त्रीय नृत्य कथक को प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय इस अंचल को ही जाता है। इस नृत्य का उद्भव, विकास एवं पल्लवन पूर्वांचल में प्रचलित लोकनृत्य, जैसे नटुआ नृत्य, झूमर नृत्य, नटवरी नृत्य तथा अन्य लोक नृत्यों की सामग्रियों को एकत्रित कर हुआ है।[16]

इस प्रकार यह दृष्टिगत होता है कि ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी आदि जैसी लालित्य, भावपूर्ण, लास्यमयी, सौन्दर्यमयी गेय विद्या के देन का श्रेय पूर्वांचल को ही है। आज कोई भी संगीत समारोह हो, प्रमुख रूप से उपयुक्त गेय विद्या का गायन या वादन होता है। सारंगी, शहनाई जैसे वाद्य को शास्त्रीय वाद्य के रूप में पहचान यहीं के संगीतज्ञों द्वारा दिया गया है। कथक नृत्य को शास्त्रीय नृत्य के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय इसी अंचल को जाता है। अतः भारतीय शास्त्रीय संगीत को समृद्ध करने में पूर्वांचल का महान योगदान है।

संदर्भ :

1. शर्मा, अमल दास, विश्व संगीत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990, पृ. 2.
2. वही, पृ. 2
3. जैन, डॉ. शान्ति, ऋतुगीत स्वर और स्वरूप, अयन प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.-1991, पृ. 18.
4. राठौड़, भारती, शास्त्रीय संगीत की मधुरिमा : ठुमरी, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा.लि., जयपुर, प्र.सं.-2005, पृ. 66
5. कुमार, डॉ. अरविन्द, उपशास्त्रीय संगीत के आयाम, संगीत, मई 2004, पृ. 3
6. परांजपे, डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, संगीत बोध (तृतीस संस्करण), मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल, पृ. 120
7. कुमार, डॉ. अरविन्द, उपशास्त्रीय संगीत के आयाम, संगीत, मई 2004, पृ. 4
8. शुक्ल, डॉ. शत्रुघ्न, ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्र.सं.-1983, पृ. 288
9. वही, पृ. 292.
10. संगीत कला विहार, मई 1991, ठुमरी विशेषांक, पृ. 177
11. गुर्टू शोभा, (Immortal Series) SVCC-07
12. निगम, प्रो. वी.एस., संगीत कौमुदी, पहला भाग, श्रीमती केसर कुमारी निगम, लखनऊ, चौदहवां संस्करण 1982, पृ. 131
13. वही, पृ. 19
14. कुमार डॉ. अरविन्द, राग एक अध्ययन, सिद्धार्थ प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, प्र.सं. 2000, पृ. 20
15. गोवर्धन शान्ति, संगीत शास्त्र दर्पण, द्वितीय भाग, पाठक पब्लिकेशन, प्रयागराज, 2019, पृ. 180
16 कुमार डॉ. अरविन्द, अभिषेक संगीत पल्लव, सारस्वत प्रकाशन, प्र.सं.-2016, पृ. 44

❖❖❖

भारतीय शास्त्रीय और लोकनृत्य की शिक्षण परंपरा में पारिस्थितिक संयोजन और सामाजिक संदर्भ

- यामिनी[1]
- प्रो. स्वस्ति वर्मा[2]

संक्षिप्ति :

भारतीय शास्त्रीय नृत्य और लोक नृत्य की परंपरा प्राचीन काल की कला है। दोनों ही नृत्य अपनी अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ विकसित हुए। भारतीय शास्त्रीय नृत्य और उनके प्राचीन इतिहास के शुरुआत से ही नृत्य का उद्देश्य नर्तक/ नर्तकियों के स्वास्थ्य की बेहतरी का संकेत देते हैं; अर्थात् नृत्य को योग का एक स्वरूप माना गया है क्योंकि कई मामलों में उनकी तुलना योगियों के साथ शारीरिक और मानसिक व्यायाम के रूप में की जाती है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों को प्रमुख सात प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। कथक भरतनाट्यम, मणिपुरी, कथकली, उड़ीसी, कुचिपुड़ी और मोहिनीअट्टम सभी भारतीय शास्त्रीय नृत्य नाट्यशास्त्र में वर्णित है। इस प्रकार लोक नृत्य क्षेत्र विशेष के अनुरूप भाषा, वेशभूषा, आंगिक भाव को प्रदर्शित करने वाले होते है। शास्त्रीय नृत्य कठिन नियम के साथ गुरु शिष्य परंपरा संबंधों से चलती है, यह कभी पारिवारिक हो सकते हैं और स्वतंत्र रूप से शिष्य और गुरु एक दूसरे का चयन भी कर सकते हैं। वहीं लोकनृत्य की परंपरा अपने आप में पारिवारिक दायित्व के हस्तांतरण पर निर्भर रहती है, जबकि समकालीन स्थिति में बाजार व्यवस्था इतनी विस्तृत हो चुकी है कि लोक कला पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण होने के साथ-साथ उन्मुक्त रूप से व्यावसायिक तौर पर सीखने सिखाने के रूप में परिवर्तित होती जा रही है। नृत्य का जन्म, रीति-रिवाज, कर्मकांड, दैनिक क्रियाकलाप को पूरा करने के सापेक्ष प्रभाव को मान सकते हैं। जिसमें नर्तक के स्वयं की पारिस्थितिक अवस्था पर प्रभाव पड़ता है। नर्तक का स्वास्थ्य, सामाजिक चेतना, भौगोलिक परिवेश, मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण सम्मिलित होते है। साथ ही बाहरी पर्यावरण के इन्ही पक्षों पर नर्तक या नर्तकी का सामंजस्य भी स्थापित होता है।

यह शोध लेखन नर्तकों की शिक्षण परंपरा पर पारिस्थितिक स्थितियों पर सापेक्ष प्रभावों पर विचार करते हुए, नृत्य, अनुष्ठानों और दैनिक गतिविधियों के पूरा होने के अंतर्संबंधों की जानकारी हासिल करता है। नर्तक

1. *शोधार्थी, पी. जी. डिपार्टमेंट ऑफ म्यूजिक, भीम राव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, बिहार।* संपर्क: 9835005666, Mob: yaminilasya751@gmail.com
2. *प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, पी. जी. डिपार्टमेंट ऑफ म्यूजिक, भीम राव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, बिहार।*

के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पहलुओं के साथ-साथ उनका स्वास्थ्य, सामाजिक चेतना और भौगोलिक वातावरण अभिन्न भूमिका निभाते हैं। बाहरी वातावरण के साथ इन कारकों की जटिल परस्पर क्रिया के माध्यम से नर्तक या नर्तकियों का सामंजस्य स्थापित होता है। परंपरा और पारिस्थितिक प्रभावों की जांच करके यह इन नृत्य रूपों और सांस्कृतिक संदर्भों में उनके महत्व की हमारी समझ को गहरा करने की कोशिश करता है।

बीज शब्द : भारतीय शास्त्रीय नृत्य, लोकनृत्य, योगिक अभ्यास, पारिस्थितिक सामंजस्य, कला शिक्षण।

उद्देश्य :

- भारतीय शास्त्रीय और लोकनृत्य की अवधारणा को जानना
- भारतीय नृत्य एकीकरण तथा माननीय शारीरिक पारिस्थितिक दृष्टिकोण को समझना।
- नृत्य शिक्षण परंपरा और सामाजिक दृष्टिकोण से कला के प्रभाव को जानना।
- भारतीय शास्त्रीय नृत्य और लोक नृत्य की अवधारणा को जानना

शास्त्रीय नृत्य एक संस्कृत शब्द है जो भारतीय शास्त्रीय नृत्य और प्रदर्शन कलाओं का वर्णन करता है। शास्त्री संस्कृत शब्द शास्त्र या 'विज्ञान' से लिया गया है। नृत्य का अनुवाद 'नृत्य' के रूप में किया जाता है। परंपरागत रूप से, भारतीय प्रदर्शन कलाओं नृत्य, नाटक और संगीत का एक प्रकार के विज्ञान के रूप में अध्ययन और विश्लेषण किया जाता रहा है।

शास्त्रीय नृत्य : नृत्य कला में कहानी घटना या विषय को ताल लय में भाव सहित व्यक्त किया जाता है स्वरूप है जिसमें विभिन्न मुद्राओं से प्राचीन धर्म परंपरा को प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी शास्त्रीय नृत्य कला हिंदू पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत करती है। शास्त्रीय नृत्य में नियमों का कठोरता से अनुसरण किया जाता है। शास्त्रीय नृत्य में तीन घटक है। पहला नाट्य, दूसरा नृत और तीसरा नृत्य। नाट्य अर्थात नाटकीय रूप जो अभिनय प्रधान है। नृत्त अर्थात पैरों की गति, पैरों के आघात से नृत्य के बोलों को स्पष्ट करते है। आंगिक संचालन में कमर के नीचे का अंग अत्यधिक क्रियाशील रहते है। नृत्य अपने आप में संगीत की संपूर्णता के साथ है। इसमें ताल, लय, भाव सहित अंगों का संचालन होता है। इसमें नाट्य और नृत्य दोनो ही सम्मिलित होते है।
नृत्य में रसों का बड़ा महत्व है। जिसके नौ प्रकार है।

1. श्रृंगार (वात्सल्य, भक्ति)
   - संयोग
   - वियोग।
2. करुण
3. वीर
4. रौद्र
5. वीभत्स्य
6. भयानक
7. अद्‌भुत
8. हास्य
9. शांत।

शास्त्रीय नृत्य की अवधारणा में उसकी प्रस्तुति का पालन ही महत्वपूर्ण है। भारत में 8 शास्त्रीयनृत्य है, भरतनाट्यम, कथक, कथकली, मणिपुरी, मोहिनीअट्टम, सैत्रिया। यहाँ हर प्रदेश का अपना लोक नृत्य और

उसकी अपनी कथाएं हैं, सभी नृत्य की अपनी विशेषता हैं, परन्तु एक बात समान है कि जब भी हम नृत्य करते हैं हमारे विचित्र मन को शांति प्राप्त होती है, हमारा शरीर स्वस्थ रहता है, हमारे किसी भी प्रकार के परिस्थति पर अनुकूल प्रभाव डालता है।

भरतनाट्यम : एक प्रमुख शास्त्रीय नृत्य है। ये दक्षिण भारत में स्थित राज्य तमिलनाडु में किया जाता है। इसकी शुरुआत मंदिरों से हुई। इस नृत्य को पहले देवदासियाँ मंदिरों में भगवान के लिए करती थीं। इतिहासकारों के अनुसार ये कला चोल काल और पल्लव काल में बहुत उन्नत थी। 19वीं सदी तक ये मंदिरों में होता रहा लेकिन देवदासी अधिनियम के 1927 में लागू होने के बाद ये बंद कर दिया गया। ई कृष्णा अय्यर और रुक्मिणी देवी अरुण्डेल के प्रयासों से ये फिर से अस्तित्व में आई।

कत्थक : उत्तर भारत का स्वचालित व प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य है यह राजस्थान उत्तर प्रदेश बिहार और मध्यप्रदेश में इसका चलन है। समयानुसार नई चीजों का समावेश होते हुए घरानों ने जन्म लिया जयपुर घराना राजस्थान बनारस और लखनऊ में किए जाने वाले कत्थक के रूप अलग हैं। कत्थक शब्द संस्कृत से बना है इसका अर्थ है किसी कहानी को नृत्य में भाव और मुद्राओं से प्रस्तुत करना। मुगलशासकों के बाद कत्थक में काफी परिवर्तन आए और राज्य सभा की शोभा बन गयी। नृत्य में घुंघरू को पहन कर पैरों से गति और हाथों और आंखों के हाव भाव से नृत्य करते हैं रायगढ़ घराना और वाराणसी घराना इसके नए घरानों के प्रकार है। जो विशिष्ट कथक शैली के साथ प्रस्तुत हो रही है। शंभूमहाराज, बिरजूमहाराज, लच्छूमहाराज, हजारीअग्रवाल, सितारादेवी, मालविका, शोभना नारायण, राजेंद्र गंगानी जी जैसे कई कथक कलाकार हैं, जिन्होंने देश विदेश में कत्थक को एक मुकाम दिया है।

कथकली : केरल राज्य का प्रमुख शास्त्रीय नृत्य कथकली कथा और कल्याणी कला शब्द से बना है आकर्षक वेशभूषा और स्वरूप उनका शृंगार का तरीका अद्‌भुत है। कथकली में कलाकार रामायण महाभारत और पौराणिक कथाओं को नृत्य के जरिए दिखाते हैं। पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य ज्यादातर राक्षसों के बीच होने वाले युद्ध को नृत्य के जरिए प्रस्तुत करते हैं। कला मंडलम केसरी, कल्लामंडलमवसु, पिशारोडी, गुरु गोपाल शंकर, रागिनी देवी, कृष्णाकुट्टी, उदय शंकर आदि कथकली के प्रसिद्ध कलाकार है।

कुचिपुड़ी : कुचिपुड़ी शास्त्रीय नृत्य आंध्र प्रदेश में किया जाता है। यह नाम वहाँ पर स्थित कुचिपुड़ी गाँव से लिया गया है, जो सिर्फ ब्राह्मण पुरुषों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में सिर्फ पुरुष ही होते थे, लेकिन रागिनी देवी और बाला सरस्वती जैसी महिला कलाकार के आने से कुचिपुड़ी नृत्य में महिलाओं को भी अवसर मिलने लगा। कुचिपुड़ी नृत्य की खासियत है नृत्य का वह हिस्सा जिसमें थाली पर कलाकार खड़े होकर नृत्य करते हैं। भावना रेड्डी राजा और राधारेड्डी मंजू भार्गव आदि प्रमुख कुचिपुड़ी कलाकार है।

मोहिनीअट्टम : केरल राज्य का यह दूसरा शास्त्रीय नृत्य है। यह नृत्य पौराणिक कथा के अनुसार भगवान विष्णु के मोहिनी रूप पर आधारित है। अमृत मंथन से प्राप्त अमृत के लिए सुरों और असुरों में युद्ध हुआ और तब भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप बदल कर असुरों से वो अमृत घट ले लिया, और सुरों के बीच नृत्य कर वितरण किया था। और दूसरी कथा में भगवान शिव द्वारा भस्मासुर को राक्षस को अमरत्व का वरदान प्राप्त था। भस्मासुर इसी वरदान का गलत प्रयोग करने लगा। तब विष्णु भगवान ने मोहिनी रूप में नृत्य कर भस्मासुर को स्वयं के सिर पर हाथ रखवाकर भस्म कर दिया। स्मिता राजन, भारती शिवाजी, सुनंदा नायर प्रमुख मोहिनीअट्टम के कलाकार हैं।

ओडिसी : शास्त्रीय नृत्य ओड़िसा का प्रमुख नृत्य है। इसे महिलाएँ करती हैं और इस कला की उत्पत्ति भी देवदासी द्वारा ही हुई। इस नृत्य के कई प्रमाण कोणार्क, भुवनेश्वर और पुरी जैसे प्राचीन मंदिरों में मिलते

हैं। इस शास्त्रीय नृत्य के जरिए भगवान विष्णु के अवतार की कहानियाँ दिखाई जाती हैं। संजुक्ता पाणिग्रही, अनीता बाबू, चित्रा कृष्णमूर्ति, मधुमिता राउत जैसे कलाकारों ने इस नृत्य कला को जीवंत रखा और लोकप्रिय बनाया।

मणिपुरी नृत्य : मणिपुर राज्य का प्रमुख शास्त्रीय नृत्य है, इसे जागोई नाम से भी जाना जाता है। इस नृत्य में राधा-कृष्ण के प्रेम को नृत्य के जरिए दिखाया जाता है। कलाकार अपनी कहानियाँ कोमलता से धीरे से प्रस्तुत करते हैं। हंजबा गुरु बिपिन सिंहा, गुरु चंद्रकांता सिंहा, कलाबती देवी, अम्बात सिंह आदि प्रमुख मणिपुरी नृत्य कलाकार है।

सत्रिया नृत्य : ये असम राज्य का शास्त्रीय नृत्य है। इस कला पर पहले पुरुषों का ही एकाधिकार था लेकिन समय के साथ कई महिला कलाकार भी इससे जुड़ीं। पहले ये नृत्य वैष्णव मठों में ही किया जाता था। मठ से ही इसे सत्रिया नृत्य के नाम से जाना जाने लगा। इसे शास्त्रीय नृत्य के रूप में संगीत नाटक अकादमी द्वारा 15 नवंबर 2000 को मान्यता मिली। सुनील कोठारी, पासना महंत, बारिकेश्वर बारिकिया, मुख्तियार बारबिकार प्रमुख सत्रिया नृत्य कलाकार है।

लोक कला : क्षेत्रीय आधार पर कला का विकास लोक कला की प्रमुखता है साथ ही यह स्वदेशी तथा खेतीहर और श्रमिक व्यापारियों को उत्पादन के माध्यम से सम्मिलित करता है लोक कला की प्राथमिकता उसकी पूर्णता सौंदर्य तथा उपयोगिता वादी और सजावटी सामंजस्य से है। भारत के प्रत्येक राज्य की अपनी एक लोक नृत्य कला है जो पूर्ण रूप से उस राज्य विशेष के झलक विशेषताओं की झलक दिखाता है। खानपान, वेशभूषा, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। अर्थात् नृत्य जो आम लोगों द्वारा विकसित किया जाता है, जो एक निश्चित देश या क्षेत्र के लोगों के जीवन और संस्कृति को दर्शाता है, उसे लोक नृत्य कहा जाता है। ये बिना किसी पेशेवर प्रशिक्षण के बहुत सरल नृत्य होते हैं और पारंपरिक संगीत के साथ किए जाते हैं।

- इन नृत्यों का ढ़ंग पारम्परिक होता है न कि किसी एक व्यक्ति द्वारा नवाचार द्वारा सृजित।
- इसके नृत्यकार आम आदमी होते हैं, न कि समाज के कुलीन वर्ग।
- इसको नियन्त्रित करने वाली कोई एक संस्था नहीं होती।

लोक नृत्यों का वर्गीकरण

वैसे तो भारत के विभिन्न राज्य और उनके लोक नृत्यों में वर्गीकरण करना सरल नहीं हैं लेकिन सामान्य तौर पर इन्हें निम्नलिखित चार वर्गों में रखा जा सकता है:

- विशेष क्षेत्र पर आधारित लोक नृत्य : ऐसे नृत्य, जो कुछ ही क्षेत्रों में पाए जाते हैं; जैसे - गुजरात का गरबा, असम का बिहू आदि।
- धर्म एवं पर्व से संबंधित नृत्य : जिस लोकनृत्य का प्रदर्शन पर्व या धार्मिक अवसरों पर किया जाता है, उसे पर्व या धार्मिक नृत्य कहा जाता है; जैसे - झिझिया, करमा नृत्य।
- व्यावसायिक लोक नृत्य : जिस लोकनृत्य का प्रदर्शन जीविकोपार्जन का साधन बन गया, वे नृत्य व्यावसायिक नृत्य कहलाते हैं; जैसे - राजस्थान का भवाई नृत्य, तेरहताली नृत्य।
- जाति पर आधारित लोक नृत्य : लोकनृत्यों में जाति विशेष के लोगों द्वारा किए जाने वाले नृत्य जाति आधारित लोकनृत्य कहलाते हैं; जैसे - आन्ध्र प्रदेश में लंबाडी नृत्य।

भारत के सभी राज्यों के प्रमुख लोक नृत्य की सूची (List of All Indian States and their Folk Dances in Hindi):

राज्य	लोकनृत्य
अरुणाचल प्रदेश	छम, मुखौटा नृत्य, युद्ध नृत्य, बुइया, चलो, वांचो, पासी कोंगकी, पोनुंग, पोपिर, बारडो।
असम	कली गोपाल, खेल गोपाल, बिहू, राखल, बिहुआ, नटपूजा, चोंगली, चौंगवी, नागानृत्य, अंकियानाट
आन्ध्र प्रदेश	मरदाला, कुम्भी, घंटामर्दाला छड़ी नृत्य, बात कम्भा, वीधी, मधुरी, ओट्टन तुल्लू, कालीयट्टम, कुडीयट्टम, भद्रकालि
उड़ीसा	छऊ, पैका, सवारी, पुगनाट, धूमरा, जदूर, मुदारी, गरूड़ वाहन, ओडिसी, चड्या दंडनाता
उत्तर प्रदेश	रास लीला, नौंटंकी, थाली, जैता, जांगर, चप्पेली, करन, कजरी, चारकूला
उत्तराखंड	चौपली, गढ़वाली, कुमायूनी, कजरी, झोरा, रासलीला
कर्नाटक	यक्षगान, कुनीता, वीरगास्से, भूतकोला, कर्गा, सुग्गी, कुनिथा, लंबी
गुजरात	गणपतिभजन, डांडिया रास, गरबा, पणिहारी नृत्य, लास्य, टिप्पानी, अकोलिया, भवई
गोवा	फुगड़ी, ढालो, कुनबी, धनगर, मंडी, झगोर, खोल, डाकनी, तरंगमेल, शिगमो, घोडे, मोदनी, समयी नृत्य, जागर, रणमाले, अमयी नृत्य, तोन्या मेल
झारखंड	करमा, सरहुल, छऊ, फिरकल, जट जाटिन, पाइका।।
तमिलनाडु	कुम्भी, कावड़ी, कडागम, कोलाट्टम, पित्रल, कोआट्टम, भारतनाट्यम
नागालैंड	रेगमा, चोंग नोगकेम, चिंता, कजरम, युद्धनृत्य, खैवालिंम, नूरालिप, कुर्सी नागा, चुमिके, दोहाई
पंजाब	भंगड़ा, गिद्ध, डफ्फ, धमन, भांड, नकल
पश्चिम बंगाल	राम भेसे, गम्भीरा, बाउल, जात्रा, कीर्तन, काठी, महाल, गम्भीरा, रायवेश, मरसिया
बिहार	वैगा, जदूर, जाया, जट-जाटिन, माधी, मूका, लुझरी, विदायत, कीर्तनिया, पंवरिया, जातरा, सोहराई
मणिपुर	चोंग, महारास, नटराज, लाई हरोबा, संखाल, वसंत रास, थाग्टा, पुगवालोग, कीतत्वम्
मध्य प्रदेश	रीना, चौत, दिवारी, नवरानी, गोन्यो, सुआ, भगोरिया, करमों, पाली, डागला छेरिया, हूल्को मंदिरी, सैला, बिल्धा, टपाडी, गोडा
महाराष्ट्र	मोनी, बोहदा, लेजम, लावनी, दहिकला, तमाशा, गणेश चतुर्थी, कौली, गफा, ललिता, मौरीधा

मिजोरम	चेराव नृत्य, खुल्लम, चौलम, सावलकिन, चावंगलाइजॉन, जंगतलम, पार लाम, सरलामकाई/सोलाकिया, तलंगलम, खानतम, पाखुपिला, चेरोकन
मेघालय	लाहो, बाला, का शाद सुक माइन्सीम, नोंगक्रेम,
राजस्थान	कठपुतली, धापाल, जिंदाद, पूगर, सुइसिनी, बगरिया, ख्याल, शकरिया, गोयिका, लीला, झूलनलीला, कामड़, चरी, चंग, फुदी, गीदड़, गैर पणिहारी, गणगौर
हरियाणा	झूमर, फाग नृत्य, डैफ, धमाल, लूर, गुग्गा, खोर, गागोर
हिमाचल प्रदेश	सांगला, चम्बा, डांगी, डंडा, नाव, डफ, धमान, थाली, जद्धा, छरवा, महाथू, छपेली
छत्तीसगढ	गौर मारिया, पंथी, राउत नाचा, पंडवानी, वेदमती, कापालिक, चंदैनी, भरथरी चरित, गौड़ी, कर्मा, झूमर, दगला, पाली, तपाली, नवरानी, दिवारी, मुंडारी, झूमर।
केरल	ओट्टामथुलाल, कैकोट्टिकली, टप्पटिकली, काली अट्टम
सिक्किम	चू फाट, याक चाम सिकमारी, सिंघी चाम या स्नो लायन, याक चाम, डेन्जोंग गनेन्हा, ताशी यांगकू, खुकुरी नाच, चटनी नाच, मारुनी नृत्य।
तेलंगाना	पेरिनी शिवतांडवम, कीसाबादी
त्रिपुरा	होजागिरी, बूमनी, बिझू, चेराव, है-हक, वांगला, संगराई

भारत के केंद्रशासित प्रदेशों के लोक नृत्य की सूची

राज्य	**लोकनृत्य**
जम्मू कश्मीर	कुद नृत्य, राउफ नृत्य, दुमल नृत्य, हाफिजा नृत्य, भांड पाथेर, बचा नगमा, भदजास नृत्य, हिकात नृत्य
लक्षद्वीप	परिचाकाली
अंडमान व नोकोबार द्वीप समूह	निकोबारी ग्रेट अंडमानी नृत्य
चंडीगढ़	गिद्दा नृत्य
दादरा और नगर हवेली और दमन और दीव	तारपा नृत्य, भवाड़ा नृत्य, ढोल नृत्य और तूर और थाली नृत्य
दिल्ली	कथक
लद्दाख	स्पावो नृत्य, शोन नृत्य, द्रुग्पा-रचेस, जबरो नृत्य, बैगस्टनरचेस, लामास नृत्य, कोषन नृत्य, याक नृत्य, तुखस्तानमो

लोक नृत्य के तीन महत्वपूर्ण रूप हम स्पष्टत: देख पाते हैं। लोगों की अक्षय आकांक्षा को संतृप्त करती है। लोक नृत्य धार्मिक और पारलौकिक हो सकती है। साथ ही मनोरंजन के साथ सामाजिक अंतरक्रिया को स्थापित करती है। लोक नृत्य कला मौखिक ज्ञान की प्रायोगिक रूप से सीखने की कला है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक गुरु शिष्य परंपरा द्वारा हस्तांतरित होती है। लोककला नृत्य गीत संगीत का मिश्रण है जो संगीत कला का पूर्ण रूप से आधारित होते हैं। ताल और लय के लिए तबला और इससे कई छोटे-छोटे ताल वाद्य या परकसन का प्रयोग महत्वपूर्ण है और जब नृत्यांकन तथा नाच की विशेषता देखें तो यह पूर्णत: आंगिक होता है। यह बिल्कुल नाटकीय व्यवहार होते हैं और जहाँ वास्तविक नाटक का अस्तित्व नहीं रहता है। इस प्रकार से लोक नृत्य कला मानवीय विचारों का व्यवहरात्मक प्रदर्शन है।

शास्त्रीय और लोक नृत्य में संबंध

कला का विकास के लोक आधार पर हुआ था तो धीरे-धीरे जीविका का साधन भी बनने लगी और एक नियम कानून में बंध कर शास्त्रीयता का रूप ले लिया। ऐसा कहा जाता है कि शास्त्रीय नृत्य का वर्णन नाट्य शास्त्र में उल्लेखित है। नाट्य शास्त्र नाट्य अर्थात अभिनय पक्ष पर विश्लेषक है। इसलिए यह कह पाना की शास्त्रीय नृत्य से लोक नृत्य की उत्पत्ति हुई है या लोक नृत्य ही शास्त्रीय रूप में परिणित हुआ यह भ्रमात्मक है। कला का शास्त्रीय और लोक शास्त्रीय होने का तात्पर्य मनोभावों को व्यक्त करते हुए सरल रूप में प्रारूप की रंजनात्मक प्रकटीकरण है। लोक नृत्य का प्रस्तुतीकरण कलाकार का नाटकीय रूप हो सकता है परंतु जब वही शास्त्रीय कला को आधार बनाता है तो नियमबद बद्ध होकर कला व्यवहारिक के साथ-साथ सांस्कृतिक रूप में प्रस्तुत होते हैं। जैसा कि बहुत से राग हैं जिनकी उत्पत्ति लोक गीतों से हुई है; जैसे राग मांड राजस्थानी लोक संगीत से विकसित हुई है। राजस्थान का जैसलमेर स्थान इसकी उत्पत्ति का स्थान माना जाता है लेकिन चित रंजन है कि ज्यादातर लोग गायक मंगनियार जाति जो हिंदुस्तानी शास्त्रीय राग गाते हैं और जो जैसलमेर में नहीं पाए जाते हैं। परंतु मांड राग गाते हैं और जबकि नियम को कठोरता से पालन किया जाता है तो वह अपने गुणों के कारण शास्त्र के रूप में स्थापित हो जाते हैं। जिस कारण लोक कला में भी शास्त्रीय तत्व मौजूद रहते हैं जैसे कि असम राज्य का सत्रिया नृत्य अपने आप में एक सटीक उदाहरण है। आज जो ओडिसी नृत्य का रूप देखते हैं और जिससे शास्त्रीय नृत्य के अंतर्गत मानते हैं। यह गोटिपुआ नृत्य का पूर्ण निर्मित रूप है जो एक लोक नृत्य हुआ करती थी। साथ ही यह योग मुद्रा पर आधारित है।

इस प्रकार से भारत में विभिन्न प्रकार की शास्त्रीय भारतीय नृत्य, लोक नृत्य परंपराओ की जड़े देश के विभिन्न वर्गों में है। रीति रिवाज, महाकाव्यों और पौराणिक कथाओं ने शास्त्रीय और लोक नृत्यशैली को प्रभावित किया है। यह कथाएं, महाकाव्य, रिती रिवाज स्वभावत: स्थान विशेष की भौगोलिक सामाजिक ऐतिहासिक धार्मिक पृष्ठ भूमि को परिलक्षित करती हुई रहती है।

नृत्य और मानवीय शरीर के पारिस्थितिक दृष्टिकोण को समझना

सबसे पहले मानवीय शरीर की रचना अवस्था, प्रतिक्रिया को समझने की आवश्यकता है। मानव शरीर का अपना एक पर्यावरण निश्चित है। जिसके संतुलन में व्यक्ति की सोच, दैनिक कार्य व्यवहार का निर्वहन सूचक होते हैं। नृत्यकार के शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य दोनों ही का प्रभाव रहता है। नृत्य करने के अपने अलग लाभ हैं वही, मानव शरीर की तंत्र व्यवस्था निश्चित आयाम के साथ होती है। मानव शरीर पांच तत्वों से बना है। जो इस प्रकृति की ही देन है। स्वाभाविक रूप से मानव शरीर की प्रकृति संतुलन भी जरूरी है। शरीर के इसी पारिस्थितिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए व्यायाम योग खान पान को शामिल करना जरूरी है।

नृत्य योग का एक सक्रिय रूप प्रदान करता है जिसका शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक और

भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए संभावित सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। नृत्य योगाभ्यास के रूप में स्पष्ट है कि शास्त्रीय नृत्य की बनावट और उसके हाव भाव एक नई ऊर्जा के साथ साथ सम्यक दृष्टिकोण भी देते हैं। भरतनाट्यम नृत्य पूर्णतया योग पर आधारित है। कत्थक शास्त्रीय नृत्य में चक्कर, पदाघात स्थानक या थाट एक सुदृढ़ शरीर की कल्पना करते हैं। मणिपुरी नाटक गोल गति में नृत्य करते हैं। उन्हें लहरदार और कोमल रूप उचित शारीरिक नियंत्रण और मन की शांति देने वाला गति होता है। इन सभी शारीरिक आंदोलनों शरीर संतुलन अभिव्यक्ति मांसपेशियों के गति मांसपेशियों के संकुचन और विश्राम का शारीरिक स्वास्थ्य पर मजबूत प्रभाव पड़ता है।

परंतु सवाल यह उठता है की क्या योगिक अभ्यास और नृत्य अभ्यास के परिणाम एक दूसरे के समकक्ष या समान हैं? क्या नृत्य की रचना इसी उद्देश्य से की गई थी या की जाती है कि हम अपना शारीरिक स्वास्थ्य बनाकर रख सके?

इन सभी जिज्ञासा को उत्तर प्रदान करने के लिए मैने एक प्रश्नावली तैयार किया। जिस पर शास्त्रीय और लोक नृत्यकार से उतर प्राप्त किए। बिहार के 10 नर्तक/ नर्तकी को सैंपल के रूप में चयन किया गया जो लगातार पिछले 25 वर्षों से नृत्य कर रहे हैं। निष्कर्ष रूप में जो उत्तर प्राप्त हुए वे इसप्रकार हैं:

- नृत्य और योग सूक्ष्म क्रिया है।
- दोनों के ही अभ्यास से शारीरिक और मानसिक प्रभाव सकारात्मक ऊर्जा के साथ परीलीक्षित होते हैं।
- नृत्य साधना सकाम से निष्काम की ओर होती है जिसका उद्देश्य अंत में समाधिष्ट हो जाना है।
- नृत्य सरल प्रक्रिया में योगिक क्रिया धीमी प्रक्रिया से कठिन साधना द्वारा होती है।
- नृत्य में आंगिक संचालन तीव्र होते है, संगीत अंगों ऊपागो का प्रयोग कहीं ज्यादा सम्मिश्रण होता है तो इस आधार पर नर्तक स्वयं से कहीं ज्यादा संलग्न होते है।
- अत: नृत्य को आनंद का आधार मानते है। नृत्य सीखने की प्रक्रिया गंभीर और आत्मिक आनंद की संतुष्टि देता है।

इसी उद्देश्य को और स्पष्ट करने के लिए मेरे दूसरे सवाल के निम्नलिखित उत्तर प्राप्त हुए –

किसी भी शास्त्रीय नृत्य को सीखने और करने के लिए विशेष प्रकार की संगीत वेशभूषा, वातावरण, संगति, भाषा और ज्ञान का समावेश होता है जिसका नृत्य कलाकार के मन, शरीर और आत्मा के संतुष्टि में भी उपयुक्त विकास होता है।

हमारे शरीर में नृत्य करने के दौरान मल्टी ऑर्गन फंक्शन अलग से कारगर सिद्ध होता है। ऐसे में जब व्यायाम या योग कर रहे होते हैं तो लयात्मकता का संभवत: कम प्रयोग होता है। इस प्रकार से हमारी तन्मयता कमतर हो जाती है। मस्तिष्क की त्वरा और सतर्कता नृत्य में और तेज हो जाती है, क्योंकि तब नृत्य के दौरान साथ साथ बजने वाले विभिन्न वाद्य यंत्रों के लय, सूर से मेल करने होते हैं। ऐसे में हमारे अंग उपांगों की सतर्कता आगे बजने वाले बोलो के पहले ही हमारे मस्तिष्क में संकेत पहुंचा जाते हैं।

नृत्य शारीरिक से ज्यादा मन मस्तिष्क पर काम करते हैं। एकाग्रता बढ़ती है। सकारात्मक सोच नैतिक मूल्य में बढ़ोतरी होती है और तब जिसका सकारात्मक प्रभाव शरीर पर पड़ता है।

हमारी पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में नृत्य का अभ्यास कहीं ज्यादा कारगर है। नृत्य के अतीत, अनाघात और सम इन तीनों ही प्रभाव में नर्तन कार्य करता है। कंफर्ट जोन से बाहर निकलकर अभ्यास की आदत होती है तो निश्चित तौर पर आराम का घेरा बड़ा रहता है।

नृत्य एक गतिमान अवस्था होती है जिसका सीधा संबंध हमारे सेहत तथा स्वास्थ्य से होता है। शारीरिक

गतिविधि से दिल तथा फेफड़ों की स्थिति बेहतर होती है साथ ही वजन का संतुलन, हड्डी की मजबूती, मांसपेशी की ताकत तथा सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह निरंतर होता है। ऊर्जा प्रवाह के अनुभव को भी बढ़ाता है जो एक ध्यान पूर्ण अवस्था है।

नृत्य के घरानों का जन्म, उनका पारिस्थितिक व्यवस्था पर आधारित है। इसके सटीक उदाहरण हैं लोक नृत्य की वेशभूषा भाषा प्रकृति में घटनाएं और कर्मकांड को निभाना ही का मूल उद्देश्य स्पष्ट होता है।

नृत्य की संरचना और उसके सभी प्रकारों का एकीकरण आसपास के वातावरण और पर्यावरण को संतुलित करने में अग्रसर है। सभी व्यक्ति आज की भाग दौड़ जीवनी में सुकून पाने के लिए शांत जगह वाले भौगोलिक स्थिति के स्थान पर जाते हैं। नृत्य इसका उत्तम माध्यम बनकर आता है जब अपने मन से संतुष्टि पाने में सक्षम होता है। अपने आंतरिक गुणों के कारण बाहरी पर्यावरण से भी सकारात्मक संबंध बना पाने में सक्षम होता है।

नृत्य की उत्पत्ति भौगोलिक सामाजिक क्षेत्र विशेष के परिप्रेक्ष्य में होते हैं। पहाड़ी नृत्य विशेषता वाले प्रदेश के नृत्य मैदानी क्षेत्र के भाग से अलग होते हैं और प्रकृति में कहीं ज्यादा करीब हो पाते हैं।

वहीं उत्तर यह भी मिले कि नृत्य प्राकृतिक नहीं दिखाई पड़ती है। उम्र बढ़ने से शारीरिक और मानसिक असुविधा उत्पन्न होने लगती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण भगवान शिव की सभी नृत्य भाव भंगिमाएं और कारण क्लिष्ट दिखाई देते हैं। यह तभी संभव हो सका होगा कि शिव एक उत्कृष्ट योगी भी थे। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में उपयोगिता बढ़ाने के लिए केवल नृत्य ही पर्याप्त नहीं हो सकता।

अत: निष्कर्ष स्वरूप नृत्य प्रशिक्षण प्रक्रिया में बदलाव करना होगा। नृत्य में एक विशेष क्षमता है, जो शारीरिक और मानसिक रूप से मूलाधार से सहस्रार तक ऊर्जावान बनाती है, जबकि हम उसके ग्रहण करने के पारंपरिक तरीके का अनुसरण कठोरता से करेंगे।

नृत्य शिक्षण परंपरा और सामाजिक दृष्टिकोण से कला के प्रभाव को जानना

नृत्य शिक्षण परंपरा वेद कालीन परंपरा है, इसका वेदों में वर्णन है। सामवेद संगीत विधा का विशेष उल्लेख वर्णित है। तब नृत्य क्रिया साधना स्वयं को पहचाने और जीवन जीने की कला के रूप में विकसित थी। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आने लगे और रस का आनंद जनमानस में समझ की आदत बनाने लगी। मनोरंजन के रूप में भी परिलक्षित होने लगा तब धीरे-धीरे शारीरिक व्यायाम और आंगिक भाव मुद्राएं दो अलग-अलग परिपाटी होने लगे। वही शास्त्रीय नृत्य मंदिरों में स्थान ले चुका था। सभी नृत्य की उत्पत्ति का आधार देव देवी कथाएँ या उनसे जुड़ी घटनाएँ ही है, तो मंदिर उचित स्थान था। शास्त्रीय नृत्य की लोकप्रियता एक उच्च वर्ग के बीच स्थान बनाने लगी। लोक नृत्य हमेशा से घर आंगन की ही रही। लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने उसे भी प्रभावित किया और परसंस्कृति के प्रभाव में उसके हस्तांतरण की परंपरा परिवार की पीढ़ी तक ही सीमित नहीं रही। अब कौशल अर्जित करने के उद्देश्य से यह जन सामान्य के लिए खुले द्वार की तरह हो गई। बाजार व्यवस्था ने इसे काफी प्रभावित किया है।

नृत्य कला के शिक्षण प्रणाली व्यवस्था में परिवर्तन और उसके कारण को जानने के प्रयास से नृत्य के गुरु का चयन किया गया। उनसे यह भी जानने का प्रयास किया गया कि कला शिक्षण में परिवर्तन से समाज के उन्नयन में सहायक है।

प्राप्त उत्तर के अनुसार - व्यवस्था में परिवर्तन आए हैं कालक्रम को देखिए तो एक नृत्य गुरु अपने गुरु से सीखे गए नृत्य को कहीं ज्यादा सरल कर बताते हैं। क्योंकि जो कठिनाई उन्होंने देखा या सामना किया वह अपने शिष्यों को उनसे दूर रखना चाहते थे। लगभग 40 - 50 वर्ष पहले की बात कि जाए तो जब शिष्य को कुछ सीखना होता था तो उस योग्य पहले तैयार होते थे। यानी उचित पात्र बनते थे।

गुरु शिष्य कला परंपरा के तहत शिक्षण प्रणाली में शिष्य गुरुकुल जाकर सीखते थे। परंतु आज यह समय भी नहीं है क्योंकि बच्चे एक साथ कई कार्य को सीखने वाले होते हैं। सभी कुछ सीखने के साथ-साथ कला भी सीख रहे हैं। ऐसा इसलिए भी है कि कला सीखने में भविष्य में संभावनाओं के स्थिरता की कमी नजर आती है।

माता पिता यह मानते हैं कि कला की शिक्षा और उसकी डिग्रियां आर्थिक तौर पर सवाल उठाए हुए है। आजादी के बाद शिक्षण प्रणाली में कला शिक्षण का स्थान हसिये पर होने लगा। कला शिक्षण में आने वाली समस्याएं और उसकी स्थिति अति उदासीन नजर आते हैं; जैसे,

- शिक्षक का स्वरूप अभिभावकों की महत्वाकांक्षा
- इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स के अति प्रयोग
- कला शिक्षा से व्यवसाय और भविष्य की जानकारी का अभाव
- कला के कोई भी आयाम समाज के बड़े वर्ग के प्रति जागरूकता का अभाव है।
- कला को समर्पित जितने भी शिक्षण संस्थान हैं वहाँ की डिग्रियों का महत्व कम है।

हां शिक्षण व्यवस्था में समय के साथ परिवर्तन आया है। वर्तमान में जहां प्रत्येक शिक्षक गुरु के पास 100 से भी ज्यादा विद्यार्थी हो सकते हैं वही पौराणिक काल में ज्यादा से ज्यादा 5 से 10 की संख्या में नर्तकों को ही तैयार करते थे। जिस कारण सीखने की प्रक्रिया धीमी, कड़े अनुशासन वाले थे। वर्तमान में ज्यादातर लोग जल्द से जल्द भागना चाहते हैं चाहे वह शिष्य हो या गुरु। इसलिए यह ज्ञान कहीं भी स्थापित नहीं हो पाता है। इसके साथ ही साथ शिक्षण की प्रक्रिया पाठ्यक्रम में जुझारूपन, पहनावे में अंतर, पाठ्यक्रम के सिद्धांत के अंतर, ज्ञान में अंतर, अनुशासन में अंतर आते रहे हैं।

अर्थात नृत्यकला आत्म अभिव्यक्ति की सशक्त माध्यम है यह कठोर साधना अभ्यास तथा गुरु के प्रति समर्पण तथा भक्ति से ही प्राप्त हो सकती है। प्राचीन काल में कला शिक्षण की विधिवत गुरु शिष्य परंपरा हुआ करती थी। गुरु अपनी कला में पारंगत होते थे। सिखाने के तरीके में भी शोध किए जाते थे। अथक अभ्यास के साथ गुरु के लगातार सान्निध्य में शिष्य शिक्षा पाते थे। शिक्षा प्राप्ति के उपरांत गुरु के आदर्श से स्वतंत्र रूप से अपनी कला की प्रस्तुति करते थे। नृत्य शिक्षा की ये व्यवस्था दुर्लभ हो गयी है। वर्ग संचालन की तरह नृत्य की भी औपचारिक शिक्षा दी जाती है। जबकि कला शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य प्रकृति का सुंदर रूप बनना है।

इसका मुख्य कारण समय का बदलाव है। राजनीतिक, सामाजिक बदलाव के साथ-साथ सांस्कृतिक गतिविधियों के स्वरूप में काफी भिन्नता आई। समय की बाध्यता के कारण नृत्य कला शिक्षण के समय की भी सीमा रेखा निश्चित करती है। वर्तमान दौर वैश्वीकरण का द्वार है विज्ञान प्रौद्योगिकी का दौड़ है। आज समाज में जो व्यक्ति संस्कृति के करीब है उसमें एकमात्र साधन अध्यात्म और कला ही बची है। लोक नृत्य भी अब संस्थागत हो गए हैं। पाठ्यक्रम में संगीत शिक्षा जोड़ने से शौक से हजारों लोग सिखाते हो परंतु परिवर्तन तो आया है, पहले वही व्यक्ति सीख पता था जो वाकई में कला का साधन बनना चाहता था। शिक्षण पद्धति में परिवर्तन के कारण उनके आसान और छोटा कर लोगों तक पहुंचा जा रहा है जो कहीं ना कहीं बेहतर सोच की ओर बढ़ता है।

निष्कर्ष

अत: जब किसी कला को सिखाते हैं तो अपना उन्नयन होता है। नर्तक के आध्यात्मिक सामाजिक गुणों का विकास होता है। लैंगिक और सामाजिक पूर्वाग्रह से बाहर की ओर सोच रखते हैं, और यही कारण है कि सहजता से किसी को अपनाना उसे गुणात्मक रूप में देखना उनकी विशेषता होती है, जो हमारे समाज के लिए

सकारात्मक वातावरण पैदा करती है। अत: नृत्य प्रशिक्षण प्रक्रिया में बदलाव करना होगा। नृत्य में एक विशेष क्षमता है जो शारीरिक और मानसिक रूप से मूलाधार से सहस्त्रसार तक ऊर्जावान बनती है। जब तक कि हम नृत्यकला को ग्रहण करने के पारंपरिक और शास्त्रीय तरीकों का अनुसरण कठोरता से करेंगे।

संदर्भ :

- गर्ग, लक्ष्मीनारायण, भारत के लोक नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस (1967)
- सिंह पंचम, वासु राय बहादुर सरिसा चंद्र, (Translater), The forceful yoga being the translation of hathyoga- paradipika, Gheranda-Samhita and Shiva-Samhita, प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली,
- Dr. Sunita Shrimali, Bharat Ke Pramukh Lok Nritya (Paperback) Publisher: Redshine Publication, October 2023
- डॉ रश्मि राठौर, "कथक नृत्य के आयाम," मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय उच्चतर शिक्षा विभाग भारत सरकार।
- भारतीय ज्ञान परंपरा, मुक्त बेसिक शिक्षा कक्षा 8, अध्याय 9 शास्त्रीय नृत्य। व्यवसायिक कौशल स्तर 'ग'।
- https://patanjaliyogasutra.in
- Rele, Kanak, Understanding Indian Classical Dance, Book -1, IGNOU, unit 3, http://egyankosh-ac-in//handle/123456789/47403
- Ccrtindia.gov.in/wp-contant/2020/09/Pub_Dance_Sattriya-pdf, Centre for Cultural Resources and Training, Dwarika, New Delhi& 110075- Page No-4
- Satriya dance, origin, Evolution, Repertoire, Costume and Eñponent- Piyush, last updated on November 22nd, 2023.
- ?https://www.studyiq.com/articles/sattria-dance/srsltid

❖❖❖

बिहार के कुछ उत्कृष्ट ठुमरी गायक एवं गायिकाओं का योगदान : एक विश्लेषण

- सुरभी कुमारी[1]
- डॉ. ममता कुमारी[2]

संक्षिप्ति :

ठुमरी का उद्‌भव और विकास उत्तर प्रदेश और बिहार की माटी-पानी से मानी जा सकती है। ठुमरी-अवध के नवाबों के दरबार में घुंघरुओं की मधुर आवाज और नृत्य की भाव-भंगिमाओं से निष्पन्न, बनारस और बिहार (विशेषकर गया) की मिट्टी में प्रचलित होरी, चैती, कजरी और पूरबी के सम्मिश्रण से इसके अंतर्गत आंचलिकता की विशिष्ट छाप लगी। बिहार में एक ओर हिन्दुस्तानी संगीत के 'ब्राह्मण' के रूप में ध्रुपद की गुरु-गंभीर गायिकी प्रतिष्ठित रही तो दूसरी ओर लोक धुनों से अनुप्राणित ठुमरी लोगों के दिलों दिमाग पर राज करना प्रारंभ की। बिहार में ध्रुपद गायकी की तरह ठुमरी गायकी की परंपरा यहाँ उन्नत रही। गया के अतिरिक्त पटना, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर और सहरसा ठुमरी के केन्द्र में रहे। बिहार की सरजमीं में ठुमरी के कई कलाकार पैदा हुए, इनमें कुछ सार्थक ठुमरी गायिका एवं गायक की उत्कृष्ट गायन-शैली की चर्चा प्रस्तुत निबंध में की जा रही हे। विद्याधरीबाई के गले में विराजित 'हूक' और 'पुकार' श्रोताओं को आकर्षित करने में पूर्णतया समर्थ या वहीं बेनजोरबाई का उस जमाने में भी चर्चित गायिका थीं। गौहर जान का लगभग छः सौ ग्रामोफोन डिस्क ठुमरी-दादरा के बने। रोशन आरा बेगम की पैदाइश बिहार में हुई थी जो ठुमरी गायन के क्षेत्र में काफी यश प्राप्त कीं। बड़ी मोती बाई की ठुमरी गायकी में बड़ा ठहराव ओर चैनदारी हुआ करती थी। वहीं बिहार के मांगन खबास को ठुमरी गाने में विशेष महारत हासिल थी। बिहार में मांगन से बढ़कर ठुमरी गायन में तत्काल किसी दूसरे का नाम नहीं था। इन्हीं ठुमरी गायिका एवं गायक का विवरण प्रस्तुत निबंध में देने की चेष्टा की गई है।

बीज शब्द : गायन-शैली, महफिल, जलसे, संगीत समीक्षक, तालीम, प्रशिक्षण।

ठुमरी का उद्‌भव और विकास उत्तर प्रदेश और बिहार की माटी-पानी से मानी जा सकती है। शायद यही

---

1. शोध छात्रा, वि.वि.संगीत एवं नाट्य विभाग, ला.ना. मि.वि., दरभंगा

2. शोध निर्देशिका, वि.वि.संगीत एवं नाट्य विभाग, ला.ना. मि.वि., दरभंगा

कारण है कि इसे पूरब की गायकी कहा जाता है। ठुमरी-अवध के नवाबों के दरबार में घुंघरुओं की मधुर आवाज और नृत्य की भाव-भंगिमाओं के साथ संस्कारित होते हुए बनारस और बिहार (विशेषकर गया) की मिट्टी में प्रचलित होरी, चैती, कजरी और पूरबी के सम्मिश्रण से इसके अंतर्गत आंचलिकता की विशिष्ट छाप लगी। सुरों के ताने-बाने, मिजाज और तबीयतदारी की मिलावट से एक रूमानी और भावोत्पादक गायन शैली 'ठुमरी' के रूप में प्रस्फुटित होती चली गयी। जिसे न केवल फनकारों के गले का बल्कि रसिकों का कण्ठहार बनते देर नहीं लगी। बिहार में एक ओर तो हिन्दुस्तानी संगीत के 'ब्राह्मण' के रूप में ध्रुपद की गुरु-गंभीर गायिकी प्रतिष्ठित रही तो दूसरी ओर लोक धुनों से अनुप्राणित ठुमरी लोगों के दिलों दिमाग पर राज करना प्रारंभ की। बिहार में ध्रुपद गायकी की तरह ठुमरी गायकी की परंपरा यहाँ उन्नत रही। गया के अतिरिक्त पटना, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर और सहरसा ठुमरी के केन्द्र में रहे। बिहार की सरजमीं में ठुमरी के कई कलाकार पैदा हुए, इनमें कुछ सार्थक नाम और उनके योगदान की चर्चा निम्नवत की जा रही है।

विद्याधरीबाई

विद्याधरीबाई का जन्म 1868 ई. में पटना में हुआ था। इनके पिता के स्वर्गवास के पश्चात् संबंधियों से अनबन होने के कारण इनकी माता बच्चों को लेकर बनारस चली आयीं और मुगलसराय के निकट जसोरी ग्राम में बस गयीं। इनको संगीत विरासत में अपनी माता भुट्टोबाई से प्राप्त हुआ था। विद्याधरी को संगीत का प्रारंभिक ज्ञान दरभंगा वाले खाँ साहब, नजीर खाँ और वशीर खाँ से प्राप्त हुआ था। रूप लावण्य और गुण में विद्याधरी का कोई जवाब नहीं था। विद्याधरी के गले में विराजित 'हुक' और 'पुकार' श्रोताओं को आकर्षित करने में पूर्णतया समर्थ थी। इनकी नकल उस जमाने की प्रख्यात रामपुर दरबार की गायिका हशमत जान उतारा करती थी। इतना ही नहीं मुश्ताक हुसैन खाँ जैसे उस्ताद भी इनका अनुकरण किया करते थे। इनके द्वारा गायी गयी मुख्य ठुमरियों में - 'चौंक परी मैं तो पिया के जगाये', 'साँची कहो मो से बतियाँ', 'मुरली वाले श्याम' इत्यादि। ठुमरियाँ विद्याधरी जिस प्रकार गाती थी, वैसी ठुमरी अन्य गायक-गायिकाओं से सुनने को उस समय नहीं मिला करती थी। प्रख्यात गायिका अंजनीबाई मापलेकर के मतानुसार 'पुराने गायक-गायिकाओं में विद्याधरी ने ठुमरी की दुनिया पर राज किया।'[1] विद्याधरी के अनुसार बोल बनाव की ठुमरी वही प्रभावी ढंग से गा सकता है जिसके दिलोदिमाग में सैकड़ों रागों की इत्र रची-बसी हो, हर स्वर पर काबू हो और दिल में दर्द हो। विद्याधरी के कई ग्रामोफोन रिकॉर्ड बने। ख्याल की बंदिशें और 'गीत-गोविन्द' के पदों को गाने में भी विद्याधरी पारंगत थी। 'ललित लवंग लता परिशीलन, कोमल मलय समीरे, उनके गाये गीत-गोविन्द के इस पद को जिन्होंने सुना, वह आज भी उस सुख स्मृति को अपने दिलों-दिमाग में संजोये है। विद्याधरीबाई के कुछेक रिकॉर्ड प्रख्यात संगीत समीक्षक पद्मश्री गजेन्द्र नारायण सिंह जी के संग्रह की शोभा पटना में बढ़ा रही है।

महाराज दरभंगा की दरबारी गायिका बेनजीरबाई

महाराज दरभंगा की दरबारी गायिका के रूप में बेनजीरबाई को ठुमरी गायन के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान थी। वह देखने में बहुत ही सुन्दर थीं। हीरे-जवाहरातों से हमेशा लदी रहती थी। एक बार गौहर जान से उनका मुकाबला हो गया। गौहरजान का बोलबाला उस जमाने में चतुर्दिक था। मुकाबले में गौहरजान के सामने बेनजीर टिक नहीं सकीं। मुकाबले के पश्चात् गौहरजान ने ताना मारते हुए कहा था, 'बेनजीर, हीरे-जवाहरात तो पलँग पर चमकते हैं, महफिल में तो केवल हुनर चमकती है।'[2] इस बात से बेनजीर को काफी आघात पहुँचा। उसी वक्त ठुमरी दादरा गानेवाली बेनजीर ने ठान लिया कि कुछ करके दिखाना है। वहाँ से वह सीधे किराना के उस्ताद अब्दुल करीम खाँ के वालिद के पास पहुँची। उस्ताद के कदमों में अपने समस्त आभूषणों की गठरी रखते हुए बेनजीर ने कहा कि उसे भी किसी लायक बना दें। उस्ताद ने कहा कि हीरे-जवाहरात की गठरी वह

वापस ले जाये। पर उसकी लगन से खुश होकर उस्ताद ने उसे तालीम देना प्रारंभ किया। दस वर्षों के बाद बेनजीर लौटकर गौहर के पास पहुँची। एक घंटे तक केवल रिषभ की बढत सुनायी। खुश होकर गौहर ने कहा– 'अब तुम्हारे हीरे चमक रहे हैं।' उस जमाने की बाईयों में लगन और जिज्ञासा इस प्रकार की हुआ करती थी।

गौहरजान के उस्ताद मौलावक्श के दरभंगा राज में मुलाजिम होने के कारण गौहरजान दरभंगा राजदरबार से भी जुड़ी रहीं। ठुमरी, दादरा गायन के क्षेत्र में गौहर अपनी मिशाल आप थीं। उस जमाने में भी उनके लगभग छः सौ ग्रामोफोन डिस्क बने। इन रिकॉर्डों में गौहरजान की प्रस्तुतियों का एक कैसे एच.एम.वी. कंपनी के चेयममैन च्वाइस सीरीज के अंतर्गत निकाला गया है जिसके साथ संलग्न बुकलेट में गौजरजान और उनके संगीत पर प्रख्यात संगीत समीक्षक पद्मश्री गजेन्द्र नारायण सिंह ने प्रकाश डाला है।

ठुमरी गायिका रोशन आरा बेगम

किराना घराना की सुविख्यात गायिका रोशनआरा बेगम का जन्म पटना सिटी में हुआ। दरभंगा राजदरबार के मुलाजिम किराना घराना के अब्दुलहक तथा पटना सिटी की तवायफ चंदाबाई से उनकी पैदाइश हुई थी। रोशन आरा की प्रारंभिक शिक्षा पटना सिटी के सारंगी नवाज लड्डन खाँ से हुई। रोशन आरा की माता चंदाबाई उस्ताद अमन खाँ की शागिर्द थीं। बाद में रोशन आरा अपनी अम्मा के साथ बड़े चाचा अब्दुल करीम खाँ के पास चली गयीं। अब्दुल करीम खाँ ने बड़े प्यार से अपनी भतीजी को तालिम दी जिसके परिणामस्वरूप रोशन आरा अपने जमाने के सुविख्यात गायिका के रूप में स्थापित हो सकीं। वैसे तो रोशन आरा ख्याल गायिका के रूप में जानी जाती थीं, परन्तु ठुमरी गाने में भी वह नाम पैदा कर गयीं।

ठुमरी गायिका बड़ी मोतीबाई

ठुमरी की प्रख्यात गायिका बड़ी मोतीबाई ने बिहार की माटी–पानी से किया। उनका जन्म दरभंगा के रईस निरंजन राय के घर 1851 ई. में हुआ। उनकी सांस्कृतिक प्रारंभिक शिक्षा दरभंगा में स्थापित किराना घराना के अब्दुल करीब खाँ, बसीर खाँ प्रभृति उस्तादों से हुई। बाद में जब वह बनारस जाकर बस गयीं तो उस्ताद मौजुद्दीन खाँ की पटुशिष्य बन गयीं। बनारस के मिठाईलाल जी से भी मार्गदर्शन प्राप्त किया। पुरानी ठुमरी की बड़ी मोती कीर्तिस्तंभ थीं। उनकी गायकी में बड़ा ठहराव और चैनदारी थी। लय की सूझबूझ भी काबिले तारीफ थी। अपनी किताब 'बिहार की संगीत परंपराएं' में चर्चा करते हुए पद्मश्री गजेन्द्र नारायण सिंह ने बड़ी मोतीबाई के संबंध में उल्लेख किया है, 'मैंने बड़ी मोती को जब वह अस्सी की दहलीज पार कर चुकी थीं, तब सुना था। इस उम्र में भी उनकी ठुमरियों में गजब की तासीर थी। उनकी प्रसिद्ध ठुमरी 'मन मोह लिया बाँसुरी बजा के..' आज भी जेहन में है और सुख दे जाती है। वह टप्पा गाने में भी सुदक्ष थीं। अस्सी साल की बड़ी मोतीबाई से टप्पे की एक ऐसी तान रेडियो पर सुनी कि माथा घुनता रहा। कभी बड़ी मोती की ड्यौढ़ी पर संतरी का पहरा होता था। आम फहम जिस किसी की पहुँच वहाँ नहीं थी। पहले और आज के गाने–बजाने के विषय में पूछने पर बड़ी मोती बतलाती थीं कि 'पहले की गायकी थोड़ी–सी थी, मगर उसमें चोट थीं। अब तो रात भर गाये, झमेला ही झमेला है, असर नहीं।[3]

ठुमरी गायक मांगन

बिहार की धरती पर ठुमरी के जितने नगीने हुए उसमें सबसे नायाब रत्न मांगन खबास हुए। उनका जन्म सहरसा जिले के पंचगछिया रियासत में निम्नवर्गीय एक धानुक परिवार में हुआ था। इनके दादा का नाम सर्वजीत कामति एवं पिता का नाम शंकर कामति था। मांगन का बचपन भैंस की चरवाही एवं ड्योढ़ी की खवारनी में बीता।[4] पंचगछिया के सामंत–जमींदार रायबहादुर लक्ष्मी नारायण सिंह संगीत के न केवल अन्यतम पोषकों में थे अपितु उच्च कोटि के हारमोनियम और मृदंगवादक के साथ कुशल प्रशिक्षक भी थे। मांगन खवास उनके टहलू

(निजी चाकर) थे। संगीत की नैसर्गिक प्रतिभा के चलते गायन में मांगन को रायबहादुर से मार्गदर्शन मिला। राय बहादुर की महफिल में बाहर से जो ख्यातिलब्ध संगीतकार आते उनसे भी मांगन को प्रशिक्षण दिलाया जाता। इस प्रकार मांगन को संगीत कला की विशिष्ट जानकारी मिलती रही। सोना तपता रहा और कालक्रम में निखरकर कुंदन में परिवर्तित हो गया। डॉ. चंदेश्वर झा के शब्दों में 'दरबार के संगीत की झंकार ने मांगन के हृदय तार को आहत कर नादब्रह्म को जन्म दिया। संगीत के माधुरी मांगन के कानों में रस घोलती गयी और देखते ही देखते वह एक गायक बन गया। यही गायक दरभंगा महाराज कामेश्वर सिंह के यहाँ राजगायक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[5]

मांगन ने ठुमरी गाने में विशेष महारत हासिल की। अपने समय में वह चोटी के ठुमरी गायकों में गिने जाते थे। उनकी ठुमरी का रंग-ढंग ऐसा था कि जिस जलसे में गाते, वहाँ दूसरे कलाकार जमने में कामयाब नहीं हो पाते थे। बिहार में मांगन से बढ़कर ठुमरी गायन में तत्काल किसी दूसरे का नाम नहीं था। उनके गले की कशिश, जादूई मोहक आवाज, गजल की पेशबन्दियाँ और कल्पना के लहजे के अंदाज ने सोने में सुहागे का काम किया। नादब्रह्म का वह पुजारी, आवाज का वह जादूगर और दर्द की तस्वीर जिसका नाम था, मांगन।[6]

सन् 1932 में मांगन अपनी कर्मभूमि एवं साधना के पवित्र धाम पचगछिया को छोड़ राजदरबार की ओर उन्मुख हुए। अपनी सांगीतिक प्रतिभा से उन्होंने राज विश्वेश्वर सिंह का दिल जीत लिया। राज दरबार में प्रत्येक दिन महफिल लगती थी। मांगन के गीत के बिना राजा साहेब को न दिल में चैन और न रात में नींद आती थी। श्री रामचतुर मल्लिक तब तक गायक के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो पाये थे। इस बात की सत्यता पर अनेक व्यक्तियों की सहमति देखी गयी है।[7]

मांगन का गायन में एक विलक्षण्ता यह थी कि वे ठुमरी गायन के साथ-साथ कवित्त कहते थे। ख्याल एवं ठुमरी के बाद महाकवि विद्यापति के गीत भी ठुमरीनुमा लहजे में कहते थे। जिस कारण वह बड़ा ही प्रभावशाली होता था। कहा जाता है कि मिथिला में विद्यापति के गीत को सर्वप्रथम उन्होंने ही उजागर किया। उन्हीं के द्वारा दी गयी लय का अनुसरण भी रामचतुर मल्लिक ने पूर्ण रूप से किया। ये भी ठुमरी गायन में मांगन की तरह कवित्त कहा करते थे।[8]

मांगन के गायन से संबंधित कुछ संस्मरण का उल्लेख पद्मश्री गजेन्द्र नारायण सिंह ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार से किया है-[9]

"सन् 1941-1942 की बात है। रायगढ़ स्टेट में मांगन आमंत्रित किए गये। राजगढ़ महाराज चक्रधर सिंह की महफिल में उन्होंने गारा की ठुमरी, 'विकल सैंया करि गयो रे मोरा जियरा' सुनाया। लगभग एक घंटे तक ठुमरी के बोल भरे गये। उक्त महफिल में पंडित दिलीपचंद्र वेदी तथा वासुदेव उपाध्याय पखावजी सरोखे कलावंत भी थे। इस ठुमरी ने सभी लोगों को विमुग्ध कर डाला। बतौर ईनाम महाराज ने मांगन को एक मोटर गाड़ी और पाँच सौ रुपये मासिक वृत्ति देकर सम्मानित किया। किन्तु वहाँ अधिक दिनों तक वह रह नहीं सके।

मांगन की गायी ठुमरी कितनी मर्मस्पर्शी होती थी कि उसके बाद किसी भी गायक का, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, रंग नहीं जमता था। चंपानगर, बनैली के संगीतरसिक बल्कि स्वयंसिद्ध संगीतज्ञ कुमार श्यामानंद सिंह की महफिल में मांगन का गायन हुआ। उन्हें ठुमरी सुनाने के लिए कहा गया जो उनके शिष्य को पसंद नहीं पड़ा। लेकिन मांगन ने श्रोता की इच्छा कहकर राग रामकली में निबद्ध बंदिश की ठुमरी 'सजनी री पिया बिन नींद न आवे' प्रस्तुत किया। महफिल में उपस्थित कुमार साहब के गुरु भीष्मदेव चटर्जी तथा खुर्जावाले उस्ताद अल्ताफ हुसैन खाँ ने कहा कि अब इसके बाद गाना-बजाना नहीं होगा। मांगन की प्रस्तुतियों के बाद 'चढ़ो न दूजो रंग' वाली हालत महफिल की हो जाती थीं उनकी अन्य प्रसिद्ध ठुमरियाँ थी, 'केसरिया

अंगिया रंग डाला, रंग डाला नंद के लाल', ठाढ़े रहियो घनश्याम गगरिया मैं धरि आऊँ'। इसके अलावा वह गारा की ठुमरी, 'पीराये मोरी अँखिया, मोरा राजा हमसे ना बोल', जो ठुमरी के बादशाह मोजुद्दीन खाँ की प्रिय चीज थी, गाते थे। भैरवी की प्रसिद्ध ठुमरी 'बाजूबंद खुल-खुल जाये भी गाते थे और श्रोताओं को रससिक्त कर देते थे। वह मुख्यत: पीलू, गारा, खमाज, सारंग और भैरवी में ठुमरी गाया करते थे। उस्ताद इनायत खाँ सितारिया कहते थे कि बुजुर्गों ने बहुत-सी राग-रागिनी बनायी जो 'वाह-वाह' के काबिल है लेकिन खास तौर से ठुमरी के लिए दो ऐसे राग बनाये, पीलू और भैरवी, जो 'हाय-हाय' मचा देते हैं।"

इसी प्रकार के कुछ संस्मरण प्रख्यात संगीतज्ञ डॉ. चंडेश्वर झा ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है -

"नेपाल के योद्धा शमसेर राणा (तीन सरकार) के यहाँ विशेष अवसर पर भारत के विशिष्ट कलाकार आमंत्रित किए गए थे। राष्ट्रगायक पंडित ओंकारनाथ ठाकुर के साथ अन्य कई कलाकार आमंत्रित थे। बिहार के मांगन को भी आमंत्रित किया गया था। पं. ओंकारनाथ ठाकुर का विश्राम स्थल युद्ध शमसेर के निवास स्थान के करीब था। मांगन काठमांडू के त्रिपुरेश्वर धर्मशाला में ठहराये गये थे। पं. ओंकारनाथ ठाकुर के गायन के पश्चात् मांगन का गायन प्रारंभ हुआ। इनके गायन ने राजसभासद एवं गायक मंडली सभी को मंत्र-मुग्ध कर दिया। मांगन का गायन सुनकर राष्ट्रगायक पं. ओकारनाथ ठाकुर ने मांगन से कहा, 'तुम्हारे गाने में आह निकलती ओर मेरे गान में वाह।'[10]

उपर्युक्त घटना का वर्णन स्थान बदलकर पद्मश्री गजेन्द्र नारायण सिंह ने वर्णन कुछ इस प्रकार किया है - 'कलकत्ता के एक म्युजिक कान्फ्रेंस में संगीत-मार्तण्ड ओंकारनाथ ठाकुर ने कहा था कि 'हमारे गाने से सुनने वालों के दिलों से 'वाह' निकलती है पर मांगन जी के गायन से 'आह' निकलती है।' अब ऐसे गवैये कहाँ रहे जो अपने गायन से सुननेवालों को चाहें रूला दे और चाहें तो हँसा दें। मांगन खवास जिस महफिल में या जलसे में होते तो वहाँ भागीदारी के लिए बड़े-बड़े घरानेदार गवैयों का आत्मविश्वास हिल जाता था।[11]

एक अन्य घटना का विवरण देते हुए डॉ. चण्डेश्वर झा ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार उल्लेख किया है - 'पूर्णियाँ (बिहार) के आलमनगर में एक संगीतक का कॉन्फ्रेंस किया गया था। देश के विभिन्न भागों से कलाकार बुलाये गये थे। बनारस की अनेकबाई भी बुलाई गई थी। मांगन शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करने के बाद लोकगीत प्रस्तुत करने लगे। गीत के बोल थे - 'बाबू दरोगा जी कओने कसूर से घयले पियवा मोर।' इस गीत को सुनने के बाद अख्तरीबाई ने कहा था - जिन्दा रहने दोगे या नहीं?[12]

उपर्युक्त घटना का विवरण अपनी पुस्तक में पद्मश्री गजेन्द्र नारायण सिंह ने इस प्रकार किया है - 'मांगन खबास वास्तव में गंधर्व पुत्र थे। गजब की मिठास और लोच उनके कण्ठ स्वर में घुली थी। सहरसा के शाहआलम नगर में किसी जलसे में वह गा रहे थे। 'बाबू दरोगा जी कउने कसूर से धयले पियवा मोर।' इस दादरे को सुनते ही अख्तरीबाई फैजाबादी (बेगम अख्तर) की, जो उक्त महफिल में मौजूद थीं हिचकी बँध गयी। मांगन को रोकते हुए कहने लगीं, 'जिन्दा रहने दोगे या नहीं?[13]

यह मांगन खवास की ठुमरियों का ही प्रभाव था कि उनके दरभंगा प्रवास में राजा बहादुर विश्वेश्वर सिंह द्वारा उनके गायन की नकल उतारने के लिए प्रेरित करने के कारण रामचतुर मल्लिक ने ठुमरी गायन में निपुणता प्राप्त की। मांगन के विषय में रामचतुर जी कहा करते थे कि 'वे एक सहज, सरल और मधुकण्ठ प्राप्त गायक थे।' मांगन की ठुमरियों से अन्य ध्रुपद गायक भी प्रभावित हुए। यही वजह है कि पंडित सियाराम तिवारी ठुमरी गाने में भी दक्षता रखते थे। मांगन की एक ठुमरी को पंडित सियाराम तिवारी प्राय: गाया करते थे, ठुमरी का बोल इस प्रकार है -

'सपने में आये साजन पलंग पर,

बहियाँ पकड़कर लिपट गई हो।
आये बलम जब पलंग पर मेरे,
मैं धनी थी रस-रंग बोरे।
सारा बदन हमरे झिकझोड़े।
बिछल बिछौना सिमट गयो रे।'[14]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ठुमरी हमारी व्यापक सांगीतिक परंपरा का अभिन्न अंग है और उसकी कलात्मकता विविधता का सुंदर प्रतीक। ठुमरी राग-रागिनियों के साँचे में ढाली गयी एक मनोहारी गान-शैली और रचना है जिसमें कोमल कमनीय कल्पना स्वरों और शब्दों की मीना तथा पच्चीकारी के सहारे जीती-जागती तस्वीर सामने उकेर कर रख देती है। बिहार में विकसित ठुमरी की परंपरा में इस अनूठी गायकी ये समस्त खूबियाँ भलीभाँति उजागर हुई हैं। इसके अलावा यहाँ की सरजमीं की सोंधी महक भी है जो अन्य जगह की ठुमरियों में नहीं मिलती। उपुर्यक्त वर्णित गायक एवं गायिकों की गायन-शैली से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

संदर्भ :

1. बिहार की संगीत परंपरा, गजेन्द्र नारायण सिंह, तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, नई दिल्ली, 2011, पृ. 90
2. वही, पृ. 90-91
3. ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, चंडेश्वर झा, संगीत शोध संस्थान, ध्रुपद केन्द्र दरभंगा, 1997, पृ. 60
4. वही, पृ. 60
5. सिंह गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परंपरा, तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, नई दिल्ली, 2011, पृ.-55
6. झा, चण्डेश्वर, ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, संगीत शोध संस्थान, ध्रुपद केन्द्र दरभंगा, 1997, पृ. 60
7. वही, पृ. 61
8. वही, पृ. 60
9. बिहार की संगीत परंपरा, गजेन्द्र नारायण सिंह, तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, नई दिल्ली, 2011, पृ. 95-96
10. ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, चंडेश्वर झा, संगीत शोध संस्थान, ध्रुपद केन्द्र दरभंगा, 1997, पृ. 61
11. बिहार की संगीत परंपरा, गजेन्द्र नारायण सिंह, तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, नई दिल्ली, 2011, पृ. 96
12. ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, चंडेश्वर झा, संगीत शोध संस्थान, ध्रुपद केन्द्र दरभंगा, 1997, पृ. 62
13. बिहार की संगीत परंपरा, गजेन्द्र नारायण सिंह, तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, नई दिल्ली, 2011, पृ. 96
14. ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, चंडेश्वर झा, संगीत शोध संस्थान, ध्रुपद केन्द्र दरभंगा, 1997, पृ. 62

❖❖❖

कोशी क्षेत्रीय जनजीवन में लोकसंगीत का महत्व

❍ चंद्रकिरण रीणा[1]
❍ प्रो. नीरा चौधुरी[2]

भारतवर्ष के बिहार प्रदेश का हृदय स्थल कहा जाने वाला कोशी क्षेत्र आज किसी परिचय का मोहताज नहीं है। आज यह क्षेत्र भले ही पिछड़ा हुआ हो लेकिन इसका इतिहास अत्यंत ही गौरवशाली रहा है। कोशी क्षेत्र की सांस्कृतिक भूमि इतनी उर्वर है कि भारत ही नहीं विश्व पटल पर इसका गुणगान हो रहा है। संत और संगीतज्ञ पंडित विद्यापति, संत लक्ष्मीनाथ गोसाईं, कविवर चन्दा झा जैसे महान कवियों और संतों ने अपनी पदावली से कोशी की धरती को सींचा और संवारा है। समाज के उद्धारक इन महान संत कवियों ने कोशी को एक अलग पहचान दिलाई है। मांगन खबास (पंचगछिया घराना), पंडित रघु झा, पंडित सियाराम तिवारी, पंडित राम चतुर मल्लिक, पद्मश्री शारदा सिन्हा, गजेन्द्र नारायण यादव, योगेन्द्र यादव इत्यादि नामचीन संगीत प्रेमी और संगीतज्ञों से भारत में कोशी क्षेत्र की अलग पहचान है।

कोशी क्षेत्र का नामकरण कोशी नदी के नाम पर हुआ है। विश्व की सबसे ऊँची चोटियों- माउंट एवेरेस्ट, कंचनजन्घा, गौरीशंकर और मकालू- के विशाल हिमनदों से लगभग 7000 मीटर की उँचाई से यह नदी निकलती है। कोशी को बिहार का शोक भी कहा जाता है। कोशी नदी की विध्वंसक प्रवृत्ति के बावजूद जीवट के धनी यहाँ के लोगों ने लोकधर्मी सांस्कृतिक विरासत लोक साहित्य, लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, मुहावरे आदि को बचाए रखा है।

कोशी के शीर्षस्थ कथाकार चाहे फणीश्वरनाथ रेणु हों, शकिलनाथ भादुरी हों, अनुपलाल मंडल हों या मायानंद मिश्र हों- इनके द्वारा रचित 300 कहानियाँ और दो दर्जन उपन्यास इस सृजन की धड़कन है जो कोशी नदी के कारण है। कोशी क्षेत्र की संस्कृति, यहाँ की भाषा, यहाँ की रागात्मकता, यहाँ का मानवीय अंधविश्वास और भगौलिक परिवेश सब इन नदियों के कारण ही है।

लोकगीत लोकजीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह सहज अभिव्यक्ति है जिसका प्रारम्भ किसी न किसी रूप में प्रारम्भ हुआ होगा। इसे लोकजीवन का दर्पण कहा जा सकता है। यह समाज में रहने वाले व्यक्ति का उदगार है। हमारा ग्रामीण समाज विभिन्न संस्कारों, उत्सवों और ऋतुओं के अनुसार गीत गाकर अपना मनोरंजन करता है साथ ही वे अपने प्रतिदिन के व्यवहार में लोकगीतों का गायन करते हैं। लोकगीतों का वर्गीकरण अगर

1. शोधार्थी, संगीत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
2. प्राध्यापक, संगीत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

किया जाए तो निम्नलिखित वर्गों में इसे बांटा जा सकता है –

- संस्कारों की दृष्टि से
- ऋतुओं की दृष्टि से
- व्रत एवं त्योहारों को दृष्टि से
- विभिन्न जातियों की दृष्टि से
- क्रिया गीत की दृष्टि से
- प्रसिद्ध लोकदेवों की दृष्टि से
- रसानुभूति की दृष्टि से इत्यादि

भारतीय समाज धर्म प्रधान समाज है। जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने संस्कार मनाये जाते हैं, वह धर्मानुकूल होते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार सोलह संस्कारों का विधान है जिसे गर्भाधान से शुरू किया जाता है तथा मृत्यु के पश्चात समाप्त किया जाता है। ये संस्कार हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक संस्कार के अवसर पर ग्रामीण महिलाएँ विभिन्न प्रकार के गीत गाती हैं जिसका हमारे ऊपर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लोकगीतों के माध्यम से विभिन्न प्रकार की रसोत्पत्ति होती है जो हमारी आत्मा को शुकून प्रदान करती है। हमारे अन्दर ऊर्जा का संचार करती है। ये लोकगीत मानो हमारे जीवन का विभिन्न अंग है। ये इस प्रकार हमारे मन को आह्लादित करते हैं जैसे एक नवजात शिशु अपनी माता या प्रियजनों को।

लोकगीत एक उल्लासमय संगीत है। लोकगीत स्वयं जनता का गीत है। यह समाज का दर्पण है जिसमें जनमानस के हृदय के भाव की झांकी उपलब्ध होती है। लोकगीत की परंपरा पीढ़ी दर पीढ़ी लय के माध्यम से लिखित न होकर मौखिक रही है। मानव समाज में प्रचलित विभिन्न आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज का वास्तविक चित्र लोकगीतों, लोक कथाओं एवं लोक गाथाओं में मिलता है।

लोकसंगीत

लोकसंगीत का इतिहास बहुत पुराना है। विभिन्न प्रान्तों में प्रादेशिक संस्कृति की आवश्यकता के आधार पर विभिन्न अवसरों पर जो गीत गाये जाते हैं उसे लोकसंगीत कहा जाता है। संभवत: मानव के विकास के साथ ही लोकसंगीत का विकास भी होता रहा है। लोकगीत वेदपूर्व सभ्यता का आदिम दस्तावेज़ है।

वैदिक काल में विभिन्न संस्कार एवं उत्सवों पर गाथा गायन का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में गीत के रूप में 'गाथा' शब्द का प्रयोग किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि लोकगीत गाथा के नाम से प्रचलित था।

लोकगीतों का महत्व

लोकगीतों की परंपरा सदियों से चलती आ रही है। लोकगीतों के माध्यम से हमारे धार्मिक विश्वास, परम्पराएँ और संस्कार आज भी जन-जन के कंठ में सुरक्षित हैं। लोकगीतों में विद्यमान सरलता और सहज स्वाभाविकता इनके विशिष्ट गुण हैं। सच पूछा जाए तो इनमें हमारी सभ्यता और संस्कृति की झलक दिखती है। लोकगीतों का महत्व इसलिए भी है क्योंकि इनके भीतर हमारा इतिहास झलकता है।

लोकसंगीत किसी क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। यह क्षेत्र की परंपरा, रीति रिवाजों और जीवन शैली को प्रदर्शित करता है। यह एक ऐसा माध्यम है जो लोगों को एक साथ लाता है और उन्हें एक साथ जुड़ने का अवसर प्रदान करता है। सामजिक एकता को बनाए रखने में लोक संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज के सभी वर्ग के लोगों के लिए ये भावनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है। लोकसंगीत मनोरंजन का एक महतवपूर्ण स्रोत है। यह लोगों का मनोरंजन ही नहीं करता संस्कारवान भी बनाता है। संस्कारवान व्यक्ति

नैतिकता को महत्व देता है और उसका पालन करता है। यह सामजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है जो लोगों को सामाजिक मुद्दों के बारे में जागरूक करता है और उन्हें परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। लोकसंगीत शिक्षा और संस्कार का एक महवपूर्ण माध्यम है। बात अगर रोजगार और आय के स्रोत की हो तो उसमें लोकसंगीत का महत्वपूर्ण योगदान है। यह लोकगीत के कलाकारों को रोजगार के अवसर प्रदान करता है जिससे उनके आय का स्रोत भी बना रहता है। अत: हम कह सकते हैं कि लोकगीत के माध्यम से सांस्कृतिक संरक्षण किया जा सकता है।

एतिहासिक और पौराणिक महत्त्व

लोकगीतों की पृष्ठभूमि स्थानीय रंगों में रंगी होती है। इनके भीतर मानवीय जीवन के सांस्कृतिक मान मूल्यों की अमूल्य धरोहर होती है। इन गीतों के माध्यम से हमें तत्कालीन समाज की स्थितियों का आभास होता है। प्राचीन वेद ऋग्वेद में गाथा गान का उल्लेख मिलता है और उसे गाने वाले गाथिन कहे जाते थे। इन गाथाओं को लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि कहा जा सकता है। लोकगीतों के अंतर्गत वर्णित एतिहासिक झांकियों के द्वारा विभिन्न स्थानों पर हुए अत्याचारों से संबंधित लोकगीत मिलते हैं।

भौगोलिक महत्व

लोकगीतों के माध्यम से हम स्थानीय भूगोल को भी जान और समझ पाते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय नदियों, झीलों, मिट्टी, बाढ़, सुखाड़, जीव-जंतु, वनस्पतियों के नाम, सीमांत क्षेत्र इत्यादि के नाम का उल्लेख मिलता है जिनसे हमें वहाँ के भौगौलिक परिस्थितियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। कोशी क्षेत्र कोशी नदी की विभीषिकाओं से त्रस्त रहता है। "प्राचीन संस्कृत वांग्मय और अभिलेखों में कोशी के प्रवाह क्षेत्र का भव्य रूपांकन हुआ है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण, वाराहपुराण, श्रीमदभागवत गीता, कुमारसंभव आदि में ऋषि मुनियों के तटवर्ती आश्रम, नदी, तीर्थ, संगम स्नान आदि के अतिरिक्त ताम्र अभिलेख (गुप्तकाल) आदि इसके ज्वलंत उदाहरण है।"[1]

"पूरवा जे बहे छै झलामलि हे कोसी,
पछिया बहै छै मधुर।
अंगना में कुइंया दियो कोसिका,
बाँधि दियो रेशम के डोर।
झटपट अँगिया मँगाय दियो कोसिका माय,
भैरव भैया भुखलो न जाय।
साठी धान कुटी के भतवा रान्ह लियै,
मुंगिया दड़रि के केलौ दालि।"[2]

सामाजिक महत्व

समाज में व्याप्त विभिन्न आचार विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, संस्कार, परम्पराएँ हम लोकगीतों के माध्यम से देख सकते हैं। समाज के हर पहलु का वास्तविक चित्र जैसे माँ, बहनों, भाइयों की दिनचर्या, लोगों का एक दूसरे के साथ संबन्ध, प्रेम, वात्सल्य, विरोध संघर्ष इत्यादि का चित्रण इन लोकगीतों में मिलता है।

कोशी क्षेत्रीय जन जीवन में लोकगीतों का काफी प्रभाव रहा है। यहाँ के त्यौहारों में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोग आपसी भेद भाव भुलाकर एक हो जाते हैं और परस्पर प्रेम और सौहार्द के साथ उत्सवों का आनंद लेते हैं। सामाजिक कुप्रथाएँ जैसे बेमेल विवाह, बाल-विवाह इसके साथ समाज की सही स्थति का चित्रण हमें यहाँ गाये जाने वाले गीतों के अध्ययन से पता चलता है। सामाजिक महत्व को दर्शाता एक लोकगीत -

"बहिनी बधइया माँगे अएलइ,
बोलाब भईया बीरन के
कनफुल न लेबो हम झुमका न लेबो,
हम लेबो कान दुनु हीरा हे। बोलाव भईया बीरन के
नथि न लेबो भईया, टिकवा न लेबो
हम लेबो नौलखा हार हो, बोलाव भईया बीरन के।"[3]

आर्थिक महत्व

लोकगीत तात्कालिक आर्थिक व्यवस्था का सजीव और सुन्दर चित्र है। लोकगीतों के माध्यम से हम समाज के आर्थिक व्यवस्था से भली-भाँति परिचित हो सकते हैं। कोशी क्षेत्रीय लोकगीतों में गायिकाएँ अपने पति को सोने की थाली में भोजन परोसने की बात करती हैं तो दूसरी तरफ धानी रंग की चुनरी, सोने चांदी के आभूषणों से सुसज्जित होने की भी बात करती हैं। भोजन सामाग्री में बासमती चावल की भात, मूंग की दाल, छप्पन प्रकार के व्यंजन, पान मखान की बात करती हैं जिससे स्पष्ट होता है कि तात्कालिक समाज की आर्थिक स्थिति काफी समृद्ध रही थी। पारंपरिक लोकगीतों का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि प्राचीन समय में आर्थिक स्तर उच्च कोटि का था।

आर्थिक महत्व को दर्शाता एक लोकगीत देखें,

"पूरवा जे बहे छै झलामलि हे कोसी,
पछिया बहै छै मधुर।
अंगना में कुइंया दियो कोसिका,
बाँधि दियो रेशम के डोर।
झटपट अँगिया मँगाय दियो कोसिका माय,
भैरव भैया भुखलो न जाय।
साठी धान कुटी के भतवा रान्ह लियै,
मुंगिया दड़रि के केलौ दालि।"[4]

धार्मिक महत्व

धार्मिक दृष्टिकोण से लोकजीवन में लोकगीतों का काफी महत्व है। यह हमें हमारे संस्कारों से बाँधे रखता है। किसी भी क्षेत्र का धार्मिक परिवेश कैसा है यह हमें वहाँ के लोकगीतों में वर्णित धार्मिक विषय से संबंधित पदों से ज्ञात होता है। इतना ही नहीं किसी भी क्षेत्र के लोग आस्तिक हैं या नास्तिक इसका परिचय भी इन लोकगीतों के माध्यम से मिलता है। ऐसे अनेक लोकगीत हैं जिनमें दुर्गा, लक्ष्मी, काली, गणेश, राम, कृष्ण, शिव-पार्वती इत्यादि देवी-देवताओं से संबंधित वर्णन मिलते हैं। इससे मिथिलावासियों की धर्म परायणता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

धार्मिक लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ निम्न है-

"बम भोला के माला पिन्हेबै
माला गाँथु यो गौरी
नै कोई देलन पैंचा उधारन
नै गठरी में कौरी, माला गाँथु यो गौरी।"[5]

नैतिक महत्व

लोकसंगीत के अंतर्गत मानवीय जीवन के विभिन्न अवस्थाओं में मनोरंजन के साथ साथ अन्य भावों की भी अभिव्यक्ति होती रहती है। सामान्यत: नैतिकता तथा आदर्श प्रेम के रंग भी इन गीतों में दृष्टिगोचर होते हैं। आजकल के फिल्मी गीतों में अश्लीलता से भरे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो कि हमारे नैतिक स्तर को गिराने का काम कर रहा है जबकि पौराणिक लोकगीतों में प्रेम प्रसंगों की चर्चा भी सात्विकता के साथ की जाती थी। प्राय: देखा जाता है कि इन लोकगीतों में राम सीता या राधा-कृष्ण, गौरी-शंकर आदि देवी देवताओं के नाम लेकर उनके अच्छे कर्मों की प्रशंसा तथा दुर्जनों की निंदा की जाती है जिससे समाज के नैतिक स्तर में कोई गिरावट न हो। ईश्वर का भय लोगों को कुकृत्य करने से रोकता है। अत: इन लोकगीतों के माध्यम से समाज अच्छे कार्य करने की प्रेरणा ग्रहण करता है जिससे उनकी नैतिकता आज भी कायम है।

राजनैतिक एवं राष्ट्रीय महत्व

जब हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम था, उस वक्त अनेक ऐसे लोक गीतकार हुए जिन्होंने उस पराधीनता की पीड़ा को अपने शब्दों में पिरोकर समाज के समक्ष रखा और आमजनों ने उसे अपनी जुबान से लोक में पसारा। ऐसे अनेक लोकगीत हैं जिसमें एक तरफ पीड़ा के शब्द हैं तो दूसरी तरफ क्रान्ति भरे शब्द जिससे वीरों के हृदय में क्रांन्ति की लहर भर दे। इस प्रकार उन लोकगीतों के माध्यम से हम तत्कालीन समाज में चल रहे हलचल को आज भी जान और समझ पा रहे हैं। ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें उन परिस्थितियों का वर्णन है।

स्त्रियों के अभिव्यक्ति का माध्यम -

कोशी क्षेत्रीय लोक संगीत विशेष रूप से महिलाओं की आवाज है। महिलाएँ अपने गीतों में सुख दु:ख, पति से विछोह, मायके की याद, सामाजिक रूढ़ियों और अपने जीवन के अनुभवों को प्रस्तुत करती हैं। इससे उनके जीवन के अनकहे पहलू उजागर होते हैं। विवाह के समय गाये जाने वाले विदाई गीत पुत्री के हृदय की वेदना और माँ बाप के मन की पीड़ा का मार्मिक चित्रण करते हैं, वहीं कजरी गीतों में उनका उल्लास झलकता है। शोहर गीतों में उनका ममतामयी रूप और अपने संतान के प्रति स्नेह छलकता है। इस प्रकार लोकगीत में उनके जीवन के अनकहे भावों को अभिव्यक्ति मिली है।

साहित्यिक महत्व

इन लोकगीतों में सरल शब्दों का प्रयोग होता है। इनमें कृत्रिमता नहीं होती। इसलिए किसी भी साहित्य के लिए ये गौरव की बात है। इन लोकगीतों को लिपिबद्ध कर साहित्य का अंश बनाया जाय तो ये हमारे साहित्य को काफी समृद्ध बना सकता है। महात्मा गांधी का कहना था की "वही काव्य और साहित्य चिरंजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगें, जिसे वो आसानी से पचा सकेंगें।"

लोकगीत मौखिक साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण रूप है। इनमें भाषा की सरलता और लयात्मकता का अद्‌भुत मेल मिलता है। साहित्यकारों और इतिहासकारों के लिए लोकगीत समाज के सांस्कृतिक और भाषाई इतिहास का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन गीतों के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि प्राचीन समाज किस प्रकार का जीवन जीता था और उनकी भाषा, भावनाएँ तथा संस्कार किस रूप में विकसित हुए। भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता को सुरक्षित रखने का कार्य करते हैं। भोजपुरी, मैथिली, अवधी, मगही, राजस्थानी, पंजाबी, आदि भाषाओं में गाये जाने वाले लोकगीत क्षेत्रीय संस्कृति के प्रतीक हैं। ये गीत एक ओर स्थानीय परम्पराओं को संरक्षित करते हैं तो दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता को भी सुदृढ़ बनाते हैं।

लोकगीतों में साहित्यिक सौन्दर्य अपनी स्वाभाविक रूप में मिलता है। इनमें अलंकार छंद, रस और लय का सहज प्रयोग दिखाई देता है। प्रकृति और मानव जीवन के मधुर सम्बन्ध को लोकगीत अत्यंत सुन्दर ढंग से

प्रस्तुत करते हैं। लोकगीत मौखिक परंपरा में पीढ़ी दर पीढ़ी संचित होते रहते हैं। इनमें भाषा की सहजता, शब्दों की मिठास और लोकजीवन की सादगी का अद्‌भुत संगम मिलता है। साहित्य की दृष्टि से ये प्राचीन समाज में उसकी भाषा के विकास की झलक प्रस्तुत करते हैं। इनमें न तो किसी काव्य नियम का बंधन होता है और न ही कृत्रिमता, बल्कि स्वाभाविकता ही इनका सौन्दर्य है। लोकगीतों का साहित्यिक महत्व केवल मनोरंजन तक ही सीमित नहीं हैं। ये जीवन दर्शन सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक इतिहास के वाहक हैं। लोकगीत साहित्य को जड़ से जोड़ते हैं और हमें हमारे सांस्कृतिक जड़ों से परिचित कराते हैं। अत: यह कहना उचित होगा कि लोकगीत हमारे सांस्कृतिक विरासत के साथ-साथ साहित्य के प्राण भी हैं।

निष्कर्ष

कोशी क्षेत्रीय लोक संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि यह लोगों की संस्कृति, परंपरा, इतिहास और सामूहिक चेतना का दर्पण है। लोक संगीत यहाँ की संस्कृति और इतिहास का जीवंत दस्तावेज है। ये गीत लोगों को जोड़ते हैं, सामाजिक एकजुटता को मजबूत करते हैं और जीवन के हर पल को अर्थपूर्ण बनाते हैं। लोकगीत पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान, परंपरा, जीवन मूल्यों का संवाहक बने हुए हैं और आज भी यह परंपरा अटूट रूप से आगे बढ़ रही है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकसंगीत कोशी क्षेत्र की आत्मा है जो यहाँ के जन जीवन की धड़कन और सांस्कृतिक पहचान दोनों को अभिव्यक्त करता है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. प्रफुल्ल कुमार सिंह, "मौन", "कोशी अंचल में नाग पूजन की परंपरा" कोशी की संस्कृति : कुछ अनछुए प्रसंग, 2009 : 1
2. आदित्य श्रीवास्तव, "कोशी की सांस्कृतिक पहचान", कोशी की संस्कृति : कुछ अनछुए प्रसंग, 2009 : 10
3. राधावल्लभ शर्मा, "मैथिलि संस्कार गीत", बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण, 2000 : 63
4. आदित्य श्रीवास्तव, " कोशी की सांस्कृतिक पहचान", कोशी की संस्कृति : कुछ अनछुए प्रसंग 2009 : 105
5. सीता देवी, ग्राम : गम्हरिया, सहरसा से प्राप्त पारंपरिक महादेवी गीत

❖❖❖

मैथिली मुंडन गीतों के सामाजिक संदर्भ

❍ आराधना कुमारी[1]
❍ प्रो. नीरा चौधुरी[2]

संक्षिप्ति :

लोकगीत वास्तव में, किसी भी संस्कृति का दर्पण होता है। इस तरह मिथिला के लोकगीत भी यहाँ के ग्रामीण परिवेश का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इसमें हमें मिथिला के ऐतिहासिक घटना, परम्परा, सामाजिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन की एक वास्तविक और अनूठी झलक मिलती है। अतएव मानव जीवन की सम्पूर्ण परिधि कोई भी ऐसा अध्याय नहीं है, कोई भी ऐसा पल अथवा क्षण नहीं है, जो लोक धर्म की सांगीतिक अभिव्यंजना से अछूता रहा है। वस्तुतः संस्कार गीत भी लोकगीत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

संस्कार हमारे जीवन की बुनियाद हैं, जिसमें जीवन के समग्र विकास हेतु उसके आरंभिक अवस्था से लेकर मृत्यु तक के जीवन रूपी दिव्य यात्रा की समस्त पड़ाव में एक के बाद एक नए पड़ाव में प्रवेश हेतु साकारात्मक ऊर्जा के साथ सुनियोजित रूप से, क्रमबद्ध ढंग से, बेहतरीन तरीके से संवारती है, सजाती है। किन्तु संस्कार को यदि पूर्णरूपेण सार्थक बनाने हेतु संस्कार संदर्भित लोकगीतों के माधुर्य के स्वरूप को नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि संस्कार गीत के अभाव में, एक ओर संस्कार अधूरा सा प्रतीत होता है तो दूसरी ओर उत्सव के वातावरण में नीरसता देखने को मिलती है। अतएव यह गीत नीरसता एवं अधूरापन को दूर करता है और माहौल को खुशनुमा बनाने के साथ-साथ उत्साह, उमंग व उल्लास से भर देता है। मिथिला समाज का जीवन पूर्णतः संगीतमय है। प्रत्येक संस्कार के लिए अलग-अलग संस्कार गीत को गाने की विधा है। जीवन की प्रत्येक पड़ाव के संस्कार में संस्कार गीत की अपनी-अपनी महत्ता होती है लेकिन समस्त पड़ाव में मुंडन संस्कार शिशु अथवा बच्चों के जीवन का सबसे अहम संस्कार है। इसमें शिशु के सौन्दर्यात्यक दृश्यों एक अनुपम एवं अनोखा स्वरूप को दर्शाता है। मैथिली मुंडन संस्कार गीत में धार्मिक आस्था, विश्वास, परिवार की एकजुटता, जुड़ाव व स्नेह, समाजिक भाईचारा, भविष्य की कामना एवं आशीर्वाद सभी मैथिल क्षेत्र के समाजिक मूल्य हैं।

किन्तु समय की निरंतर प्रवाह, भौतिकतावादी जीवन शैली की जीज्ञासा तथा ज्ञान के अभाव ने धीरे-धीरे कुछ सामाजिक मूल्य को धूमिल कर दिया है तो कुछ का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया है। इसी संदर्भ में

1. *शोधार्थी, संगीत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।*
2. *प्राध्यापक, संगीत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।*

मैं अपने शोध पत्र के माध्यम से मुंडन संस्कार गीत में अन्तर्निहित सामाजिक मूल्यों के महत्वों को समाज के समक्ष उजागर करना चाहती है ताकि समाज के लोग इन मूल्यों से लाभान्वित हो सके और अपने जीवन में आत्मसात कर जीवन को जीवंतता प्रदान करें। ये शोध पत्र पूर्णरूप से मुंडन संस्कार गीत के सामाजिकन मूल्यों पर केन्द्रित है।

बीज शब्द : लोकगीत, संस्कार, सामाजिक संदर्भ, मुंडन, मिथिला।

मिथिला क्षेत्र के लोक पारंपरिक विरासतों में मैथिली लोकगीत का विशिष्ट स्थान है क्योंकि मानव जीवन की सम्पूर्ण परिधि में कोई भी ऐसा पहलू, कोई भी ऐसा पल अथवा क्षण नहीं है, जिन मर्मो का लोक-जन के मधुर कंठों से निःसृत हेतु विषय न बना हो।

हर्ष-उल्लास, सुख-दुख, मिलना- बिछड़ना आदि जैसे अनेकों ऐसी जीवन की चढाव-उतार, जिससे होकर गुजरता है, जो जीवन के समस्त रंगों व रसों का द्योतक है और यही समय एवं परिस्थिति के अनुकूल कहीं-न-कहीं मानव में अन्तर्निहित हरेक तरह के सम्यक भावों, गीत स्वरूप स्वाभाविक रूप से स्वतः प्रस्फुटित हो गुंजायमान हो उठते हैं।

वस्तुतः गीत किसी भी संस्कृति का दर्पण होते हैं। इस तरह मिथिला के लोकगीत भी यहाँ के ग्रामीण परिवेश का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इनमें हमें मिथिला के लोकगीत ऐतिहासिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक राजनीतिक जीवन की एक वास्तविक और अनूठी झलक मिलती है। मिथिला के लोक जीवन में संगीत की मधुरिमा प्रत्येक श्वास और कण में समाहित है। यह केवल ध्वनि मात्र नहीं अपितु लोक में एक निरंतर बहती ऊर्जा है, प्रवाह है। यहाँ जीवन कि प्रत्येक मोड़ पर, जैसे - जन्म से लेकर अंत्येष्टि के गीत तक, खेतों में बीज बुआई से लेकर फसल कटाई तक, ऋतुओं के बदलाव से लेकर दैनिक, क्रियाकलापों के लय तक, हर उत्सव, पर्व-त्योहार तथा मांगलिक अवसरों पर लोकगीतों की सरस धुनें सहज ही सुनाई पड़ती हैं। इन सब में मैथिली संस्कार गीतों का लोकगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कार गीत में जीवन की नैतिक मूल्यों, पारिवारिक संबंधी के महत्व बड़ों के आदर, जीवन के अग्र पड़ाव में प्रवेश हेतु साकारात्मक ऊर्जा आत्मविश्वास, आशीर्वचन तथा जीने के व्यावहारिक तौर-तरीके से संबंधित अप्रत्यक्ष शिक्षा होती हैं, जिससे नवयुवक सांस्कृतिक मूल्यों से परिचित होते हैं।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन के शुद्धीकरण एवं अग्रेतर विकास हेतु सोलह संस्कार निर्धारित किया गया है। ये संस्कार सिर्फ धार्मिक ही नहीं मानव जीवन हरेक मोड़ को पवित्रता, शुद्धि तथा उद्देश्यपूर्ण दशा व दिशा प्रदान करती है। सत्य बात है कि सभी 16 संस्कार हर क्षेत्र या समुदाय में एक समान रूप से प्रचलित नहीं हैं, जिसका मुख्य कारण उस क्षेत्र की भगौलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता है। साथ ही स्थानीय रीति-रिवाज, आस्थाएँ तथा जीवन शैली जो सदैव से इन अनुष्ठानों के स्वरूप को निर्धारण करती है। समय की प्रबल धारा में, कुछ संस्कार अपनी मौलिक चमक को खो चुके हैं, तो कुछ विस्मृति के गर्त में समा गए हैं, लेकिन फिर भी जन्म, मुंडन, उपनयन और विवाह जैसे मुख्य संस्कार आज भी मिथिला समाज में अपनी जीवंतता, यूँ ही बनाए हुए है। संस्कारों का सम्बन्ध संस्कार गीत से यथार्थ और वास्तविक रूप से बहुत ही गहरा है। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कार यदि जीवन का पथ प्रदर्शक है तो संस्कार गीत आत्मा की अभिव्यक्ति है, संस्कार यदि दांचा है तो गीत उसमें प्रवाहित होने वाली प्राणवायु है। कहने का तात्पर्य है कि संस्कारों की पूर्णता और सार्थकता संस्कार गीतों की मधुर लहरियों के बिना अधूरी है।

चूंकि संस्कार गीत संस्कार के अवसरों को उत्साह व उमंग के साथ-साथ माहौल को खुशनुमा बनाती है। मिथिला क्षेत्र के प्रत्येक संस्कार के लिए अलग-अलग मैथिली लोक संस्कार गीत को गाया जाता है। इसमें

विशेष रूप से यहाँ की मान्यता रीती-रिवाज, आस्था-विश्वास आदि जैसे लोक के विशेष परम्पराओं का दर्शन होता है।

मुंडन संस्कार

हिन्दू सनातन धर्म के 16 संस्कारों में से एक महत्वपूर्ण और पवित्र संस्कार है, जिसे चूड़ाकर्म तथा मिथिला में चौड़ा संस्कार भी कहते हैं। यह संस्कार शिशु के जीवन का महत्वपूणर्स पड़ाव है। यह संस्कार शिशु के एक अनुपम तथा अनोखा स्वरूप से दृष्टिगोचर कराता है। साधारणत: यह संस्कार शिशु के जन्म से लेकर तीन वर्ष की आयु में सम्पन्न किया जाता है। इसके तहत् शिशु का बाल प्रथम बार सिर से उतारा जाता है। परंपरा के अनुसार, जन्मकालीन बालों को रखने से बच्चा पितृ दोष से मुक्त नहीं हो पाता; वहीं मिथिला की लोक मान्यता के अनुसार, जन्मकालीन बालों को रखने से पितृ दोष की छाया बनी रहती है साथ ही वह अपने पूर्व जन्म के दोष से मुक्त नहीं हो पाता है; वहीं मिथिला की लोक मान्यता में, बालों को 'मातृशक्ति का आवरण' माना जाता है। अत: मुंडन संस्कार इस दोष और आवरण से मुक्त करता है।

मिथिला में मुंडन संस्कार को परंपरा के निरंतरता का सूत्रधार माना जाता है। यह शिशु को उसके पारिवारिक सगे-संबंधियों, आस-पड़ोस और समाज से जोड़ता है, साथ ही, यह शिशु को व्यावहारिक और सामूहिक दायित्वों से भी अवगत कराता है। मैथिल विद्वान डॉ. उमानाथ झा ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में मुंडन संस्कार के विषय में कहा है -"चौरा संस्कार मिथिला की वह धुरी है, जिस पर शिशु का भविष्य घूमता है। यहाँ बाल कटते है, परम्पराएँ जीवित होती है।"

कहने का तात्पर्य है कि मुण्डन संस्कार से बच्चा न केवल दोष रहित होता है बल्कि उसका शारीरिक विकास व मानसिक विकास भी होता है; साथ ही उसका मस्तिष्क स्वस्थ और पवित्र हो जाता है और अपने जीवन के नए मार्ग की ओर उन्मुख होता है। पारिवारिक एकता एवं जुड़ाव, मिथिला समाज में पारिवारिक एकजुटता एवं गहन प्रेम की भावना विख्यात है। यह केवल एक आदर्श ही नहीं, बल्कि सदियों से यहाँ की जीवनशैली का अभिन्न अंग रहा है। आज भी यहाँ संयुक्त परिवार प्रणाली काफी हद तक कायम है, जिसमें दादा-दादी, माता-पिता, चाचा-चाची, भाई बहन तथा उनके बच्चे एक ही छत के नीचे अथवा निकटवर्ती क्षेत्रों में साथ रहते हैं।

मिथिला के पारिवारिक ढाँचे पर दृष्टिपात करें तो परिवार का मुखिया प्राय: पुरुष वर्ग से होता है, जिसके पदचिह्नों पर अन्य सदस्य चलते हैं। बच्चे बड़े-बुजुर्गो के सानिध्य में पलते-बढ़ते हैं, जिससे उन्हें बचपन से ही संस्कार, परंपरा एवं रिश्तों की महत्ता सीखने को मिलती है। इससे न सिर्फ बच्चों में बुजुर्गो के प्रति भावनात्मक जुड़ाव और स्वाभाविक प्रेम विकसित होता है, बल्कि पारिवारिक बंधन भी दृढ़ होते हैं।

मिथिला का पारिवारिक सौहार्द आपसी सामंजस्य तथा प्रेम का मूर्त रूप है, जिसकी झलक यहाँ के संस्कारों और संस्कार-केंद्रित लोकगीतों में स्पष्ट दिखाई देती है। चाहे वह जन्मोत्सव, जनेऊ संस्कार, विवाह से जुड़े गीत हो या फिर अंत्येष्टि संस्कार के गीत - इन सभी में मिथिला समाज की पारिवारिक गहराई साकार हो उठती है; उदाहरणार्थ :

"आस दलन पर दादा जैसल
दादी जे अंचरा पसार अंगन में
बबुआ के हाथ में, बतासा दियौं
बबुआ जे खोटी - खोटी खाए अंगन में।"[1]

प्रस्तुत गीत में पोते के मुंडन की मंगल बेला में दादा जी द्वार पर आस लगा आशीर्वाद देने के लिए बैठे

है तो वही दादी जी, अपना आँचल फैलाकर, बच्चे के उज्ज्वल भविष्य की कामना कर रही है, उस नन्हें जीवन में खुशियों को सौगात भरने की प्रार्थना कर रही है। जब मुंडन की विधि शुरू होती है तो दादी एक मिठा लड्डू हाथ में देती है, ताकि उसकी मिठास में बच्चा घुल जाए और रोना भूल जाए। इस तरह दादा की असीम खुशी और आशीर्वाद दादी के द्वारा उज्ज्वल भविष्य की कामना, पिता द्वारा मुंडन का संचालन, माता द्वारा चौक पूराना ये सभी क्रियाएँ एक साथ मिलकर इस परिवार की एकजुटता, गहरा जुड़ाव तथा बच्चे के प्रति अटूट स्नेह को दर्शाती हैं।

आदर और सम्मान

मिथिला समाज के अस्तित्व के मूल में आदर और सम्मान दो अमूर्त भाव हैं। ये सामाजिक संरचना, व्यक्तिगत आचरण, पारिवारिक संबंधों, संस्कृति और पहचान में अत्यंत सूक्ष्म रूप से परिलक्षित होते हैं। मैथिली भाषी क्षेत्र के जन-समाज में आदर-सम्मान का भाव हर व्यक्ति के मन में निवास करता है। यही कारण है कि यहाँ की सामाजिक व्यवस्था व्यवस्थित और सुसंगठित है, जो शांति, सौहार्द तथा आपसी प्रेम से भी परिपूर्ण है। यहाँ पारिवारिक रिश्ते-नाते, आस-पड़ोस के लोगों के आपसी संबंध, और कार्यस्थलों पर कार्यरत वरिष्ठ व अन्य व्यक्तियों के बीच सहज सामान्य दृश्य स्थापित होता है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर प्रेम, विनम्रता, सहिष्णुता आदि जैसे गुण विद्यमान होते हैं, जो उन्हें दूसरों के प्रति आदर और सम्मान करने हेतु प्रेरित करते हैं।

यह हमें सिखाता है कि हम अपने से बड़ों के बीच कैसे रहें, कैसे उनका आदर करें और कैसे उनका सम्मान करें, छोटों से कैसे प्यार करें तथा समाज में किस प्रकार का व्यवहार करें। यह भाव कहीं ना कहीं एक आदर्श समाज की ओर इंगित करते हैं, जिसके पदचिह्नों पर पीढ़ी दर पीढ़ी समाज आगे बढ़ता रहता है।

मिथिला के संस्कार गीत, विशेषकर मुंडन संस्कार के दौरान गाए जाने वाले गीत, आदर व सम्मान के भाव को सहज रूप से दर्शाते हैं। बुजुर्ग इन गीतों के माध्यम से बच्चों को जीवन के प्रारंभिक काल से ही परिवार के बड़े-बुजुर्गों, खासकर दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-चाची, बुआ और मौसी के प्रति आदर और सम्मान जैसे सामाजिक मूल्यों का पाठ पढ़ाते हैं। इन गीतों में अक्सर बड़ों का नाम लेकर उनकी भूमिका का बखान करते हुए उनके प्रति आदर व्यक्त किया जाता है। अतः इस संदर्भ में कुछ गीत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है

"बाबा हो जग मूरन करा दियों
श्मूरन करा दियों, नटवा नचा दियों
दादी यैं एगो सोहर सुनाए दियो ।। बाबा....
केशो कटाये दियों, उबटन लगाए दियों
चाची यै पियर कपड़ा, पहिराए दियों।। बाबा....
अम्मा यै अहाँ अपने चुमाय दियों।"[2]

प्रस्तुत गीत एक मासूम बच्चे के मुंडन संस्कार के हर्षो-उल्लासपूर्ण माहौल को दर्शाता है। बच्चा अपने इस खास दिन की खुशी को परिवार के सदस्यों के साथ बड़े ही सुंदर और पदनुक्रमित ढंग से साझा करता है, जहाँ उसके हर शब्द में आदर और सम्मान का भाव झलकता है। गीत में, बच्चा सबसे पहले, अपने बुजुर्ग दादाजी (जो कि परिवार में नेतृत्वकर्ता की भूमिका में है) से मुंडन संस्कार के संचालन की बात करता है। इसके बाद, वह दादाजी से लोक परंपरा के सोहर गीतों द्वारा आशीर्वाद देने की इच्छा व्यक्त करता है। मुंडन के उपरांत, वह चाची जी से हल्दी और दही का उबटन लगाने और पीले वस्त्र धारण कराने का आग्रह करता है। और अंत में, वह अपनी मम्मी से चुमोन करने की बात कहता है।

इस प्रकार यह गीत परिवार की उस सुंदर कड़ी को दर्शाता है जहाँ बड़े और छोटे का स्थान शृंखलाबद्ध

तरीके से ध्यान में रखा गया है। बच्चे द्वारा यह अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से परिवारिक आदर और सम्मान की भावना को इंगित करती है। यह दिखाता है कि कैसे एक छोटे बच्चे के मन में भी रिश्तों की गरिमा और बड़ों के प्रति श्रद्धा स्वाभाविक रूप से मौजूद है–

"दादा यों कौन दिन हमरो जनम,भैलेय फुआ के
आसा लागल फूफा क, आसा लागल यो ।।
पोता हो जहि दिन तोहरो मूरन, हौत फुआ क
आसा पूरत फूफा के, आसा पूरत हो ।।"[3]

प्रस्तुत गीत में बच्चा अपने दादा जी से बड़े ही भोलेपन से पूछता है, 'दादाजी! मेरा जन्म किस दिन हुआ था, जिसकी इंतजार में आस में हमारी फुआ और फुफाजी मेरे मुंडन का इंतजार कर रहे है।' दादाजी स्नेह से मुस्कुराते हुए जवाब देते हैं, 'मेरे पोते ! तुम्हारा जन्म तो भगवान से मांगा गया था। यही कारण है कि तुम्हारी फुआ और फुफाजी को तुमसे इतनी आस लगी हुई है। जिस दिन तुम्हारा मुंडन होगा, उसी दिन उसकी यह कामना पूरी होगी।'

यह सुनकर बच्चा फिर अपने पापा जी और चाचा जी से भी यही बात पूछता है। इस गीत में बच्चे का परिवार के बड़ों के प्रति आदर और सम्मान का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जहाँ वहीं अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए पदानुक्रम के अनुसार पहले दादा जी से फिर पापा से और अंत में चाचाजी से प्रश्न करता है।

लैंगिक भूमिका :

मिथिला क्षेत्र में भूमिकाएँ सामाजिक जीवन शैली में पूरी तरह से दिखाई देती है। यहाँ की महिलाएँ ज्यादातर परिवार के लिए भोजन बनाने, बच्चों की देखभाल करने, लोक परंपरा की सांस्कृतिक विरासत (गीत, संगीत, नृत्य और कलाओं) को नई पीढ़ियों तक पहुँचाने और अन्य घरेलू दायित्वों का निर्वाहन करती हैं। वहीं पुरुष परिवार का भरण–पोषण करने, उसका प्रतिनिधित्व करने, ज्ञान के लिए भोजन करते हैं। रक्षक (शिक्षण कार्य), कृषि व जमीन की देखरेख और अन्य बाहरी जिम्मेदारीयों को निभाते हैं। इसकी असली झलक हमें यहाँ के गृह परिवेश के लोकगीतों, संस्कारों, विधि–विधानों और संस्कार गीतों में समान्य रूप से मिलती हैं। खासकर, यदि हम मुंडन संस्कार को देखें, तो हमें सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए जहाँ पुरुष वर्ग मुंडन संस्कार के संचालन, अनुष्ठान के नेतृत्व और बाहरी दायित्वों को निभाते हैं, वहीं महिलाएँ संस्कार की तैयारी से संबंधित घरेलू कार्य करती हैं। इनमें गोसाई पीतर तैयार करना, पूजा–पाठ करना, बच्चों के शुभ आशीष के लिए गीत/नाद करना, चौक और अन्य कार्यों को बहुत ही निष्ठापूर्वक करना शामिल है। इन सभी बातों का उल्लेख हमें मुंडन गीत में मिलता है जो इस प्रकार है:

"कौन बाबा छुरिया गढ़ाओल, सोना से मढ़ाओन हे
ललनारे कौन दादी लेथिन, जन्म केश होरिला जी अतिसुन्दर हे
ललनारे कौन दादी लेथिन, जन्म केश होरिला जी के मुडन हे।"[4]

प्रस्तुत गीत, मिथिला के मुंडन संस्कार से संबंधित है, जिसमें महिला के आन्तरिक भावनाओं और शुभ कार्य में परिवार के सदस्यों की भूमिकाओं का सुन्दर चित्रण है। गीत में, कौन से दादाजी सोने की छुरी बनवाएंगे और कौन–सी दादी सुन्दर बच्चे का जन्म के बाल लेगी। इससे एक और पुरुष वर्ग बाह्य कार्य (छुरी बनवाना, सोना मढ़ाना करते जो सामाजिक–आर्थिक जिम्मेदारी को दिखाते हैं; दूसरी ओर, महिला वर्ग आन्तिरिक, पालन–पोषण सम्बन्धी कार्य, जन्म के बाल लेना, करते हैं, जो घरेलू कार्य को दर्शाते हैं। जो स्पष्ट रूप से मैथिल

समाज की लैंगिक भूमिका को उजागर करता है।

देवता पितर का आशीर्वाद

मिथिला समाज में देवता-पितर के आशीर्वाद को जीवन का आधार माना गया है; क्योंकि यह जीवन की नई शुरुआत व पहल करने में सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करती है जिससे उस व्यक्ति के अन्तरात्मा में आत्मविश्वास की अभिवृद्धि होती है और वह अपने लक्ष्य अथवा मुकाम को बहुत सरल व सहज रूप से हासिल कर पाता है।

मैथिल क्षेत्र के लोग अपने दैनिक जीवन में; जैसे कि चाय-नास्ते से पहले, गृह प्रवेश, नौकरी की नियुक्ति, व पर्व-त्योहार, और जीवन के विभिन्न संस्कारों व अनुष्ठानों के अवसरों पर अपने इष्ट देवी-देवताओं और पूर्वजों का स्मरण करते हैं। वे आशीर्वाद के रूप में उज्ज्वल भविष्य, घर-परिवार से सुख शांति और समृद्धि की कामना करते हैं।

मिथिला में मुंडन संस्कार से चार-पांच दिन पहले से ही इष्ट देवताओं और पूर्वजों के लिए गीत-नाद के साथ अर्पित करने और भगैत-प्रसाद आदि की परंपरा रही है। इसका उल्लेख हमें यहाँ के गीतों में भी मिलाता है, जो इस प्रकार है

देवता पितर गीत (न्योता गीत)

"बटा भरि चानन रगड़ल, पान पात लिखल हे।
ताहि पान नोतब गोसाउनी जे. नित पूजि थिति हे
ताहि पान नोतब पितर लोक जे निज आशीष देथि है।"[5]

उपरोक्त गीत में गोसाउनि (देवता और पूर्वजों) को मैथिली में आमंत्रण पत्र अर्पित करने की परंपरा का सुंदर चित्रण किया गया है। इसमें सर्वप्रथम निष्ठापूर्वक चंदन घिसकर पान पत्ते पर अनुष्ठान संबंधी तैयारी का वर्णन है। इस पान पत्ते को पहले अपने इष्ट देवता (गोसाउनि) को पूजा के दौरान समर्पित किया जाता है, जिसका नित्य पूजा की जाती है। तत्पश्चात, अपने पितरों (पूर्वजों) को पान पत्र अर्पित किया जाता है, जो उन्हे आशीर्वाद देंगे।

इस तरह, हम देखते हैं कि मैथिल क्षेत्र में देवता-पितर के आशीर्वाद की यह प्रथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। मैथिली लोक परंपरा के अनुसार, यदि देवता हमारे कुल की रक्षा करते हैं तो पितर वंश की निरंतरता को बनाए रखते हैं।

गोसाउनी गीत

"नहीरा में होरिला जन्म लेल, ससूरा आनंद भेलेय रे
ललना रे संहो होरिला रे तन, जग मूरन कहाँ कहाँ नौतब है
पहिले जे नौतब घर गोसाई, तखन बाबा डींह पर हे
ललना रे बाबा मे डींह पर होयेथिन सहाय, बबुआ के जग मुरन हे।"[6]

हमारे घर में खुशियों का आगमन हुआ है! मेरे लाल का जन्म नानी के घर हुआ है, और अब हम उसके मुंडन संस्कार की तैयारी में जुटे हैं। दादी माँ इस अवसर पर अत्यंत आनंदित और उत्साहित हैं, और वह पूछ रही हैं कि मुंडन के आमंत्रण के लिए कहाँ-कहाँ न्यौता देना है।

सर्वप्रथम, हम अपने घर के गोसाउनी (ईष्ट देवता) और बाबा के स्थान (पूजनीय स्थल) पर आमंत्रण देंगे। इसके साथ ही, पितरलोक का आह्वान कर उन्हें भी इस शुभ कार्य में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया

जाएगा, ताकि उनका आशीर्वाद हमारे बच्चे पर बना रहे।

बबुआ का मुंडन संस्कार बाबा के स्थान पर ही संपन्न किया जाएगा। इस प्रकार, हमारे ईष्ट देवता और पितरों का आशीर्वाद सीधे बच्चे को प्राप्त होगा, जिससे उसका भविष्य उज्ज्वल और समृद्ध बनेगा। अत: इससे मैथिल क्षेत्र के लोक जीवन में देवता-पितर के आशीर्वाद स्पष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है।

भाईचारा

मिथिला समाज अपनी विशिष्ट संस्कृति, परंपरा और जीवन शैली के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ भाईचारा, केवल एक अवधारणा नहीं बल्कि सामाजिक ताने-बाने की आधारशिला है। यह भावना केवल परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों तक ही सीमित नहीं, बल्कि सभी वर्णों और समुदायों के बीच फैली हुई है। यह मैथिली समाज के लोगों के बीच आपसी सौहार्द, सहयोग और एकजुटता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाईचारे की यह गहरी भावना बड़े-बुजुर्ग द्वारा बचपन से ही बच्चों में पोषित की जाती है, जो समुदायिक देखभाल का अभिन्न अंग है। इस भाईचार को मथिला के लोगों के दैनिक जीवन और रोजमर्रा की क्रियाओं में सहज रूप से देख सकते हैं। यह पर्व-त्योहारों जैसे वसंत पंचमी, होली, रामनवमी, छठ और विभिन्न प्रकार के संस्कारों जैसे- शादी-विवाह, मुंडन, छठी पूजा, जन्मोत्सव, अंत्येष्टि तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

मुंडन संस्कार सफलतापूर्वक संपन्न करने हेतु समाज के सभी वर्गों की सामूहिक सहभागिता अति आवश्यक है। मुंडन संस्कार से पूर्व, मैथिल समाज की महिलाएँ एकजुट होकर बच्चे के उज्ज्वल भविष्य की कामना हेतु अपने इष्ट देवों के गीत (गोसाउनि गीत) तथा बच्चों से संबंधित गीत गाति हैं। इन महिलाओं में विभिन्न जाति-समुदायों की सदस्य शामिल होती है। इस अवसर पर नाई (कुम्हार) माली की भी आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, मुंडन संस्कार के दौरान बाल काटने के लिए कर्मकांड के मंत्रोच्चारण और पूजा पाठ हेतु ब्राह्मण उपस्थित रहते हैं, तथा रीति-रिवाजों को संपन्न करने हेतु बुआ और परिवार के अन्य सदस्य अपने-अपने कार्यों को निभाते हैं। इन सभी गतिविधियों का वर्णन में सस्वाभाविक रूप से मिलता है।

गीतों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

"कहमा स हजमा अइलय कहमा से ब्राह्मण आइलय
कहमा स अइलय बबुआ क फुआ हम्मे लावर लेबैय
गोकुल से हणमा अइलय, मिथुला स ब्राह्मण अइलय
ससुरा स अइलय बबुआ के फूफा हम्मे लावर लेबैय"[7]

प्रस्तुत गीत में, मिथिला के ग्रामीण समाज की सुंदर कल्पना को दर्शाता है। इसमें बुआ के आगमन पर ग्रामीण महिलाएं मजाकिया अंदाज में सवाल-जवाब करती है और कहती है- कहाँ से नाई आए है, कहाँ से ब्राहाण आए है और कहाँ से बाबु की बुआ आई और लावर लेने की बात कर रही है। इस प्रकार, मुंडन संकार के दौरान परिवार, बच्चे और अलग-अलग कुल के लोग (जैसे- ब्राह्मण और नाई) के बीच के सहयोग को दर्शाया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि कैसे मिथिला समाज मे विभिन्न वर्गों के लोग, अपने-अपने कार्यों को तन्मयता पूवर्क पूर्ण करते हैं और यह प्रक्रिया समुदाय के भाईचारे एवं एकता को मजबूत बनाती है।

"सब मिलि गाओल, मंगल गीत
आजु बबुआ के मुंडन
गावो यैं सखी लोग, सब मिलि गाओ
आजु बबुआ के मुंडन।"[8]

उपरोक्त गीत में, मुंडन संस्कार के पावन अवसर पर ग्रामीण परिवेश की महिलाओं के द्वारा गाया गया है, जहाँ वे हर्ष उल्लास से कहती हैं- हम सभी मिलकर मंगलगीत गाएँगे, क्योंकि आज हमारें बाबू का मुंडन है। आओ सखी लोग, सब मिलजुल कर गाएँ, आज हमारे ललन का मुंडन है। इस गीत के प्रस्तुति में परिवार पड़ोसियों और समाज के अन्य सदस्यों की सहभागिता मैथिल समाज को अटूट भाईचारे और सामूहिक उल्लास की झांकी को प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष :

मैथिली मुंडन गीत मिथिला की सांस्कृतिक विरासत का अहम हिस्सा हैं, जो न सिर्फ धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करते हैं, बल्कि सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक संबंधों और सामुदायिक एकता को भी मजबूत करते हैं। इन गीतों में परिवार के सदस्यों- दादा-दादी, माता-पिता, चाचा-चाची- की भूमिकाएँ स्पष्ट होती हैं, जो पारिवारिक स्नेह और सामूहिक उत्साह को दर्शाती हैं। बड़ों के प्रति आदर, लैंगिक भूमिकाओं का पालन (जहाँ पुरुष संस्कार संचालित करते हैं और महिलाएँ गीत-संगीत व घरेलू कार्यों में भाग लेती हैं), देवी-देवताओं व पितरों का आशीर्वाद लेना तथा समाज के विभिन्न वर्गों (ब्राह्मण, नाई, कुम्हार) की सहभागिता - ये सभी तत्व मुंडन गीतों में स्पष्ट झलकते हैं।

इस प्रकार, मुंडन गीत केवल एक संस्कार तक सीमित नहीं, बल्कि मिथिला के सामाजिक ढाँचे को बनाए रखने वाली एक सशक्त परंपरा है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन मूल्यों को आगे बढ़ाती आई है। ये गीत सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक एकता के प्रतीक हैं, जो आज भी मिथिला के लोकजीवन में जीवंत हैं।

संदर्भ :

1. अल्का कुमारी, उम्र : 25 वर्ष, गाँव : अम्बाड़ि, सहरसा।
2. श्रीमती सरिका कुमारी (35), स्थान : बेलाचाँद (गाँव)
3. श्रीमती निराशा गुप्ता, कंचनपुर, सहरसा
4. श्रीमती सत्यभामा देवी, स्थान : कंचनपुर
5. दीप नारायाण ठाकुर, 'मिथिलाक सांस्कृतिक अनुशीलन' सेंटर फॉर कल्चरल रिसोर्स एण्ड ट्रेनिंग, 2017. पृ. 163
6. चंद्रकला झा, चैनल - मिथिला दरभंगा.
7. श्रीमती आशा देवी, स्थान - कंचनपुर, सहरसा
8. श्रीमती रीता देवी (पूज्य माता जी), संतनगर, सहरसा

❖❖❖

ग्रामीण शक्ति संरचना पर आरक्षण का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❍ संजय भारती[1]

संक्षिप्ति :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय ग्रामीण शक्ति संरचना अपने परम्परागत स्वरूप से हटकर नया परिवेश ग्रहण कर रही है। ग्रामीण समाज के ढ़ांचे में महत्वपूर्ण परिवर्तनों और इसकी अधिकार प्रणाली का सूत्रपात जमींदारी, जागीरदारी और देसी रियासतों की सामंती व्यवस्था के उन्मूलन द्वारा हुआ। लोकतांत्रिक सरकार द्वारा जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करके नवीन जनतांत्रिक पंचायत व्यवस्था की स्थापना की गयी, जिसमें परम्परागत शक्ति संरचना के विशेषाधिकारों, शोषण तथा स्तरीकरण को खत्म करके सभी धर्म, जाति व लिंग के लोगों को समान अवसर प्रदान किया गया। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग व महिलाओं को अवसर प्रदान कर राजनैतिक रूप से सशक्त बनाया जा रहा है। अर्थात ग्रामीण समाज के उस वर्ग को भी ग्रामीण शक्ति संरचना में पद, प्रतिष्ठा, नेतृत्व प्राप्त हो रहा है जो सदियों से वंचित रहा हैं।

बीज शब्द : वंचित वर्ग, महिला, अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति, आरक्षण।

परम्परागत ग्रामीण समाज की जाति व्यवस्था तथा जजमानी व्यवस्था ने शक्ति संरचना को असमानता और शोषण से युक्त बना दिया था। स्वतंत्रता के बाद जिसे समाप्त करने के लिए प्रत्येक नागरिक को समानता तथा सामाजिक न्याय के अधिकार से युक्त किया गया तो दूसरी तरफ कृषि में सुधार औद्योगीकरण, विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी सुधार किया गया। गाँवों की दशा सुधारने के लिए पंचायती राज अधिनियम में अनेक प्रावधान किए गए तथा सामुदायिक विकास योजनाओं के द्वारा लोगों तथा गाँव के विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया। योगेंद्र सिंह ने कहा है कि "The domination of the traditional castes and classes continued despit social and economic reforms."[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं को रोजगार, शिक्षा, राजनीति, मीडिया, संस्कृति, सेवा तथा प्रौद्योगिकी में भागीदार बनाने के लिए अनेक प्रयास किए गए। जिसके लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए गए हैं।

---

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय जक्खिनी, वाराणसी

समानता का अधिकार (अनुच्छेद-14), राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं करने के सम्बन्ध में [अनुच्छेद-15 (1)], अवसर की समानता (अनुच्छेद-16), समान कार्य के लिए, समान वेतन (अनुच्छेद 39 घ) की गारंटी देता है। इसके अलावा यह महिलाओं और बच्चों के पक्ष में राज्य द्वारा विशेष प्रावधान किए जाने की अनुमति देता है। [अनुच्छेद-15(3)], महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग करने [अनुच्छेद-51(ए)(ई)] और साथ ही काम की उचित मानवीय परिस्थितियाँ सुरक्षित करने और प्रसूति सहायता के लिए राज्य द्वारा प्रावधानों को तैयार करने की अनुमति देता है [अनुच्छेद-15(1)]।

अन्य पिछड़ा वर्ग के अंतर्गत उन जातियों को सम्मिलित किया जाता है जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक रूप से पिछड़ी हुई हैं। भारतीय संविधान में सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ी हुई जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग कहा गया है। 1953 में काका कालेलकर आयोग बनाया गया जिसमें पिछड़ेपन के निर्धारण हेतु चार आधार रखे गए- 1. जाति संस्तरण में निम्न स्थिति, 2. शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ापन, 3. सरकारी नौकरियों में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व तथा 4. व्यापार, वाणिज्य व उद्योग के क्षेत्र में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व। पिछड़ी जातियों की पहचान के लिए 1990 में मंडल आयोग बनाया गया। आयोग ने तीन सूचकों सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक को सम्मिलित किया, जिसमें सामाजिक सूचकों के चार आधार, शैक्षणिक के तीन तथा आर्थिक के चार आधार रखे गए थे। कुल सूचकों की संख्या 11 थी, जिसमें प्रत्येक सूचक को गुरुभार प्रदान किया गया, जिसमें सामाजिक सूचकों का गुरुभार 3 अंक, शैक्षणिक सूचकों का 2 अंक, आर्थिक सूचकों का 1 अंक रखा गया। जिन जातियों को 11 अंक मिले अर्थात 50% अंक मिला उसे पिछड़ा माना गया। पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरी में आरक्षण के साथ शैक्षणिक स्तर एवं आयु में भी छूट का प्रावधान किया गया है, राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व निश्चित करने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

'अनुसूचित जाति' - भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार "1108 अनुसूचित जातियाँ है। इसका मतलब यह नहीं है कि देश में 1108 प्रकार की अनुसूचित जातियाँ हैं। कुल मिलाकर यहाँ 471 प्रकार की अनुसूचित जातियाँ हैं।"[2] 2011 की जनगणना में अनुसूचित जाति के लोगों की आबादी भारत की कुल आबादी का लगभग 16.6% है। भारत के खेतिहर मजदूरों में एक तिहाई हिस्सा दलितों का है। "अधिकांश अनुसूचित जाति के पास अपनी भूमि नहीं है। लगभग 80% लोगों के पास 1 हेक्टेयर से कम भूमि है, इन लोगों के द्वारा सफाई, मैला ढोने, चर्मकार जैसे धंधे किए जाते हैं। लगभग एक तिहाई लोग बन्धुआ मजदूर हैं, इनकी साक्षरता एवं गुणवत्ता काफी कम है। अधिकांश लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं जिसके कारण इनका सामाजिक, आर्थिक शोषण होता है।"[3]

"साइमन कमीशन ने किस जाति को अनुसूचित जाति माना जाये उसके लिए 13 आधार तैयार किया"[4] जिसमें कुछ इस प्रकार हैं -

1. उच्च जाति को अपने स्पर्श या निकटता से अपवित्र करती हो।
2. वह जाति मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकती हो।
3. वह जाति स्कूलों एवं सार्वजनिक स्थानों का प्रयोग नहीं कर सकती हो।
4. उस जाति के लिए ब्राह्मण पुरोहित कार्य नहीं कर सकते हो।
5. उस जाति के लिए धोबी, दर्जी, नाई, कहार आदि कार्य नहीं कर सकते हो।
6. वह जाति ऐसी हो जिसके हाथ का पानी उच्च जाति का नहीं ले सकता हो।
7. उस जाति का शिक्षित व्यक्ति सामान्य सामाजिक आदान-प्रदान में उच्च जाति के व्यक्ति के समान नहीं समझा जाएगा।
8. वह जाति अपने अज्ञान, अशिक्षा, गरीबी के कारण दलित हैं और इनके न होने से वह सामाजिक रूप

से निर्योग्य हो सकता।

9. वह अपने व्यवसाय के कारण दलित माना जाता है।

अनुसूचित जनजाति को आदिवासी, आत्विका, वनवासी, गिरिजन, जनजाति नाम से पुकारा जाता है। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति कहा जाता है। ए.आर. देसाई के अनुसार "जनजाति दूर दराज के इलाकों में जंगलों और पहाड़ों में रहते हैं। यह तथाकथित सभ्य लोगों से आमतौर पर अलग-थलग रहते हैं। प्रत्येक जनजाति की अलग एक बोली होती है। आमतौर पर इनका धर्म आत्मावादी होता है, जिसमें भूत प्रेत का निश्चित स्थान है। अर्थव्यवस्था की दृष्टि से इनकी प्रौद्योगिकी बहुत पिछड़ी होती है। श्रम विभाजन नहीं होता है। विनिमय वस्तु और सेवा के आधार पर होता है।"[5] भारतीय संविधान में जनजाति को परिभाषित नहीं किया गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार, "भारत में अनुसूचित जनजाति की आबादी 10 करोड़ 43 लाख है।"[6] कुमार सुरेश सिंह (1997) के अनुसार भारत में 461 प्रकार की अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं। भारत के संविधान में 744 अनुसूचित जनजातियों की सूची मिलती है। भारतीय आबादी का 8.6% जनजातियाँ हैं। किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति में तभी सम्मिलित किया जाता है जबकि वह जनजाति के लक्षणों को रखती हो, उनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति हो, भौगोलिक रूप से अलग रहते हों तथा पिछड़ापन एवं सभ्य समाज से अलग हो।

शोध समस्या

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वंचित वर्गों को रोजगार, शिक्षा, राजनीति, मीडिया, संस्कृति, सेवा तथा प्रौद्योगिकी में भागीदार बनाने के लिए अनेक प्रयास किए गए, जिसके लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए गए हैं। लेकिन इसके बाद भी महिला एवं अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति की अनेक जातियाँ- जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक रूप से पिछड़ी हुई हैं; जो शिक्षा, रोजगार, राजनीति में वह स्थान नहीं बना पायी हैं, जो उनको बनाना चाहिए था- अपने अज्ञान, अशिक्षा, गरीबी के कारण वंचित हैं और इनके न होने से वह सामाजिक रूप से निर्योग्य से हो गये हैं। भारत के खेतिहर मजदूरों में एक तिहाई हिस्सा दलितों का है। अधिकांश लोगों के पास अपनी भूमि नहीं है। अधिकांश लोगों के पास अपनी भूमि नहीं है जिन लोगों के पास भूमि है भी तो बहुत ही कम हैं। लगभग एक तिहाई लोग बन्धुआ मजदूर हैं, इनकी साक्षरता एवं गुणवत्ता काफी कम है। अधिकांश लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं जिसके कारण इनका सामाजिक, आर्थिक शोषण होता है।

शोध साहित्य सर्वेक्षण

बी.एस.कोहन(1951-52)[8] ने उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के माधोपुर गाँव का अध्ययन किया जहाँ 23 जातियाँ निवास करती थीं। पंचायत चुनाव में नोनिया एवं चमारों ने ठाकुरों की शक्ति को चुनौती दी।

एन.के.शुक्ला[9] ने अपनी पुस्तक "The Social structure of an Indian Village" में भागलपुर के भारको गाँव का अध्ययन किया। जहाँ की प्रभुत्व जाति यादव है, जिनके पास भूमि, संख्या, प्रतिष्ठा सर्वाधिक है।

हिचकॉक(1953-1955)[10] ने अपनी पुस्तक 'लीडरशीप इन ए नार्थ विलेज' उत्तर प्रदेश के खालापुर गाँव के अध्ययन में बताया है कि पंचायती राज व्यवस्था के आ जाने के बाद नेतृत्व के पद पर निम्न जातियाँ प्रवेश करने लगी हैं जिसके कारण जमींदारी उन्मूलन के पश्चात राजपूतों की शक्ति में कमी आने लगी है।

वी.नाथ(1962)[11] ने राजस्थान का एक बदलता गाँव के अध्ययन में बताया कि निम्न जातियां जाति, व्यवस्था में अपनी कम हैसियत के कारण असंतुष्ट होती है।

कृष्ण कुमार (2014)[12] ने अपने शोध आलेख में बताया है कि ग्रामीण शिक्षा और आधुनिकीकरण से

ग्रामीण जीवन प्रभावित होता है।

सुरिंदर एस.जोधका(1995)[13] ने हरियाणा राज्य के एक हरित क्रांति वाले जिले कसाल के तीन गाँवों का फील्ड अध्ययन किया जिसमें उन्होंने पाया कि वयस्क मताधिकार तथा लोकतान्त्रिक संस्थाओं ने ग्रामीण शक्ति संरचना में बदलाव ला दिया है।

दयावती राय (2007)[14] ने 'हाशिये की राजनीति दो गाँवों की दास्तान' में राजनीतिक क्षेत्रों में होने वाले बदलाओं को बताया है। जिसमें पश्चिम बंगाल के हुगली कालीपुर में अनुसूचित जाति भी सशक्त रूप से ग्रामीण राजनीति में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है।

सुरेंदर एस. जोधका (2014)[15] ने 'उभरती ग्रामीणता' में हरियाणा के दो गाँवों का अध्ययन किया है। अनुसूचित जाति के लोग अपना नाम बदल कर अन्य संबोधनों को पसंद करते हैं। गाँव के लड़के और लड़कियां शिक्षा ग्रहण करते हैं। गाँव में सभी अत्याधुनिक वस्तुएँ मौजूद होने लगी हैं।

महीपाल (2015)[16] ने अपनी पुस्तक 'पंचायती राज चुनौतियां एवं संभावनाएं' में विभिन्न राज्यों में पंचायत प्रतिनिधियों की जागरूकता एवं जुझारूपन का अध्ययन करके पाया कि जो दलित व महिला वर्ग के सरपंच थे, वे पहले अपने अधिकार और भूमिका तथा पद की शक्ति से परिचित नहीं थे।

ए.आर.देसाई (2018)[17] ने 'भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र' में बताया है कि सामान्य मताधिकार मिलने से जनता को अधिकार मिल गया। नई शासन व्यवस्था ने अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, न्यायिक क्षेत्र में नये अधिकारों को जन्म दिया है, जिससे लोग पहले से चले आ रहे प्रथागत कानून तथा दैवीय अधिकारों को मानने के लिए अब बाध्य नहीं हैं।

एस. सी. दुबे (1958)[18] ने 'इंडियाज चेंजिग विलेजेज' शीर्षक में राजपूत और त्यागी दो गाँव का अध्ययन किया और बताया कि सामुदायिक विकास योजनाएँ ने गाँव की संरचना को बदल दिया है।

आन्द्रे बेतेई (1971)[19] अपनी पुस्तक 'कास्ट क्लास एंड पावर' में जाति का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि जातियों का राजनीतीकरण होने से उनमें प्रतिस्पर्धा, भौतिक सुविधा एवं विकास को प्राप्त करने की लालसा ने एकजुट कर दिया है। तमिलनाडु के तंजौर जिले के श्रीपुरम गाँव के अध्ययन में पाया कि ब्राह्मण अब कमजोर और शक्तिहीन होने लगे हैं तथा आरक्षण के कारण गैर ब्राह्मण शक्ति के स्रोत बन गए हैं।

टी.के.ओमन(1960)[20] ने अपने लेख 'प्रभु जाति : कुछ प्रश्न' जो 'कंट्रीब्यूशन टू इंडियन सोशियोलॉजी' में प्रकाशित हुआ जिसमें कहा कि शिक्षा, प्रशासन में भागीदारी, आमदनी, मताधिकार, पंचायती राज और आरक्षण जैसे कारक भी ग्रामीण शक्ति को प्रभावित करते हैं।

शोध का उद्देश्य :

1. आरक्षण व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार का पता लगाना।
2. लैंगिक आधार पर महिलाओं की स्थिति का पता लगाना।
3. जाति वर्ग समूह के आधार पर अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग की स्थिति का पता लगान।

परिकल्पना :

1. आरक्षण व्यवस्था से महिलाओं की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा अधिक अच्छी हुई है।
2. आरक्षण व्यवस्था से वंचित वर्गों (अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति अन्य पिछड़ा वर्ग की) स्थिति में सुधार हुआ है।

शोध क्षेत्र का चयन : उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद का चुनाव शोध हेतु लिया गया है। वाराणसी जनपद

में कुल आठ विकास खण्ड है। दैव निदर्शन की लाटरी विधि से वाराणसी जनपद के 8 विकास खण्डों में से विकास खण्ड काशी विद्यापीठ का चयन किया गया। काशी विद्यापीठ विकास खण्ड के 13 न्याय पंचायतों में से 2 न्याय पंचायतों कन्दवा और खुलासपुर का चुनाव दैव निदर्शन की ग्रिड प्रणाली से किया गया। ग्राम सभा मड़ाव, खुलासपुर, बलिरामपुर, विशुनपुर, परमानन्दपुर, घाटमपुर, पिलखिनी, उदयराजपुर। प्रत्येक ग्राम सभा से 50-50 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण / सविचार निदर्शन विधि से किया गया। इस प्रकार कुल 400 उत्तरदाताओं के परिवार के मुखिया से सम्पर्क कर साक्षात्कार अनुसूची विधि द्वारा सूचना प्राप्त किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या :

प्रस्तुत शोध में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के लिए नी तथा सहयोगियों (छपम मज ंसस) के द्वारा तैयार किए गए ै ै (जंजपेजपबंस च्बांहम वित ैवबपंस ैबपमदबमे) साफ्टवेयर का प्रयोग किया गया है।प्रस्तुत शोध में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के लिए काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग किया गया है

काई वर्ग परीक्षण का सूत्र है- $X^2 = \sum(fo-fe)^2/fe$, fo=आवलोकित आवृत्ति (Observed frequency), fe= प्रत्याशित आवृत्ति (Expected frequency), $\sum$ = सभी पदों के योग को इंगित करता है। काई वर्ग परीक्षण में स्वतंत्राश कोटि (df) के मूल्य की गणना करने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है- स्वतंत्रांश कोटि(df)=(r-1).(c-1) जहाँ पर r = number of rows, C = number of column

सारिणी संख्या : 1

लिंग के आधार पर प्रतिनिधित्व व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति मे सुधार के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं के विचारों का वर्गीकरण

स्थिति में सुधार	लिंग					
	महिला		पुरुष		योग	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	73	75.3	217	71.6	290	72.5
नहीं	08	8.2	18	6.0	26	6.5
कह नहीं सकतें	16	16.5	68	22.4	84	21.0
योग	97	100.0	303	100.0	400	100.0
$C^2=1.97, df=2, P>0.05$						

उपर्युक्त सारिणी में ग्रामीण समाज में प्रतिनिधित्व व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार के सम्बन्ध में 72.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार हुआ है। महिला उत्तरदाताओं में से 75.3 प्रतिशत ने कहा है कि वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार हुआ है। पुरुष उत्तरदाताओं में से 71.6 प्रतिशत ने कहा कि प्रतिनिधित्व व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार हुआ है। सांख्यिकी काई वर्ग परीक्षण से परिलक्षित होता है कि काई वर्ग (X2) का परिकलित मान 1.97 आया है। स्वातंत्र्य कोटि मान (df) 2 प्रायिकता स्तर (P) 0.05 पर देखने से सारिणी मान 5.991 है। स्पष्ट है कि काई वर्ग का मान सारिणी मान की सार्थकता के लिए आवश्यक न्यूनतम मान से कम है, जो सिद्ध करता है कि काई वर्ग का मान असार्थक

है। शून्य परिकल्पना सत्य प्रमाणित होती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना को अस्वीकार किया जाता है। अत: महिला एवं पुरुष के प्रतिनिधित्व व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार के विचारों में सार्थक अंतर नहीं है।

सारिणी संख्या - 2

प्रतिनिधित्व व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार के सन्दर्भ मे विभिन्न जाति से संबंधित उत्तरदाताओं के विचारों का वर्गीकरण

स्थिति में सुधार	जाति वर्ग समूह							
	सामान्य		अन्य पिछड़ा वर्ग		अनु./जन.जाति		योग	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	77	73.3	126	67.7	87	79.8	290	72.5
नहीं	06	5.7	14	7.6	06	5.5	26	6.5
कह नहीं सकते	22	21.0	46	24.7	16	14.7	84	21.0
योग	105	100.0	186	100.0	109	100.0	400	100.0
c^2=5.27,df=4, P>0.05								

उपर्युक्त सारिणी में प्रतिनिधित्व व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार के सन्दर्भ में 72.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार है कि उनकी स्थिति में सुधार हुआ है। सामान्य जाति के 73.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार है कि आरक्षण व्यवस्था से वंचित वर्गों की स्थिति में सुधार हुआ है। अन्य पिछड़ा वर्ग के 67.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार है कि सामाजिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था से उनकी स्थिति में सुधार हुआ है। अनुसूचित जाति / जनजाति के 79.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार है कि प्रतिनिधित्व व्यवस्था से उनकी स्थिति में सुधार हुआ है। सांख्यिकी का वर्ग परीक्षण से मालूम हुआ कि महिला एवं पुरुष तथा सामान्य जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अनुसूचित जाति / जनजाति में प्रतिनिधित्व व्यवस्था से स्थिति में सुधार के विचारों की प्रतिशतता में सार्थक अंतर नहीं है।

निष्कर्ष :

स्वतंत्रता के पश्चात जहाँ एक ओर जमींदारी प्रथा, जागीरदारी प्रथा तथा देशी रियासतों की सामंती व्यवस्था के उन्मूलन से ग्रामीण समाज के मूल ढ़ांचे में परिवर्तन हुआ हैं तो वहीं दूसरी ओर सरकार ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक विकास की मुख्य धारा से जोड़ते हुए उनकी राजनैतिक भागीदारी को सुनिश्चित करने हेतु आरक्षण की शुरुआत की थी। पंचायती राज व्यवस्था के लागू हो जाने से परंपरागत शक्ति संरचना के स्थान पर नयी शक्ति संरचना का उदय हुआ जिससे ग्रामीण समाज के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन में आमूलचूल परिवर्तन दिखाई देने लगा है। एक वर्ग के रूप में संभ्रान्त भू-स्वामियों का अस्तित्व पूरी तरह से समाप्त हो गया तो दूसरी ओर गाँवों में शक्ति संरचना का पारम्परिक ग्रामीण अभिजात वर्गीय लोगों की पकड़ से लगभग निकलकर एक अभिनव ग्रामीण निम्न मध्यम वर्ग के नियंत्रण में चली गई है। पंचायतों में आरक्षण लागू होने से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग व महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। जिसके कारण गाँव की परम्परागत शक्ति संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देने लगा है।

संदर्भ :

1. Yogendra Singh, social change in India, crisis and resilience Har-Anand Publications, New Delhi,1993, Page No. 47
2. सिंह जे.पी. सिंह, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन 21वीं सदी में भारत पी.एच.आई.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 2016, पृ. 179
3. जे.पी. सिंह, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन 21वी सदी में भारत पी.एच.आई.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 2016, पृ. 180
4. राम आहूजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स, 2019, पृ. 322
5. जे.पी. सिंह, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन 21वीं सदी में भारत, पी. एच. आई.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, 2016, पृ. 205
6. जे.पी. सिंह, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन 21वीं सदी में भारत, पी. एच. आई.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, 2016, पृ. 206
7. जे.पी. सिंह, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन 21वीं सदी में भारत। पी. एच. आई.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, 2016, पृ. 206
8. शर्मा डी.डी. एण्ड एम.एल. गुप्ता,भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा,1988,पृष्ठ संख्या- 270
9. वही, पृष्ठ संख्या- 273
10. डी.डी. शर्मा एण्ड एम.एल.गुप्ता, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन आगरा, 1988, पृ. 292
11. वही, पृ. 179
12. एस.सुरिंदर जोधका, भारतीय ग्राम श्रंखला-।।। ग्रामीण परिवेश का बदलता जीवन: सामाजिक, आर्थिक एवं राजनितिक परिप्रेक्ष, वाणी प्रकाशन टाटा ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 2019, पृष्ठ संख्या-59-74
13. वही, पृ. 149-159
14. वही, पृ. 300-318
15. वही, पृ. 343-375
16. महीपाल, पंचायतीराज चुनौतियां एवं संभावनाएं, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2015, पृ. 92
17. ए.आर. देसाई, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 156
18. वही, पृ. 198 -199
19. वही, पृ. 137-149
20. वही, पृ. 53-54

❖❖❖

कौटिल्य का राजनीतिक अर्थशास्त्र : एक अध्ययन

❍ रोहित रंजन[1]

संक्षिप्ति :

कौटिल्य जिन्हें विष्णुगुप्त के रूप में भी जाना गया, वे चंद्रगुप्त मौर्य (317-293 ई.पू.) के प्रमुख सलाहकार थे। उन्होंने पहली बार भारतीय उपमहाद्वीप को साम्राज्य में एकीकृत करने का महत् कार्य किया था। लगभग 300 ई.पू. लिखा गया कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' महज अर्थशास्त्र की एक प्राचीन ग्रन्थ मात्र नहीं बल्कि 'राजनीति का एक विज्ञान' भी है जिसका उद्देश्य एक राजा को शासन करने की बुद्धि और ज्ञान से परिपक्व करना था। इस ग्रन्थ में कौटिल्य ने युद्ध और राजनीति पर अत्यंत व्यापक और आकर्षक चर्चाएँ प्रस्तुत की हैं, जिसमें उनके राजा को विश्व विजेता बनाने की उनकी स्वाभाविक इच्छा तो है ही। इसमें उनका विश्लेषण यह भी बतलाता है कि कौन से राज्य सहयोगी हैं और कौन से अपरिहार्य दुश्मन। इस ग्रन्थ में उन संधियों को करने की उनकी इच्छा जिन्हें वे जानते थे कि वे तोड़ देंगे, एक अनभिज्ञ राजा के खिलाफ मौन युद्ध का उनका सिद्धांत, दुश्मन नेताओं को मारने वाले और उनके बीच कलह पैदा करने वाले गुप्त एजेंटों की उनकी स्वीकृति, महिलाओं को युद्ध के हथियार के रूप में उपयोग का उनका विचार, अपने सैनिकों को मजबूत करने और दुश्मन सैनिकों को हतोत्साहित करने के उनके राजनीतिक विचार श्रेष्ठ और विचारपूर्ण हैं।

बीज शब्द : राजनीतिक अर्थशास्त्र, कौटिल्य, श्रम सिद्धांत, राजाज्ञा, धर्मनॉमिक्स, संपत्ति और अपकार।

कौटिल्य ने निहित रूप से संपत्ति के श्रम सिद्धांत का प्रस्ताव रखा है। उन्होंने अनुबंधों, संपत्ति और अपकार से संबंधित आर्थिक कानून तैयार किए, जिन्होंने आर्थिक दक्षता को बढ़ावा दिया और नैतिक व्यवहार को प्रोत्साहित किया। कौटिल्य का अर्थशास्त्र इस बात पर जोर देने में अद्वितीय है कि राज्य को कैसे नियंत्रित किया जाए। आर्थिक विकास और सभी का कल्याण। उनके अनुसार, अगर धर्म नहीं है, तो समाज नहीं है। उनका मानना था कि नैतिक मूल्य धरती पर समृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। इसका एक आंतरिक मूल्य भी है और एक साधन मूल्य भी।

कौटिल्य का राजनैतिक साध्य : आज जिसे राजनीतिक सिद्धांत कहा जाता है। कौटिल्य ने राष्ट्र के निर्णायक तत्वों में आंतरिक और साधन दोनों ही मूल्यों को महत्व दिया। उन्होंने पारंपरिक वैचारिक ढाँचे को आगे बढ़ाकर

1. *अध्येता, स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश*
मो: 9809311115, ईमेल: rohit.liberal@gmail.com

नैतिक मुद्दों से निपटने का प्रयास किया जो अपने आप में अद्वितीय है। वे 'अर्थशास्त्र' में लिखते हैं–

धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।
विवादार्थचतुष्पादः पश्चिमः पूर्ववाधकः ।।[1]

यानी धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा ये विवाद के निर्णायक होने से राष्ट्र के चार पैर समझे जाते हैं, इन्हीं पर राष्ट्र निर्भर होता है। इनमें से सबसे अगला पिछलों का बाधक है।

ऊपर के उद्धरित पद में जो सबसे गौर करने वाली बात है कि 'इनमें से सबसे अगला पिछलों का बाधक है'– अर्थात् पद का सबसे अगला शब्द है 'धर्म' जो कि सभी पिछलों का बाधक है। कौटिल्य ने स्वीकार किया है कि 'धर्म' को बिल्कुल ही अपने व्यक्तिगत उपयोग में लाना चाहिए। यह 'धर्म' जैसे ही व्यक्ति से उठकर 'राजनीति' का अंग बन जाएगा वैसे ही इसके नैतिक मूल्यों पर आघात लगेगा। कौटिल्य ने अपने समय की ही नहीं बल्कि आज के समय की नई वास्तविकताओं से निपटने का भी मार्ग निर्धारित किया। राजव्यवस्था व शासनव्यवस्था के पेचोखम से निपटने के लिए जितना मानक तर्क कौटिल्य ने दिया वह प्राचीन यूनानी दार्शनिकों (प्लेटो और अरस्तू) या अन्य दार्शनिकों के लेखन की तुलना में कहीं अधिक तर्कसम्मत है। 'धर्म' की जितनी सूक्ष्म–अतिसूक्ष्म व्याख्या कौटिल्य ने किया है उतनी आज के चिंतकों में भी कम ही देखने को मिलेगा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र को 'धर्मनॉमिक्स' कहना ज्यादा तर्कसंगत होगा; क्योंकि यह पुस्तक आर्थिक विचार के साथ–साथ 'धर्म' की अवधारणा को व्याख्यायित करने में भी सफल मानी जाएगी। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' स्पष्ट रूप से 'अर्थ' यानी 'भौतिक कल्याण' और 'धर्म' यानी मनुष्य के व्यक्तिगत 'धार्मिक व्यवहार' के लक्ष्यों को एक सुसंगत समग्रता के रूप में बढ़ावा देता है और उनमें आपस के किसी भी तरह के विचलन को अस्वीकार करता है। यह दावा किया जाता है और उस दावे के बरअक्स ही कौटिल्य के मूल योगदान की प्रस्तुति इस गहरी मिथक को दूर करने में सफल होनी चाहिए कि अर्थशास्त्र की उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी के दौरान हुई थी और एडम स्मिथ अर्थशास्त्र के संस्थापक थे। क्यों नहीं कौटिल्य को चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में अर्थशास्त्र का संस्थापक माना जाना चाहिए? साथ ही, यह भी तर्क जुड़ता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र को सही ढंग से 'धर्मनॉमिक्स' के रूप में नामित किया जा सकता है। एक नैतिक आधार पर निर्मित अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र और आर्थिक नीति को अधिक सार्थक और सामाजिक रूप से वांछनीय परिप्रेक्ष्य में पेश करता है। कौटिल्य हमें यह भी संदेश देने में सहायक सिद्ध होते हैं कि हमारी प्राचीन 'हिंदू सभ्यता' आर्थिक विकास के खिलाफ नहीं है।

जब हम 'प्राचीन हिन्दू सभ्यता' की बात करने बैठते हैं तब कौटिल्य हमें तत्कालीन धर्मच्युत संन्यासियों पर प्रश्न खड़े करते हुए दिखाई देते हैं। उनका कथन है–

प्रत्रज्यासु वृथाचारात्राजा दण्डेन वारयेत् ।
धर्मो ह्यद्धर्मोपहतः शास्तारं हन्त्युपेक्षितः ।।[2]

अर्थात् संन्यासियों में भी होनेवाले मिथ्या आचारों को, राजा दण्ड देकर हटाए। क्योंकि अधर्म से दबाया हुआ, तथा उपेक्षा किया हुआ धर्म, शासन करने वाले राजा को नष्ट कर देता है। इसलिए कौटिल्य ने राज–काज यानी राजनीति को भी अर्थशास्त्र के अंग के रूप में परिभाषित किया है। पूर्व में भी बात की जा चुकी है कि 'अर्थ' का अर्थ 'भौतिक कल्याण' है। कौटिल्य के अनुसार, राजा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अपनी प्रजा के 'भौतिक कल्याण' को सुरक्षित रखने का है। कौटिल्य अपने 'अर्थशास्त्र' में लिखते हैं–

कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्राप्नोति ।।
अन्यायवृत्तिं निविष्टमप्युत्थापयेत्।।
स कथमनिविष्टं निवेशयेत् ।।[3]

राज्य में 'कोश' रहते हुए भी मित्र रहित राजा, 'क्षय व्यय' अर्थात् योग्य पुरुषों के नाश का नाम क्षय, और धन का कम हो जाना व्यय कहलाता है। इसमें सहायता न मिलने के कारण राजा किसी भी तरह से अपनी क्षमता को सिद्ध नहीं कर सकता। प्रजा पर अन्याय करनेवाले शक्तिशाली राजा को जब अपने स्थान पर बसी हुई प्रजा उखाड़ देती है, तो नये प्रदेश को वह कैसे बसा सकता है ? इसलिए राजा को धर्म, अर्थ और काम जिसे कौटिल्य ने 'अर्थत्रिवर्ग' कहा है, इससे युक्त होना होगा –

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः ।। तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ।।
अनर्थोऽधर्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्ग ।। तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान्प्रतिकर्तुम् ।।
अर्थोऽनर्थ इति धर्मोऽधर्म इति कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः ।।
तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ।।
इति कालावस्थापनम् ।। इत्यापदः ।।[4]

अर्थ, धर्म और काम इनको 'अर्थत्रिवर्ग' कहा जाता है। इस अर्थत्रिवर्ग के बीच में पूर्व-पूर्व का ग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है; अर्थात् काम से धर्म और धर्म से अर्थ को श्रेष्ठ समझना चाहिए। अनर्थ, अधर्म, और शोक, यह 'अनर्थत्रिवर्ग' कहलाता है। इस अनर्थत्रिवर्ग के बीच से पूर्व-पूर्व का प्रतीकार करना कल्याणकारी है। अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म और काम-शोक, इन तीन जोड़ों को लेकर इनमें परस्पर संशय होना 'संशयत्रिवर्ग' कहलाता है। इस संशयत्रिवर्ग में से उत्तरपक्ष का (अनर्थ, अधर्म, शोक का) प्रतीकार होने पर, पूर्वपक्ष का (अर्थ, धर्म, काम का) ग्रहण करना श्रेष्ठ होता है। यहाँ तक यात्रा के आदि, मध्य, अन्तकालादि निमित्त के अर्थ, अनर्थ आदि की व्यवस्था का निरूपण कर दिया गया। यानी राजा के राज्य संचालन हेतु यहाँ तक के अर्थ, अनर्थ तथा संशययुक्त सभी प्रकार की आपत्तियों का निरूपण कर दिया गया है। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र का सूत्र' देते हुए जो विकसित राष्ट्र का उदाहरण पेश किया है वह कुछ इस प्रकार से है-

सुखस्य मूलं धर्मः ।। धर्मस्य मूलमर्थः ।। अर्थस्य मूलं राज्यम् ।।
राज्यमूलमिन्द्रियजयः ।। इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ।।
विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ।। वृद्धसेवाया विज्ञानम् ।।
विज्ञानेनात्मानं संपादयेत् ।। संपादितात्मा जितात्मा भवति ।।
जितात्मा सर्वार्थैस्संयुज्येत ।। अर्थसंपत्प्रकृतिसंपदं करोति ।।
प्रकृतिसंपदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ।। प्रकृतिकोप-स्मर्वकोपेभ्योः गरीयान् ।।[5]

अर्थात् सुख का मूल (कारण) धर्म है। धर्म का मूल, अर्थ है। अर्थ का मूल राज्य है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही राज्य का मूल है। इन्द्रियों के विजय का मूल, विनय है। वृद्धों की सेवा करना, विनय का मूल है। वृद्धों की सेवा का मूल, विज्ञान है। इसलिए पुरुष, विज्ञान से अपने आपको संपन्न बनाएँ। जो पुरुष विज्ञान से संपन्न होता है, वह अपने ऊपर काबू पा सकता है। अपने ऊपर काबू रखने वाला पुरुष, सभी अर्थों से संयुक्त हो जाता है। अर्थ सम्पत्ति, प्रकृति सम्पत्ति (अमात्य, सेना, मिन्न आदि सम्पत्ति) को उत्पन्न करने वाली होती है। प्रकृति संपत्ति के द्वारा, नेता रहित राज्य का भी संचालन किया जा सकता है। प्रकृतिकोप, अभी कोपों से बलवान होता है।

इस प्रकार देखें तो 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' राजनीतिक यथार्थवाद की ही एक पुस्तक है। एक ऐसी पुस्तक, जो विश्लेषण करती है कि राजनीतिक दुनिया कैसे काम करती है और अक्सर यह नहीं बताती कि इसे कैसे काम करना चाहिए। एक ऐसी पुस्तक, जो अक्सर राजा को बताती है कि राज्य और आम जनता की भलाई को बनाए रखने के लिए उसे क्या गणनात्मक और कभी-कभी क्रूर उपाय करने चाहिए। कौटिल्य के

सूत्रों में एक महत्वपूर्ण प्रश्न छिपा है। क्या भारत के आम भलाई के लिए उनके द्वारा अक्सर सुझाए गए कठोर कदम आवश्यक थे ? क्या चंद्रगुप्त और बिंदुसार को भारत की रक्षा करने, व्यवस्था लाने और एकता स्थापित करने के लिए हिंसक और कभी-कभी क्रूर तरीके से काम करना पड़ा था ? पुरानी व्यवस्था के ढहने, नंद राजाओं के क्रूर और अयोग्य साबित होने, भारत की सीमाओं पर दुश्मनों के होने और भीतर अराजकता के खतरे के साथ, क्या कौटिल्य के कठोर उपाय आवश्यक नहीं थे और क्या उनके विरोधी उस समय की प्रकृति को नोटिस करने में विफल नहीं हुए जिसमें वे रहते थे ? चंद्रगुप्त और कौटिल्य की तर्कों की सराहना करते हुए भार्गव कहते हैं, "सम्मान के साथ शांति बहाल करने के लिए सभी प्रकार के साधनों को आवश्यक माना जा सकता था।"[6] अधिक स्पष्ट रूप से कहा जाए तो क्या भारत को आदर्शवादी अशोक के विलासिता का आनंद लेने के लिए यथार्थवादी कौटिल्य के कठोर उपायों की आवश्यकता थी ?

एक राजनीतिक यथार्थवादी की तरह कौटिल्य ने माना कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी शक्ति और स्वार्थ को अधिकतम करने के लिए कार्य करता है और इसलिए नैतिक सिद्धांतों या दायित्वों का राष्ट्रों के बीच कार्यों में बहुत कम या कोई बल नहीं होता है। जबकि सहयोगी होना अच्छा होता है। उनके अनुसार गठबंधन तभी तक चलेगा जब तक वह उस सहयोगी के साथ-साथ स्वयं के हित में काम करते रहे। क्योंकि एक सहयोगी के रूप में काम करते हुए किन्हीं आपदाओं की एक साथ होने की स्थिति में और दुश्मन की शक्ति के बढ़ने की स्थिति में अपने हितों की सुरक्षा की ओर ही देखता है। वह चाहे किसी से युद्ध करे या शांति। उसका हर मोर्चे पर बने रहना पूरी तरह से किसी के राज्य के स्वार्थ या लाभ पर निर्भर करता है। युद्ध और शांति को केवल लाभ के दृष्टिकोण से देखा जाता है। कोई व्यक्ति किसी को भी सहयोगी मात्र सद्भावना या नैतिक दायित्व के कारण नहीं रखता है, बल्कि इसलिए रखता है कि वह मजबूत है और अपने स्वार्थ के साथ-साथ सहयोगी के स्वार्थ को भी आगे बढ़ा सकता है। क्योंकि जब किसी के पास सेना होती है, तो उसका सहयोगी मित्रवत रहता है या यहाँ तक कि दुश्मन भी मित्रवत हो जाता है। क्योंकि राष्ट्र हमेशा अपने राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य स्वार्थ में काम करते हैं, यहाँ तक कि शांति के समय भी अचानक युद्ध के समय में बदल जाने की संभावना होती है, सहयोगी दुश्मन बन जाते हैं, और यहाँ तक कि दुश्मन भी सहयोगी बन जाते हैं। कौटिल्य ने संभवत: यह मान लिया था कि शांतिपूर्ण साम्राज्य हमेशा के लिए नहीं चल सकते हैं, और छोटे राज्यों के बीच संघर्ष इतिहास में बिल्कुल आम है। कौटिल्य के लिए विदेश नीति का यह सिद्धांत - कि राष्ट्र अपने राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य स्वार्थ में काम करते हैं - उनके राजनीति विज्ञान का एक शाश्वत सत्य था। उनका यह कतई मानना नहीं था कि राष्ट्र कभी परोपकारी तरीके से काम नहीं करते - वास्तव में, कौटिल्य ने मानवीय कार्यों की वकालत की जो व्यक्ति के स्वार्थ से मेल खाते हों। लेकिन उनका मानना था कि अगर किसी को राजनीतिक या सैन्य शक्ति सौंपी जाती है, तो उसे यह मान लेना चाहिए कि उसके पड़ोसी अंतत: अपने हित में काम करेंगे। दूसरे शब्दों में, अगर कोई सबसे खराब स्थिति की कल्पना नहीं करता है, तो वह अपने ही लोगों के साथ विश्वासघात कर रहा होगा। पड़ोसी राज्यों की दया पर निर्भर रहने के लिए मजबूर एक राष्ट्र कमजोर होता है और जब तक वह तेजी से नहीं बदल जाता, तब तक उसका विनाश तय जाता है। यही धारणा थ्यूसीडाइड्स के काम में देखी जा सकती है, जिन्होंने कौटिल्य से एक सदी पहले विदेश नीति पर चर्चा की थी। चीनी विधिशास्त्री हान फेई त्जु के विचारों में भी देखा जाना चाहिए, जिन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र के लगभग पचास साल बाद लिखा था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है- भू-राजनीति (Geo-Politics) को लेकर। प्राचीन काल में भूमि भौतिक सुख को सुरक्षित करने का मुख्य स्रोत थी। इसलिए अर्थशास्त्र में मुख्य विचार यह है कि भूमि का अधिग्रहण कैसे किया जाए। किसी राज्य के लिए भूमि अधिग्रहण करना स्वाभाविक

है। अधिग्रहित की जाने वाली पहली भूमि पड़ोसी की भूमि है। इसलिए पड़ोसी स्वाभाविक दुश्मन हैं। इसलिए दो राज्यों के बीच संबंध युद्ध के संबंध हैं। इसलिए अर्थशास्त्र में मुख्य विचार युद्ध, रणनीतिक योजना, शक्ति संतुलन, भू-राजनीति (Geo-Politics) है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र को भू-राजनीति (Geo-Politics) की पहली पाठ्यपुस्तक माना जा सकता है। ज्ञातव्य हो कि भू-राजनीति भूमि या भूमि-संसाधनों पर कब्जा करने का विज्ञान है। भू-राजनीति की अवधारणा के अनुसार, राज्य एक जीव है। किसी भी जीव की तरह, राज्य को भी बढ़ना है। यदि राज्य विस्तार नहीं करेगा, तो राज्य नष्ट हो जाएगा या क्षय हो जाएगा।

निष्कर्ष :

इस अध्ययन में हम यह देखते हैं कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र पश्चिमी दृष्टिकोण को चुनौती तो देता ही है। भारतीयों में एक दृढ़ आत्मविश्वास भी भरता है कि हममें रणनीतिक संस्कृति का अभाव तो कहीं से भी कम नहीं है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत के नीति निर्माताओं ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पाए गए ज्ञान की अनदेखी की है। 'अहिंसा को परम धर्म' मानने वाले साधक को सम्पूर्णता में नहीं देखा गया। 'कौटलीय अर्थशास्त्र' के अन्तिम सूत्र को विश्व-शान्ति के सन्देश देने वाले प्रणेताओं को देखना चाहिए- "अहिंसालक्षणो धर्मः ।।"[7] अर्थात् अहिंसा ही मुख्य धर्म है।

संदर्भ :

1. कौटलीय अर्थशास्त्र, तृतीय अधिकरण, प्रथम अध्याय, पद सं. 51, संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर, 1925 ई.
2. पूर्वोद्धृत, तृतीय अधिकरण, सोलहवाँ अध्याय, पद सं. 47.
3. पूर्वोद्धृत, सप्तम अधिकरण, ग्यारहवां अध्याय, पद सं. 39-41.
4. पूर्वोद्धृत, नवम अधिकरण, सातवाँ अध्याय, पद सं. 69-76.
5. पूर्वोद्धृत, कौटिल्य प्रणीत सूत्र सं. 1-13.
6. पी.एल.भार्गव, चंद्रगुप्त मौर्य, पृ.सं. 102.
7. पूर्वोद्धृत, कौटिल्य प्रणीत सूत्र सं. 561.

❖❖❖

सत्राची फाउंडेशन, पटना

शोध, शिक्षा एवं प्रकाशन की समाजसेवी संस्था

यह संस्था –

– साहित्यिक सम्मान देती है।

– शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है।

– पुस्तकें प्रकाशित करती है।

– सेमिनार आयोजित करती है।

– राजभाषा/राष्ट्रभाषा सेवियों को प्रोत्साहित करती है।

– शोधकर्ताओं को स्तरीय शोध के लिए प्रोत्साहित करती है।

– नेट/जे.आर.एफ. के अभ्यर्थियों को निःशुल्क मार्गदर्शन देती है।

– हिन्दी साहित्य के शिक्षार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करती है।